भारतीय
शिखर कथा कोश
(पजाबी)


पुस्तकायन



पजावी कहानियाँ

सम्पादक

कमलेश्वर

सहायक

डॉ० गायत्री कमलेश्वर

डॉ० प्रणव बोस

प्रथम संस्करण १९९१
मूल्य १०० ००
आवरण अनिल टाटा
प्रकाशक पुस्तकायन
२/४२४० ए असारी रोड, दरियागज
नई दिल्ली ११०००२
मुद्रक अजय प्रिण्टस
नवीन शाहदरा, दिल्ली ११००३२

BHARTIYA SHIKHAR KATHA KOSH Hindi translation of Punjabi Short Stories Edited by KAMLESHWAR and assisted by Dr Gayatri Kamleshwar and Dr Pranab Bose Published by Pustkayan 2 Ansari Road New Delhi-110002 Price Rs 100 00

अनुक्रम

भूमिका

पजाबी अब ऐसी भापा नही है जिसे सिफ पजाब तक सीमित माना जाए। एक तरह से यह भापा अब दुनिया के उन सभी हिस्सो म पहुँच चुकी है, जहा पजाबी बसते ह। पाकिस्तान के पूर्वी प्रान्त पजाब मे तो पजाबी वैसे ही बोली और लिखी जाती है जसे भारत के पजाब म, राजनैतिक कारणो और जरूरतो से देश का विभाजन तो हो गया, पर भापा का विभाजन न कभी होता है और न हो सकता है।

इसीलिए आज की पजाबी कहानी की गहरी प्रतीति दने के लिए हमने भौगोलिक विभाजन को अस्वीकार करते हुए पूरी पजाबी कहानी को एक-साथ सकलित करने का प्रयास किया है और अपने इस सकलन म पजाब के साथ-साथ पाकिस्तान के पजाबी लेखको की कहानियो का भी शामिल किया है।

पजाबी कहानी के प्रारम्भिक दौर की तरफ अगर हम जायें, तो जैसा कि लगभग अन्य भारतीय भापाआ मे हुआ, वही पजाबी कहानी के साथ भी सही रहा है,—पजाबी कहानी की जडें भी लाक-कथाआ, धम-कथाआ आर लाक-जीवन की प्रेम-कथाओ मे जुडी हुई ह। आज जिसे हम कहानी कहत ह और जिन्ह हम अपनी पुरातन गाथाआ मे अलग करत है, कहानी की वह तराशी हुई विधा तकनीकी तौर पर आधुनिक पाश्चात्य कहानियो के कथन और सम्प्रेपण से प्रभावित रही है, पर इस प्रभाव के बावजूद पजाबी कथा ने अपनी जीवतता और कलात्मकता को लोक शली और शिल्प मे भी जाडे रखा।

कुछ विद्वान पजाबी कहानियो की शुरुआत को ईसाई मिशनरिया से भी जाडते ह जिनका खासा प्रभाव १९वी सदी के अन्त मे इस प्रदेश पर रहा है। उन्हाने अपने धम प्रचार के लिए बाइबिल की कथाआ को स्थानीय रग देकर पेश किया, पर कुल मिलाकर व प्रचारात्मक कथाएँ मानवीय सत्य की नही, दार्शनिक ईसाई दष्टिकाण को ही प्रस्तुत करती है और एक विधा के रूप म उनकी पहचान नही की जा सकती। वे कहानिया मानव-यथाथ से अलग ईश्वरीय विश्वास की प्रचारात्मक दत-कथाएँ ह। इनसे पजाबी की कहानी विधा को भी कोई खास मदद नही मिली।

पजाबी लाक-सस्कृति इतनी प्रगाढ और पुष्ट रही है कि उससे अलग होकर

पजाबी कहानी या कविता के बारे मे सोचा भी नही जा सकता। उसी प्रगाढ़ और पुष्ट परम्परा ने पजाबी भाषा को विकसित किया और उसे धरती की सचाई से जोडे भी रखा।

यही कारण है कि पजाबी कहानी मे 'यथार्थ' का वह सकट लगभग पदा नही हुआ जो भारत की अन्य भाषाओ म किसी-न किसी समय-सीमा पर मौजूद रहा है।

पजाबी कहानी के विकास का यदि पजाबी के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कथाकारो के विवेचन से रेखाकित किया जाए तो जसवत सिंह विरदी के शब्दो म —' पजाबी कहानी ने (यह) प्रगति शताब्दियो मे तय की नही की, बल्कि आधी शताब्दी मे ही पजाबी कहानी को यह गौरव प्राप्त हो गया है।' यदि हम पजाबी कहानी के आदि-पुरुषो की खोज गुरबचन सिंह भुल्लर के साथ-साथ करें तो उनके शब्दो मे— 'आधुनिक पजाबी कहानी के स्थापक पाच कथाकार माने जा सकते हैं और उनके नाम हैं—भाई मोहन सिंह वैद, लालसिंह कमला अकाली, चरणसिंह शहीद नानकसिंह और गुरुमुखसिंह मुसाफिर। ये सारे लेखक 'सिंह सभा आन्दोलन' स प्रभावित थे। इनकी कहानियाँ सुधारवादी, नतिक मूल्यो की पक्षधर और एक तरह से आस्थावादी हैं।'

पजाबी कहानी की इस शुरुआत के बारे मे जसवन्तसिंह विरदी का विवेचन और अधिक प्रकाश डालता है। इनके अनुसार पजाबी गल्प-साहित्य मे 'आदि जनम साखी' को काफी मान्यता प्राप्त है परन्तु यह 'जनम साखी' कई शताब्दियो पूर्व लिखी गई थी और इसम आधुनिक कथा अथवा कहानीवाली कोई बात नही है। स्वर्गीय हीरासिंह दद ने 'पजाबी सधरा' (१९४०) कहानी-सग्रह मे लिखा है— 'पजाबी म प्रथम मौलिक छोटी कहानी जो मैंने पढी है जहाँ तक मुझे याद आता है, वह 'कमला अकाली' नाम की कहानी थी जो स० लालसिंह कमला अकालीजी ने लिखी थी और शायद १९२१ मे 'अकाली समाचार-पत्र म छपी थी। यह कहानी धार्मिक थी।'

बहरहाल जो भी हो, 'कमला अकाली' शीर्षक यह कहानी दुबारा किसी सकलन में नही छपी और न बाद म इसकी कही कोई चर्चा ही हुई। यहाँ यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि ज्ञानी हीरासिंह दद जी ने खुद अपने मासिक पत्र फुलवाडी म सन् १९२४ से लेकर १९६० के दौरान लगभग ३० कहानियाँ प्रकाशित की और बाद म उन्होने स्वय जो कहानी-सकलन सम्पादित किया उसम भी उन्होने 'कमला अकाली' कहानी को सकलित नही किया।

सिंह सभा का जिक्र अभी ऊपर आया है। उस सास्कृतिक राजनतिक आन्दोलन के तहत पजाबी भाषा म विपुल साहित्य लिखा गया। और मैं यहाँ पर यह कहने का साहस भी करूँगा और खतरा भी उठाऊँगा कि सिख-जागरण के

तहत पजाबी भाषा की विराटता और उसकी व्यापक लोक-सस्कृति को सिर्फ सिखो तक सीमित किया गया। जीवत पजाबी भाषा को जातिवादी टुकडो में बाटकर देखा गया और सिर्फ सिखो को पजाबी भाषा और साहित्य का श्रेय देते हुए उसे पजाबी (हिन्दू) और पाकिस्तान के पजाबी (मुसलमान) से अलग करने की सकीर्ण कोशिश की गई। भारतीय अग्रेजी लेखक खुशवन्तसिंह तक ने इस खतरनाक और गलत सकीर्णता को बढावा दिया है। वे कहते है—'सिंह सभा के आन्दोलन का साहित्यिक कृतित्व सिख धर्म को उनके (लेखको) योगदान का ही महत्त्वपूर्ण अग है। जिस व्यक्ति ने इस दिशा मे सबसे अधिक काम किया, वे थे भाई वीर सिंह अग्रेज इतिहासकार स्थूल और अनैतिक सिख राज्य की निदा करते थे और कहते थे कि अग्रेजो ने उसके बदले अधिक सुसभ्य राज्य कायम किया। सस्कृत के विद्वान् (इशारा आयसमाजियो की ओर है) सिखो के धर्म का मजाक उडाते थे कि यह तो वेदो का ही बहुत दरिद्र अनुकरण है और सिख धर्म के बाह्य रूपो तथा सकेतो को जगली करार दे रहे थे। (तब) भाई वीरसिंह के सुदरी विजयसिंह सतवत कौर और बाबा नौधसिंह उपन्यासो म सिखो की वीरता और बहादुरी का (निरूपण) मुख्य विषय मिलेगा।"

यहाँ यह कहा जा सकता है कि पजाबी सिखो की भाषा भी है, पर वह सिर्फ सिखो की भाषा ही नही है। जिस खतरनाक सिख-सकीर्णता से पजाबी के (आशिक) साहित्य को देखने और प्रस्तुत करने की कोशिश आज जान-बूझकर की जा रही है वह जहनियत सिख धर्मोन्माद को तो बढावा दे सकती है, और पजाबी भाषा की बहुत बडी विरासत को कुछ देर के लिए पजाबी (हिन्दू), पजाबी (मुसलमान) और पजाबी (सिख) के खानो मे बाटकर क्षणिक सतोष भी प्राप्त कर सकती है, पर वह पजाबियत की पुष्ट और स्वस्थ सचाई को खण्डित नही कर सकती। यह पजाबी भाषा और पजाबियत जब सन् ४७ के विभाजन म विभाजित नही की जा सकी तो इसे अब गलत जहनियत वाले चाह भी तो भी सिर्फ पजाबी भाषी सिखो तक सीमित नही कर पाएँगे। बहरहाल

तो पजाबी कहानी के अगर उसी प्रथम चरण की ओर चलें तो दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम चरणसिंह का आता है परन्तु चरणसिंह की कहानियो की मौलिकता सदिग्ध है। रूसी लेखक चेखव की प्रसिद्ध कहानी 'गिरगिट' उनके नाम पर छपी हुई मिलती है। इसी के साथ भाई मोहनसिंह वद और बलवन्तसिंह चतरथ जैसे लेखको ने भी ज्यादातर धार्मिक और नैतिक विषयो पर ही सुधारवादी कहानियाँ लिखी। वे रचनाएँ शिल्प और शली म भी नवीन नही थी।

सन १९२० से १९३५ तक का समय पजाबी कहानी के लिए विशेष सम्भावनाओ का समय माना गया है। इस दौर मे एकाएक कुछ महत्त्वपूर्ण कथाकार सामने आते हैं। इनम मे प्रमुख हैं—गुरबख्श सिंह ज्ञानी हीरासिंह दद, जोशुआ

फजलदीन गुरमुखसिंह मुसाफिर चरणसिंह शहीद तथा नानकसिंह ने कहानी क क्षेत्र मे कुछ महत्त्वपूण क्या प्रयोग किए। जसवतसिंह विरदी के अनुसार पजावी की आधुनिक रचनात्मक कहानी का जम सन १९३५ मे हुआ। उस दौर म चार क्थाकार विशेप रूप स कहानी को उसकी रचनात्मक गरिमा देते ह। य चार क्थाकार ह—सतसिंह सखा सुजानसिंह, माहनसिंह और कर्तारसिंह दुग्गल। ये चारो लेखक मूलत आधुनिक और यथार्थवादी है। सतसिंह सेखों पहले अग्रेजी म ही लिखत थ, परन्तु बाद मे उन्होंने पजाबी मे लिखना शुरू किया और पजावी को उन्होंने ही सच्चे अर्थों मे पहली आधुनिक कहानी दी। उस कहानी का शीपक था—भत्ता।

सतसिंह सेखो की कहानियो के पहले सग्रह समाचार १९४३ की भूमिका म सोहनसिंह जोश ने लिखा है कि "सतसिंह सेखो ने सबसे पहले मेरे कहने पर पजावी पत्रिका प्रभात' के लिए लिखना शुरू किया था और 'प्रभात' मे प्रोफेसर साहव की प्रथम दो कहानिया—'भत्ता और 'कीटा अन्दर कीट' फरवरी तथा माच १९३६ क अका म प्रकाशित हुइ थी।' और 'भत्ता' कहानी से ही आधुनिक पजाबी कहानी का आगाज माना गया। एक तरह से यह पजावी नयी कहानी की शुरुआत थी।

और यह भी आकस्मिक नही था कि इसी समय पजावी म कुछ प्रमुख कथा पत्रिकाएँ निकली। प्रभात लिखारी और पजदरिया जसी पत्रिकाओ ने यथार्थवादी कहानी को लगातार प्रश्रय दिया। यह वही समय था जब हिन्दी मे प्रेमचन्द की यथार्थवादी धारा न पूरे गद्य-साहित्य का आप्लावित कर दिया था और 'कफन' जसी कहानी हिन्दी मे लिखी जा चुकी थी। इसी समय के आसपास सतसिंह सेखो की 'भत्ता और सुजानसिंह की 'भुलेखा' जसी महत्त्वपूण यथार्थवादी कहानियाँ पजाबी म लिखी गईं।

पजावी कहानी का यह दौर बडी विलक्षण प्रगति का दौर है जिसमे कर्तार-सिंह दुग्गल का महान योगदान है। दुग्गल की कहानिया न पजाब की धरती की सघन सचाइयो से एक नया दौर ही शुरू कर दिया। उधर प्रो० मोहनसिंह अमृता प्रीतम देवेन्द्र सत्यार्थी जस प्रखर लेखक भी मौजूद थे। इन लेखको न मन और मानव की सचाइयो को परत दर-परत खोला और पजावी कहानी को उसकी निजी पहचान भी दी।

यही पर भारत क विभाजन का वह कालखण्ड आता है जिसने खासतौर स पजावी मानस और पजावी जीवन को लहूलुहान कर दिया। विभाजन का जितना भीषण असर पजावी भाषा पर पडा, उतना तो उर्दू या हिन्दी न भी नहा झेला। पजावी भाषा और साहित्य का सारा ससार ही रक्त म नहा गया और नफरत धार्मिक उन्माद तथा साम्प्रदायिक मारकाट ने पजावी जीवन को विकलाग वना दिया। परन्तु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पजावी भाषा और साहित्य ने घृणा

नफरत और मत्यु के माहौल मे भी सौहाद्र सदभाव और मानव-जीवन को तरजीह दी। पजाबी कहानी लगातार मत्यु, घणा और वैमनस्य को नकार कर व्यापक मानवीय मूल्यो को लेकर ही चली, अयथा विभाजन जैसा हादसा किसी भी भाषा और साहित्य को मत्यु और वदले का पराकार बना सकता था और एक सशक्त विचार परम्परा का मटियामेट कर सकता था।

पजाबी कहानी के इस दौर के वे सभी कहानीकार इस ऐतिहासिक दृढता और मूल्यो की सकल्पबद्धता के लिए धयवाद और प्रशसा के पात्र हैं, जिन्होने विभाजन के सताप को अदर-ही अन्दर झेलकर सारे वमनस्य और विष का पीकर महान् मानवतावादी मूल्यो की रक्षा की और उह बरकरार रखा। दुनिया की किसी भाषा ने इतना बडा मानवीय सकट नही झेला जिसका सामना पजाबी ने किया है। कर्त्तारसिह दुग्गल, अमता प्रीतम, सतसिह सेखा, सुजानसिह पा० मोहनसिह, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि कथाकारो—कवियो ने मानवीय इतिहास के इस खण्डहर हो गए मानस-ससार को अपनी कहानियो और कविताओ के ईट गारे से दुबारा निर्मित किया और आहत मनुष्य का उसकी नई दुनिया वापस दी।

इसी का सीधा परिणाम था कि स्वतन्त्रता के बाद पजाबी कहानी मे एक जबरदस्त मानवतावादी यथार्थवादी लहर उठी, जिसका प्रतिनिधित्व कुलवन्तसिह विर्क, सतोखसिह धीर, नवतेजसिह मोहिन्दरसिह सरना, दलीपकौर टिवाना और अन्य कथाकारो ने किया।

विभाजन की विभीषिका का इन कथाकारो न भी झेला और पजाबी भाषा की जिस आचलिकता को कर्त्तारसिह दुग्गल न अभिव्यक्ति दी थी और रावलपिण्डी के आस-पास की जिस पाठोहारी बोली को पजाबी का अग बनाया था, लगभग वही काम कुलवन्तसिह विर्क ने विभाजन के बाद किया। लाहौर तो चला गया था, पर लाहौर की आचलिक भाषा और मुहावर का पजाबी म पैवस्त करके कुलवन्तसिह और अय कुछ लखको न पजाबी भाषा को व्यापक मानवीय सरोकारो से जोड दिया। इन कथाकारो न पजाबी का सीमित नही होने दिया, बल्कि इस सचाई का उजागर किया कि पजाबी साहित्य और भाषा राजनीति द्वारा स्थापित भौगोलिक तथ्य के बावजद व्यापक मानव-सत्य की पक्षधर है।

यही कारण था कि पाकिस्तान मे भी पजाबी-लेखन की अनवरत परम्परा चलती रही और पाकिस्तान की पजाबी कहानी न भी रक्त की नदी पार करके इन्सानी समस्याओ को उठाया।

पजाबी कहानी का यह दौर एक स्वर्णिम दौर है, जिसम यथार्थवादी रचना शीलता न नई दिशाएँ सर की। इसके बाद वह दौर आता है जो यथार्थवाद का भी तोडता है (खण्डित नही करता) और उसकी एकरसता तथा जडता के बीच म नये मानव सत्य को उद्घाटित करता है। अक्सर सभी साहित्यो म जब साहित्यिक

जडता को तोडा जाता है तो उसके समीक्षक आनेवाली नई धारा को तात्कालिक धारा के विरोध में स्थापित करने लगते हैं। आलोचकों और समीक्षकों को इसमें सुविधा होती है परन्तु पंजाबी कहानी का यह नया दौर इस बात का सबूत है कि जड और परिवर्तन से इनकार करती यथार्थ स्थितियों के बीच में उसने नये यथार्थ का उद्घाटन किया जो भीतर-ही भीतर कुलबुला रहा था और अपनी अभिव्यक्ति की माँग कर रहा था।

होता यह है कि किसी भी दौर का कायम दर्जे का लेखन परत-दर-परत जमता जाता है और वह उस एकरसता और जडता का निर्माण कर देता है जिसे साहित्य की मूलधारा सह नहीं पाती या जिसके नीचे दबकर उसकी साँस घुटने लगती है, तब फिर यथार्थ की नई अभिव्यक्ति जरूरी हो जाती है। इन रचनात्मक प्रयासों में कहानी के औजार भी बदलते हैं और कथाकार भी। ऐसी ही जो अगली रचनाशील पीढ़ी पंजाबी कथा में आई उसमें प्रमुख हैं—जसवन्तसिंह विरदी, रामसरूप अणखी अजीतकौर, गुलजारसिंह संधू, गुरदयालसिंह प्रेमप्रकाश आदि जिन्होंने पंजाबी कहानी को गहराई और सोच को नये आयाम दिए और यथार्थवादी कथा परम्परा को कुछ हद तक अस्त-व्यस्त कर साहित्यिक सत्य की महिमा से मण्डित किया।

यह दौर इस बात का भी साक्षी है कि पंजाबी कहानी ने एक बार फिर अपनी आंचलिक और लोक-परम्पराओं से नाता जोड़ा और मामूली आदमी के दुःख-सुख और सपनों का उसने शिद्दत से साकार किया। नियतिवादी, भाग्यवादी और धार्मिकतावादी साहित्य के दलदल से साहित्य को निकालने की जो कोशिश पहले शुरू हुई थी और जिसे जातिवादी सिखवादी मानसिकता ने पंजाबी की सोच को आच्छादित कर ढकना चाहा था, उसका सहज प्रतिकार लगातार जारी रहा और यह एक बड़ी सचाई है कि पंजाबी कथाकारों ने जातिवादी-धर्मवादी रुझानों को स्वीकार नहीं किया और पंजाबी कहानी की मूलधारा लगातार व्यापक मानवीय सत्य को अंगीकार करती रही।

यह भी एक बहुत बड़ी सचाई है कि इस विशद भूमिका को निभाने का काम संतसिंह सेखों ने ही शुरू कर दिया था और भक्ता जैसी मनोवैज्ञानिक और किसानी जीवन की आन्तरिक सचाई को उद्घाटित करनेवाली कहानी से सोच और रचनात्मकता का नजरिया ही बदल दिया था। आगे चलकर यही काम करतारसिंह दुग्गल की कहानियों ने किया और उन्होंने तथा उनके समकालीनों ने कहानी को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आधार दिया।

धर्मकथाओं और प्रचारवादी कथाओं में भावुकता, अंधविश्वास और जातीय पुनर्जागरण का जो छिपा हुआ तत्त्व रहता है, उसे कहानीकारों की दूसरी पीढ़ी ने तोड़ा। दुग्गल के बाद कुलवन्तसिंह विर्क ने अपने जनजीवन से ठेठ और पक्के पंजाबी

पान उठाए, कुछ वैसे ही जैसे उर्दू मे बलवन्तसिंह ने उठाए थे। धरती से नाता जोडते ही बेकार की भावुकता, दप और धमवादी अह का अन्त हुआ और पजाबी कहानी व्यापक मानवीय प्रश्ना और समस्याओ की अभिव्यक्ति मे निबद्ध हो गई। तब कहानी न केवल अन्य भारतीय भापाओ के समकक्ष पहुँची, बल्कि विश्व-भापाआ की कहानिया से भी मुकाबला करने लगी।

यह अबाध धारा फिर एक बार बदली और कहानी की रचनाशीलता ने एक और नया मोड लिया। यहा यह जानना भी महत्त्वपूण है कि कुलवन्तसिंह विर्क, अजीत कौर, वनराज साहनी (यद्यपि उन्हाने बहुत कम लिखा), कर्त्तारसिंह दुग्गल सन्तोखसिंह धीर, नवतेजसिंह, मोहिन्दरसिंह सरना, जसवन्तसिंह विरदी, राम-सरूप अणखी आदि लेखक लगातार रचनाशील रहे और उन्होंने लगातार सामान्य जन-जीवन और सामान्य जन को अभिव्यक्ति दी। इसी फलक को नया मोड कुछ अन्य महत्त्वपूण कथाकारा ने दिया।

कथाकारा की इस नयी रचनाशील जमात म शामिल ह—मोहन भण्डारी रघुबीर ढड, गुरवचनसिंह भुल्लर, गुरुदेवसिंह रुपाणा, सुखवन्तकौर मान, वरियामसिंह सधु केवल सूद आदि। इन कथाकारो ने कहानी मे नवीनतम प्रयोग भी किए और शिल्प तथा शैली की नई कोशिशो के बावजूद पजाब के परिवर्तित होते यथाथ का रेखाकित किया। अब पजाब नानकसिंह, सन्तसिंह सेखो, सुजान-सिंह, मोहनसिंह, गुरमुखसिंह मुसाफिर का पजाब नही रह गया था उसकी बदली मानसिकता को कर्त्तारसिंह दुग्गल विर्क, नवतेजसिंह, विरदी और अणखी लगातार रेखाकित करते चले आ रह थे। साथ ही अपनी कवितामयी भापा मे अमृता प्रीतम मनुष्य के दार्शनिक और भौतिक अनुभवा को लगातार पश कर रही थी और महिला मन की आधारभूत गुत्थियो को दलीप कौर टिवाणा और अजीत कौर सुलझा रही थी।

यह भी एक अहम तथ्य है कि जिस तरह भारत की अन्य भापाआ म महिला-लेखन का एक अलग-अलग काना बनाया गया, वह पजाबी कहानी के क्षेत्र म नही बना और महिला कथाकारा का महिला होने के नात पृथक नही किया गया। पजाबी म यह सम्भव भी नही था, क्याकि यहाँ इन्सानी सत्य को महिला और पुरुप के वर्गों म विभाजित करके नही देखा गया।

इसका कारण शायद यह भी ह कि पजाब और पजाबी भापा की परम्परा म कभी महिलाआ को अलग करके नही देखा गया। वे भी उसी मूल्यवान इसानी धरोहर की वारिस रही है जिसे महिला या पुरुप के खाना म नही बाँटा जा सकता। इसके पीछे पजाबी की वह लोक परम्परा भी साँसें ले रही है जो अन्य किसी भी भारतीय भापा के लोक साहित्य से ज्यादा समृद्ध है। और यह एक तथ्य ह कि पजाब का लोक साहित्य या सूफी दशन के असर मे लिखी और गाई गई लोक-

जीवन की प्रेम कथाएँ इंसानी भावना, दुःख, सुख, विरह और मिलन की चाह में इतनी ओत प्रोत हैं कि उनमें मानवीय भावनाओं का ही सोना फूटता है जो सबको समान रूप से भिगाता है।

पंजाबी कहानी में उस पौरुष के दर्शन बार-बार होते हैं जो पंजाबी चरित्र की विशेषता है। उस पंजाबी पौरुष को भारत या पाकिस्तान की सीमाएँ खींचकर अलग भी नहीं किया जा सकता। यह जातीय विशेषता पंजाबी कथा-साहित्य में लगातार दिखाई पड़ती है। इस विरासत का बँटवारा नहीं हुआ है। और मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि भारत और पाकिस्तान की उर्दू कहानी भी पंजाबी कहानी की इस सौगात से प्रभावित रही है।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात एक और भी है। ऐतिहासिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारत विभाजन की अमानवीय विभीषिका को जितनी शिद्दत और गहराई से पंजाबी भाषा ने सहा है उतनी भीषणता से किसी और भाषा ने नहीं सहा है। विभाजन का वह दौर तो ऐसा था कि पूरा पंजाब, उसकी भाषा, उसकी संस्कृति, उसका इतिहास और उस इतिहास में जीता हुआ आदमी खून में इतना लथपथ हो गया था कि उन भयानक स्मृतियों को भूलने में सदियाँ लग जातीं। नफरत अविश्वास जुनून और दरिंदगी की जो मिसालें पंजाब ने देखीं और अनुभव की हैं वह किसी प्रदेश या अन्य भाषा का अनुभव नहीं रहा है। यह सचाई दोनों तरफ व्याप्त है—सरहद के इस पार भी और उस पार भी। विश्व की कुछ गिनी चुनी भाषाओं ने (अंग्रेजी फ्रेंच, जर्मन और रशियन) महायुद्ध की विभीषिका को झेला था, पर उससे भी अधिक मानवीय बर्बरता को केवल पंजाबी भाषा ने झेला है। घोषित युद्धों की बरबादी को तो फिर भी एक नैतिक जामा पहनाया जा सकता है, पर विभाजन की त्रासदी के पीछे ऐसा कोई आधार नहीं था जिसे नैतिक रूप से उचित ठहराया जा सके। अतः यह नर-संहार तो कल्पनातीत था। इसका असर इतना भयानक पड़ सकता था कि एक भाषा पागल और नितांत बर्बर हो सकती थी।

परन्तु यह ऐतिहासिक श्रेय पंजाबी साहित्य को और एकमात्र पंजाबी साहित्य को ही देना पड़ेगा कि उस भयानकतम त्रासदी के बीच से गुजरते और उसे सहते झेलते हुए भी पंजाबी के साहित्य में कहीं भी घृणा, प्रतिशोध और बर्बरता के लक्षण नहीं उभरे।

पंजाबी भाषा के आधुनिक कथा-साहित्य ने उस बर्बर विष को नीलकण्ठ की तरह पिया और मानवीय शुभ तथा सौंदर्य की अपनी परम्परा को दूषित नहीं होने दिया।

यह बात मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि साहित्य और विशेषतः कथा साहित्य ने हमेशा अपनी समाज परकता और सामाजिक तथा मानवीय बोध की आधार

भूत शक्ति को मानव के व्यापक शुभ के लिए ही इस्तेमाल किया है। कथा साहित्य ने मृत्यु को नकारा और जीवन को स्वीकारा है।

पंजाबी कथा-साहित्य ने मानवीय मूल्यवत्ता को जीवित रखने और उसे लगातार शोधित करने की जो अपार शक्ति प्रदर्शित की है, वह अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य में यदि अनुपस्थित नहीं, तो दुर्लभ अवश्य है।

इस शक्ति के पीछे कौन-सी शक्ति है, यदि इसे पहचानने की कोशिश की जाए तो यह स्पष्ट होता है कि पंजाब की आध्यात्मिक (धार्मिक नहीं) और लौकिक संस्कृति ने ही यह शक्ति आधुनिक पंजाबी कथा साहित्य को दी है।

सिख गुरुओं की मानवीय वाणी, सूफियों की परम्परा, आर्यसमाज की वेदांतिक सामाजिक शोध और लौकिक प्रेम-कथाओं की प्रगाढ़ परम्परा ने पंजाबी के आधुनिक कथा साहित्य को अप्रत्यक्षतः इस बात के तैयार बना रखा था कि वह अपने रचनात्मक मानवीय सुख और सौंदर्य के मूल्यों से अलग हो ही नहीं सकता था।

मनुष्य मात्र की भीषणतम मानसिक और लौकिक दुर्घटनाओं को सह सकने, उन्हें मानवीय अनुभव का अंग बनाकर फिर बड़े और बड़े मानवीय न्याय और शुभ की तलाश में लग जाने की जो महान भूमिका पंजाबी की यथार्थवादी कहानी ने स्थापित की है, वह सृजना और जीवन परक आस्था की एक महागाथा है।

इसी के साथ-साथ अपनी पंजाबियत को पहचानने का सवाल भी इधर उठा है क्योंकि पिछले दस वर्षों से पंजाब उन आतंकवादी बर्बर शक्तियों से जूझ रहा है जो स्थापित मानवीय मूल्यों को नकार कर एक सम्प्रदाय या समुदाय के नाम पर अत्याचारों का गलत इतिहास लिखने की कोशिश कर रहा है। इस राजनीति प्रेरित मृत्युवादी रुझान का उत्तर भी आज का पंजाबी साहित्य और विशेषतः वहां की कहानी दे रही है। वह समुदाय और सम्प्रदाय की क्षुद्र सीमाओं को नकार कर अपनी व्यापक पंजाबियत की धारणा को स्थापित कर रही है।

आज की पंजाबी कहानी की एक महाधारा है जो भौगोलिक वर्जनाओं को नकारती हुई पूरी पंजाबियत का प्रतिनिधित्व करती है। भाषा की महाशक्ति को भी यह धारा स्थापित करती है, जिसे रद्द नहीं किया जा सकता।

भारत की इस भाषा की यह कथाधारा सतत प्रवहमान है और इन्सानी मूल्यों के प्रति समर्पित भी। पंजाबी कहानी पंजाबी सोच की धुरी बनी हुई है और नये प्रयोगों, गहनतम आन्तरिक सचाइयों और समयगत यथार्थ का रचनात्मक निरूपण कर रही है।

अन्त में मैं विशेष रूप से गुरबचनसिंह भुल्लर तथा यश सराज के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने लगातार मुझे इस विशद और कठिन कार्य में

सहायता दी। इतना ही नही, पजाबी कहानी के विकास और इतिहास को निरूपित करने में भी मुझे जो सहयोग गुरबचनसिंह भुल्लर और यश सरोज से मिला है वह धन्यवाद की औपचारिकता से पर है।

बी १७ सेक्टर २६
नोएडा २०१३०१
(राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)

कमलेश्वर
१४-११ ६०

ना मारो

—अजीत कौर

रात बहुत अँधेरी थी। दूर से कुत्ता के भौकन की आवाज अँधेरे का बींध रही थी। घर के किसी कोने म छिपी हुई टिटहरी लगातार टिटिया रही थी। नीद नही आ रही थी। जब से मेरे भाई केवल की हत्या हुई थी, न मुझे नीद आती थी और न ही माँ को। दोना एक-दूसरे को बहलान के लिए सोने का बहाना करती रहती।

वे कहते थे मरे भाई की हत्या आतकवादियो ने की थी। मैं नही जानती। उसकी किसी से क्या दुश्मनी थी ? पर हत्या तो कोई भी कर सकता था। आतक-वादी भी और कोई दूसरा भी। हत्या करने में देर ही कितनी लगती है ! बरसा पाल-पोसकर जवान किया लडका और एक गोली ! बस। जसे कोई फूले हुए गुब्बारे मे सुई की नाक चुभा दे। जसे कोई लिफाफा फट जाये। आदमी चले फिरे तो आदमी है, बस उसमे एक सुराख कर दो तो सारा लहू बहकर बाहर आ जाता है। और बाकी बचती है लाश ! मिट्टी। सभी कहते है मिट्टी ही तो है अब। मिट्टी का ठिकाने लगाओ। यही कहा था सबने।

अभी महीना भर भी तो नही हुआ, और लगता है सदियाँ गुजर गई ह। न तो उठने को मन होता है न ही कुछ पकाने को। या जब मुझे मा की चिंता होती है तो मैं चूल्हा जलाकर दो रोटिया सेक लेती हूँ, और जब माँ को मेरी चिंता हो तो वह चूल्हा सुलगा लेती है। एक-दूसरी को खिलाने के लिए ही फिर हम दाना थोडा-बहुत गले से नीचे उतार लेती है।

हो सकता है, मरे भाई को सरला के भाइयों ने ही मार डाला हो। कितनी बार तो धमकियाँ दी थी उन्हाने। सरला ? ब्राह्मणो की लडकी। ऊँची नाकवाला की बेटी। और मरा भाई जुलाहा का लडका। कहते है, हमारे दादा-परदादा रगरेज थे। मेरे पिता तो डाकखान मे नौकरी करते थे। और हम दोना बहन-भाइया को उन्हाने कॉलेज तक पढाया था। कहा करते, कोई छोटा-बडा नही होता। पर उनके कहने से क्या होता है ?—मेरी सहेलियाँ, मेरे आस-पडोस की लडकियाँ, स्कूल और फिर कॉलेज पढनेवाली यही कहती थी। कहती थी, सभी बडे लोग यही कहते हैं कि छोटा-बडा कोई नही होता, पर छोटा-बडा तो तब न हो, यदि बडे लोग भी ऐसा कहे।

मैंने कभी इन बातो की ओर ध्यान नहीं दिया। पर अब जब से केवल की हत्या हुई है, मुझे यही ऊटपटाँग बातें याद आया करती है। याद भी नही, बस यो ही, बाता का, बेसिर-पैर की बाता का मेर चारो ओर एक हगामा-सा बरपा रहता है।

उस अँधेरी रात मे मुझे लगा, कोई खतरा मेरे सिर पर मँडरा रहा हो। आज कल अक्सर ऐसा ही लगता है। एक बेबुनियाद-सा खौफ। जैसे अँधेरे मे से किसी खूखार जानवर की दो आँखें मेरी ओर ताक रही हो। भला अब काहे का खतरा ? दो बरस स केवल जब भी बाहर जाता, हम दोना को, मुझे और मेरी माँ का एसा ही खतरा घात लगाए, हर कोने म से झाँकता हुआ दिखाई देता। पर अब तो केवल भी नही रहा। अब कैसा खतरा ? मौत से बडा भी कोई खतरा होता है ?

दूर स कुत्ता के भौकने की आवाज आती तो मुझे लगता कुत्ते हमार घर की ओर मुह उठाकर ही भौक रहे हैं।

मैं दबे पाँव उठी। उठकर तीनो कमरो मे चक्कर लगाया। झुककर चार पाइयो के नीचे देखा। मद्धम-से बल्ब की, धुधली-सी रोशनी म चारपाइया के नीचे सिर्फ उनकी परछाइयाँ ही सहमकर बैठी हुई थी। मुझे लगा, जसे वे परछाइयाँ हिल रही है, करवट बदल रही हैं। खौफ मेरे गले मे एक सख्त गोले की तरह फँस गया था। मैं उस खौफ को जसे बहला रही थी—अब काहे का डर ? केवल को तो उन्होंने मार ही डाला है। अब कसा डर ?

केवल का जरूर सरला के भाइया ने ही मारा होगा। वैसे कोई भी मार सकता है। ये सिख भी, जिनका नया नाम आतकवादी है, कोई दूसरा भी।

तीनो कमरो मे से होकर मैं पिछल आगन म निकल आई। नल स रह रह कर एक बूद गिरती, और टप' से फश पर आ पडती। हर दो-तीन सेकड बाद 'टप' लगातार।

अँधेरे का भी कसा चमत्कार होता है ! दूर पडी टोकरी ही ऐसे लग रही थी जसे कोई आदमी पट स घुटने सटाए बठा हो, घुटना के गिद बाह लपेटकर। दूर पडी बाल्टी म भी कोई आदमी छुपकर बठा हो सकता था। और कोन म पडी हुई चारपाई के नीचे भी क्या मालूम ?

पिछली ओर रसोई से सटा हुआ एक कमरा था, जिसम ईधन का ढेर, गेहूँ का ढेर, और पुरान बिस्तर, खेस और गद्दे रजाइयाँ पडे थे। कुछ लकडी की पुरानी पटियाँ भी थी, एक-दूसरी के ऊपर रखी हुई, जिनमे जाने कब स छुटपुट सामान पडा था। कई बार माँ से कहा था, यह कबाड फेंक दे। वह कहती, 'घर फेंकन स घर नही बना करते, सँभालने स बनते हैं।' मैं हैरान होती कि और घरा मे भी इसी तरह के कूडे-कबाड और सदियो पुरानी छोटी-मोटी चीजो क ढेर होग। हा, न हो हमारे घर म तो थे। मुझे इन पुरानी पटिया स नफरत थी क्योकि इनम स मुझे तमाम गुजर चुके आदमियो की और गुजरे जमाने की बू आती थी।

पर गहन अँधियारी रात के इस पहर मे, जब मनुष्य सोते थे, और कुत्ते जागते थे, और या फिर जागते थे वे लोग, जो न जिन्दा थे और न मरा मे थे, जिस तरह मैं थी और मेरी मा थी, मैंने उस कोठरी का भिडा हुआ दरवाजा खोलकर भीतर झांका। अँधेरा था। मैंने बत्ती जलाई। मद्धम-सा बल्ब जल उठा। हैरानी हुई कि इतनी देर बाद बल्ब जल कैसे उठा?

मैंने बेध्यानी से कोठरी का चक्कर लगाया, और अचानक ठिठककर रह गई। पेटियो के पीछे वह दुबक्कर बैठा था, अपनी लहूलुहान टागो को दोनो मुट्ठियो मे भीचे हुए। उसकी आंखो मे एक आदिम खौफ था। डरे हुए जख्मी खरगोश की वे आखें थी। वह मुझसे डर रहा था, और मैं उससे।

मेरी टागें काप रही थी। वह कौन था? इस अँधेरे मे वह मेरे घर मे छुपा क्या कर रहा था? मैं शोर मचा दू? पर आवाज तो मेरे गले मे जमकर रह गई थी। मैं उसे बाँह से पकडकर घर से निकाल दू? पर वह तो जख्मी था। उसकी टाग से खून बह रहा था। और उसके हाथो की दोना मुट्ठिया मे दबाई हुई उसकी टाग

अचानक वह कराह उठा, "पानी "

मुझे कुछ सूझा ही नही, मैं रसोई मे से पानी का गिलास लेने चली गई। पानी लाकर मैंने गिलास उसकी ओर बढाया। मेरा हाथ काप रहा था। मैं अभी उसस डर रही थी। हालांकि जानती थी कि वह मेरे रहम पर है—मेरे रहम पर, और मेरे पानी के रहम पर।

उसने मेरे हाथ से गिलास पकड लिया। पकडा भी नही, एक हडबडाहट, एक बौखलाहट-सी मे उसन पानी मेरे हाथ से छीन लिया। मैं चुपचाप खडी उसके गले से आती हुई गुट-गुट की आवाज सुनती रही। गिलास खाली करके उसने मेरी ओर बढाया। मैं चुपचाप गिलास लेकर फिर रसोई म गई और एक गिलास और भर लाई। इस बार उसन मेरे हाथ से गिलास नही छीना, आहिस्ता से पकड लिया, और धीरे-धीरे आधा गिलास खाली करके बाकी अपने पास नीचे रख दिया।

मैं अभी भी उसकी ओर देख रही थी। खौफ का भी शायद एक अपना टोना होता है। वह टोना हम न हिलने देता है और न बोलने देता है।

उसने मेरी ओर देखा। अब उसकी आंखा मे खौफ नहीं था, एक स्याह खामोशी थी, और मुझे लगा उस काली खामोशी मे गुस्से के दो चार लाल और काशनी धब्बे डूब-उतरा रहे थे। पर वह गुस्सा मेरे लिये नही था, वह उसके अपन बेसहारापन पर था। उसकी अपनी लाचारगी पर था। उसके अपने जन्म पर था।

'तुम डरो मत बहन! मैं जरा उठने लायक हो जाऊँ तो चुपचाप चला जाऊँगा अपने-आप।"

वह बोला, और खौफ की सिल भर गले म मे पिघलने लगी। वह बोला, और डर की वर्फ मेरी छाती म से पिघलने लगी।

मैं चुपचाप फिर रसोई म गई और वाढनी म म दूध का गिलास भर लाई। उसन दूध भी आहिस्ता आहिस्ता पी लिया। गिलास मुझे थमाकर उसी हाथ स अपना मुह पोछ लिया।

"कोई कपडा है? टाँग पर बाँध लू।"

मैंने एक पटी खोली। माँ का एक पुराना दुपट्टा निकालकर, खोलकर उस पकडा दिया। उसने दुपटटे का सिरा अपन जख्म पर रखा, और टाँग के गिद तीन-चार वल दिए। फिर वह दुपटटे के सिरो से गाँठ लगान लगा। मैंने देखा उसके हाथ काँप रहे थे। मैंने दोनो सिरे उसके हाथ से पकड लिये और कसकर गाँठ लगा दी।

"गोली लगी है।" वह बोला।

"गोली?" —मैं चौक उठी।

'हा। पुलिस के कुत्तो की गोली।'

"पुलिस?"—मेरी आवाज काँप गई।

"नही, मैं कोई चोर-डाकू नही। मैं " और वह रुक गया।

'आतकवादी?" मैंने आवाज को सँभालने की पूरी कोशिश की, पर मैं काँप रही थी।

मुझे लगा वह मुस्करा रहा था। उसके होठ नही, बस उसकी आँखो मे से गुजरती हुई मुस्कराहट सी की मुझे झलक दिखाई दी।

"आतकवादी? वह कौन सा जानवर होता है वहिन?'

और फिर उसके जख्म म टीस उठी और उसके होठ भिच गए। आँखो म से कालिख झरने लगी। उसके जबडे खिच गए, और चेहरे की चमडी के नीचे उसके मस्सल ऐठ गए। जख्म से ऊपर उसने अपनी टाग को दोनो मुटिठयो म कसकर भीच लिया।

"तुम जाकर सो जाओ बहिन दद जरा दब जाए तो मै चुपचाप उठकर चला जाऊँगा।"

'कही नही जाओगे तुम' न जाने किस अधिकार से मैंने कह दिया—'इस हालत म कही नही जाओगे तुम।'

मैं उठी और बाहर स कोठरी म ताला लगा दिया। और आकर अपनी चारपाई पर लेट गई।

नीद तो रूठे हुए महमान की तरह चली गई थी। आहिस्ता-आहिस्ता गुजरती हुई रात को मैं महसूस करने लगी। काली बिल्ली की तरह दबे पाँव सहमकर चल रही रात को।

बहुत देर गुजर गई। मुझे लगा, दिन चढने को था। अचानक मैं चौंककर उठी। दिन चढ आया तो वह बेचारा निबटने को कैसे जाएगा? मैं उठी, पानी का लोटा भरा, कोठरी का ताला खोला। वह कराह रहा था। कोई आवाज नही थी। बस, ठहरी हुई हवा मे, हवा की ही एक बेआवाज चीख। जैसे खाली हवा का ठोस हुवा का एक टुकडा काट रहा हो।

मैंने उसके पास जाकर कहा, "दिन चढ आया तो तुम बाहर कैसे जाओगे? यह पानी" और मैंने हाथ उठाकर उसे लोटा दिखाया—"धीरे धीरे उठकर इस दीवार के बाहर" और मैं झिझक-सी गई—"मैं तुम्हारी ओर पीठ करके खडी हो जाऊँगी। ध्यान रखूगी, कोई देख न पाए।'

वह लडखडाता-सा उठा। मैंने उसकी बाह थाम ली। बाहर के दरवाज की कुडी धीरे से खोली। बाहर की दीवार से लगकर बैठने का इशारा किया। पास मे पानी का लोटा रख दिया। और खुद अपने दुपट्टे को उसके आगे तबू की तरह तानकर पीठ करके खडी हो गई।

मुझे लगा जैसे मैं कोई मुर्गी थी और मैंने अपने परो के नीचे अपने चूजे को छुपा रखा था, क्योकि चारो ओर आसमान मे काली चीलें चक्कर काट रही थी। वह जैसे मेरा बेसहारा, लाचार बेटा था। मेरे कुँआरे सीने मे से ममता छलक रही थी।

उसे उठाकर मैंने एक हाथ मे खाली लोटा पकडा और दूसरे हाथ मे उसकी बाह थाम ली। वापस लाकर मैंने उसे वही पेटिया के पीछे बिठा दिया। और फिर बिस्तरवाले बक्से मे से एक गद्दा निकालकर उसकी टाँग के नीचे रख दिया, सहारा-सा बनाकर। दो सिरहाने और एक खेस निकालकर मैंने उसे दे दिए। रात का पिछला पहर था, और हवा मे कुछ ठडक थी।

सुबह हुई तो पुलिस के दो आदमी हमारे घर मे आए। पुलिस का आना कोई अनहोनी बात नही थी, क्योकि जब से केवल की हत्या हुई है, दूसरे चौथे रोज पुलिस आती ही रहती है। पर आज पुलिस के इन दो आदमियो को देखकर मै सिहर उठी।

कहने लगे, "कल रात को चार-पाँच आतकवादियो ने पुलिस के दो सिपाहियो को घेरकर उनसे बदूकें छीन ली। और जब वे भाग जा रहे थे, तो किसी तीसरे पुलिस के आदमी ने उन पर गोली चलाई। वे सभी भाग गए पर सदेह है कि कम-से-कम एक को जरूर गोली लगी है, क्योकि लहू के छीटे मिट्टी मे पडे पाए गए है। और शायद वह जख्मी भागकर इसी गली मे आ घुसा है। पर आप लोग न डरें। जरा कुडी लगाकर रखें। वक्त-बेवक्त बाहर न निकलें। गली के सभी सिपा

के घरा की तलाशियाँ ले रहे है। भागकर जाएगा कहाँ ? किसी ने छुपाया होगा, तो मिल जाएगा। नही तो होगा गाव म ही कही, ढूढ निकालेंगे, अगर उसे साथी उठाकर और किसी ट्रक म डालकर कही दूसरी जगह नही ले गए तो। वैसे पुलिस को इसी ग्रुप पर शक है कि इन्होंने ही आपके केवल को भी मारा है। साले बहन के यार, बचकर जायेंगे कहा ? एक एक को पकडकर "

वे बोलते जा रहे थे। मेरी मा होठा पर पल्ला रखे चुपचाप सुन रही थी। और मैं दरवाजे के पास खडी अपनी रगो म दौडते लहू की आवाज सुन रही थी।

दोपहर हो गई थी, पर मै कोठरी मे नही जा पाई थी। मेरी माँ घर म इधर उधर चक्कर लगा रही थी। वह आजकल इसी तरह डोलती रहती, जसे उसकी कोई चीज खो गई हो और उसे याद न आ रहा हो कि क्या खोया था और वह क्या ढूढ रही थी।

आखिर दोपहर की रोटी खाकर वह रामायण खोलकर बठ गइ। मैंने चार पालतू पकाई हुइ रोटिया पर बैंगन की सब्जी रखी। दुपट्टे से ढककर मैंन आहिस्ता स ताला खोला, और कोठरी के भीतर चली गई।

दिन की रोशनी मे वह मुझे सहमे हुए बछडे की भाति लगा—रात से भी छोटा। उसके गाला के दोना ओर, ऊपरी होठ पर ओर ठोडी पर महीन, भूरे भूरे राएँ थे। मुझे लगा, उसकी ठोडी के नीचे जरूर एक छोटा-सा गड्ढा होगा—उसकी ठोडी के बीचोबीच।

उसकी आखें बन्द थी। मैंन आहिस्ता से उसकी बाह को उँगलियो से हिलाया। उसने आँखें खोल दी। आखा म काली पीडा तैर रही थी। दद और उनीदेपन से उसकी आँखा के पपोटे कुछ सूजे हुए लग रहे थे।

मैंन रोटिया उसकी ओर बढाइ। उसन कहा, "भूख नही है।" और फिर कराहते हुए उसने जख्मी टाँग को दोना हाथा से पकडकर कुछ सीधा किया।

"भूख न हो, तो भी खाना होगा," मैंने उसे हुक्म देने की तरह, और बडी होने के नाते कहा—जस बच्चा को डाटा जाता है।

उसन चुपचाप रोटिया पकड ली, और खाने लगा। मैंने रातवाला पानी का गिलास उठाया। खाली था। रसोई म जाकर मैं गिलास भर लाइ।

मैंन देखा रातवाले दुपट्टे पर, जो उसके जख्म के गिद लिपटा हुआ था, काला लहू जम गया था। और उसकी टाँग दुपट्टे के दोना ओर स लाल हो गई थी, और सूजी हुइ थी।

'बहुत दद है ?' —मैंन स्नेहपूण आवाज म पूछा।

'हाँ। गोली भीतर ही है टाँग म।

सुनकर मुझे अजीब तरह का धक्का लगा। आदमी के मास को फाडकर भीतर, माग और खून म छिपी हुई गोली! अजीब एहसास था यह!

अस्पताल ? मैं जानती थी, यह कितना फिजूल खयाल है। आज किस अस्पताल में क्षमता थी उसका इलाज कर पाने की ? दुनिया के सभी डॉक्टर और सभी अस्पताल उसके जख्म का इलाज नहीं कर सकते। सभी डॉक्टरों के औजार बेकार हो गए थे और सभी अस्पताल राख का ढेर बनकर रह गए थे।

मैं चुपचाप कोठरी से बाहर निकल आई और कोठरी को ताला लगा दिया। आँगन में दोपहर के पिछले पहर की धूप अलसाई-सी लेटी हुई थी। आँगन को लाँघकर मैं सामने के कमरे में आई। माँ अभी भी रामायण पढ़ रही थी, पर उसकी आवाज से लग रहा था कि उसका ध्यान कहीं दूर भटक रहा था। मैंने पिटारी में से एक मुड़ा-तुड़ा-सा नोट निकाला, दुपट्टा सँभाला, और गली में आ गई। गली में ही दूर बिसाती की दुकान के बाहर तीन सिपाही लम्बी बेंच पर बैठे थे। मैं दूसरी ओर से गली से बाहर निकली और घूमकर बाहर वाले बाजार की दवाइयोंवाली दुकान पर आ गई। "डिटोल की एक शीशी, रुई का बंडल, और पट्टियाँ," मैंने अपनी लड़खड़ाती हुई आवाज को सँभालने की कोशिश करते हुए कहा।

छोटा-सा कस्बा था। हर कोई हर किसी को जानता था। दवाइयों की दुकानवाला, जिसे हम सब डाक्टर ही कहते थे पर वैसे वह डाक्टर था नहीं, कहने लगा, "क्या हुआ ? कहीं माँ जी गिर विर तो नहीं पड़ीं ?"

केवल की मौत के बाद सबकी आवाज हमारे लिये कुछ ज्यादा ही नर्म हो गई थी। मैंने कहा, "नहीं। हाँ, जरा पैर में कुछ लग गई थी।"

"मैं घर आकर पट्टी कर दूँ ?" —उसने कहा।

"नहीं, कोई खास नहीं। मैं खुद ही कर लूँगी।" इस बार मेरी आवाज शायद ज्यादा ही घबराई हुई थी। उसने मुझे अपने चश्मे के शीशों के पीछे से नजर टिकाकर देखा, और डिटोल की शीशी, रुई का बंडल, और पट्टियाँ मेरे हाथ में थमा दिए।

सभी चीजों को हाथ में लेकर मुझे घबराहट हुई। यह सब इस तरह लेकर मैं गली में से कैसे गुजरूँगी ? "कोई लिफाफा ?"—मैंने उससे कहा। उसने लिफाफा निकालकर सभी चीजें उसमें डाल दीं।

दवाइयों की दुकान से निकलकर मैं परचून की दुकान पर गई। नमक की थैली और चार माचिस की डिब्बियाँ लेकर उसी लिफाफे में ऊपर ऊपर रख लीं और घर आ गई। वे तीनों सिपाही अभी भी उसी बेंच पर ही बैठे थे।

कोठरी में जाकर मैंने उसके जख्म से दुपट्टा उतारा। जख्म के आस-पास काला लहू जम गया था। डिटोल में रुई भिगो भिगोकर मैंने उसका जख्म साफ किया। इतना भयानक जख्म मैंने पहली बार केवल की पीठ पर देखा था—गोली का जख्म। पर वह बिलकुल बेचारा सा लगा था। एक सुराख, और सुराख के आस पास खून की धारें। इस तरह सूजा हुआ और भयंकर नहीं था वह जख्म।

मेरे सिर म अँधेरा घिर आया था, जिसे मैं अपनी पूरी ताकत से कहीं पीछे की ओर धकेलन की कोशिश कर रही थी। मरे कानों म बेहोश हो रहे खून की साँय साँय हो रही थी। पर मैं उसे पूरी ताकत के साथ अनसुना करने की कोशिश कर रही थी।

जख्म साफ करके मैंने रुई का बड़ा-सा फाहा डिटोल म भिगोकर उस पर रखा और पट्टी बाँध दी। उसने अपनी टाँग जख्म से ऊपर दोनों मुट्ठियों म कसकर पकड़ी हुई थी, और तकलीफ से उसके चेहरे पर हजारों काली रेखाएँ खिंच आई थीं।

रसोई म जाकर मैंने गुनगुने दूध का गिलास भरा, और लाकर उसके पास रख दिया। बाहर स कोठरी को ताला लगाया और गाय और मिट्टी स रगड़-रगड़कर हाथ धोने लगी तो भी लगता रहा कि डिटोल की गंध हाथों स नहीं जा रही। रसोई म जाकर मैंने चाय बनाई। एक गिलास माँ के आगे रख दिया, और चारपाई पर बैठकर दूसरे गिलास म से चाय के घूट भरने लगी। मेरी आँखों के आगे सिर्फ भयंकर, सूजा हुआ, और काले लहू से ढँका हुआ जख्म था, या फिर बाहर गली म दुकान के सामने बैंच पर बैठे हुए तीन सिपाही। पता नहीं किस वक्त मैं सो गई।

सोते हुए भी जैसे मैं जाग रही थी। मेरा एक हिस्सा था जो चौकन्ना होकर जाग रहा था। और मेरा सोया हुआ हिस्सा देख रहा था कि सामने सपाट मैदान थे भागते हुए खरगोश थे, और खरगोशों का पीछा करते हुए खूँखार कुत्ते। कुत्तों के भौंकने की आवाज के साथ ही मैं चौंककर उठ गई। सन्ध्या का अँधेरा कमरे की दरारों म सहमकर बैठ गया था। माँ कमरे म नहीं थी। और दूर कहीं कुत्ते भौंक रहे थे।

मैं उठकर पिछले आँगन म आ गई। माँ चूल्हा जलाकर उसके पास ही घुटनों पर ठोडी टिकाए बैठी थी और लकड़ियों म स उठ रही लपटों को देख रही थी। चूल्हे पर शायद दाल चढ़ा रखी थी।

मैं बिलकुल पास आकर खड़ी हो गई तो उसने धीरे स सिर उठाया "क्या? सिर दर्द तो नहीं है? कब स सो रही हो?"

जागकर भी क्या करना है?—मैं पूछना चाहती थी, पर चुप रही। उस सुलगती हुई खामोशी मे मैंने एक बार कोठरी की ओर देखा, और फिर माँ स कहा "उठो माँ! रोटियाँ मैं सेक देती हूँ।

माँ घुटनों पर हाथ रखकर चुपचाप उठ गई।

माँ को खाना देकर मैंने कटोरी म दाल निकाली, उसम चम्मच भर गर्म घी डाला, और थाली म रोटियाँ रखकर धीरे स कोठरी का ताला खोला। वह शायद सो रहा था। मैंने उसकी बाँह को छुआ। भट्टी की तरह तप रही थी। थाली नीचे

रखकर मैंने उसके माथे पर हाथ रखा। उसकी हर साँस म एक हल्की-सी कराह शामिल थी। मैंने उसकी टाँग को देखा। पट्टियो के ऊपर काला खून रिस-रिसकर जम गया था, और टाग अब बहुत सूज चुकी थी।

एक अजीब बेवसी मे मैं कमरे से बाहर आ गई। ताला फिर लगा दिया। मुझसे खाना नही खाया गया।

आधी रात को उठकर मैं कोठरी म गई। बत्ती जलाई। वह अपनी टाग पर झुका हुआ था। उसकी कराह लम्बी हो गई थी। मैंने उसे हाथ लगाया। वह उठा नही। रोटी उसी तरह थाली मे पडी थी, और दाल पर घी की सफेद तह जम गई थी।

पानी का गिलास लाकर मैंने उसका सिर उठाया और गिलास उसके होठो मे लगा दिया। पता नही वह जाग रहा था कि सो रहा था, होश मे था या बेहोश, दो घूट पानी उसने पी लिया, और फिर अपनी टाग पर झुक गया।

वह गठरी की तरह वहाँ पड़ा था—पुरानी पटिया के पीछे। और बाहर खतरा उसका सुराग खोज रहा था।

अगले दिन वह उसी तरह बुखार म तपता हुआ पडा रहा। सध्या के समय मैंने जबरदस्ती उसे गम दूध के दो घूट पिलाए। एक बार उसने आखें खाली। धीरे से कहा, "मै यहाँ नही मरूँगा। आपको मरी लाश बाहर निकालन म बहुत मुश्किल होगी, बहन!" टूट-फूट शब्दा म वह बोल रहा था।

मैं वापस कमरे म आई तो किसी न बाहर के दरवाजे की कुडी खटखटाई। 'इस वक्त कौन आ गया है?'—मेरी मा कुछ खीझकर बोली। मैंने बाहर जाकर दरवाजा खोला ता वही दोना सिपाही खडे थे। कहन लगे, "यो तो आपके घर की तलाशी लेने की कोई जरूरत नही पर हमारे कुत्ते वहा बाहर गिरे हुए खून को सूघकर बार-बार यही आ जाते ह। जरा भीतर से देखन दो।'

मैं बहुत घबरा गई। कहा, माँ रात-भर सोई नही। अभी खाना खाकर आख लगी है। आप घटे भर तक '

"कोई बात नही। सोने दो मा जी को। हम घटे तक आ जायेंगे। पर रात को "

"नही, रात को कोई बात नही।' और मैने उन्ह भज दिया।

"कौन था?" मा न पूछा।

'सिपाही थे। कह रहे थे तलाशी लेनी है। कोई भागकर इस गली म आ छुपा है।'

"कुडी अच्छी तरह से लगा ली है?'—मा न पूछा और चारपाई पर लेट गई।

कुछ देर बाद मैं धीरे से पिछली कोठरी मे गई।

उसने भी शायद बाहर कुडी की आवाज सुन ली थी। बेहोशी म ही कुडी की आवाज कैसे सुन ली उसने ? यह मैं आज तक नही समझ पाई। पर वह जाग रहा था। एक बदहवास खौफ था उसके चेहरे पर। "कौन था ?" उसने पूछा।

"पुलिस। तलाशी लेने आए थे। फिर आयेंगे घट-भर तक।"—मैं सारी बात जल्दी-जल्दी बताकर जैसे दायमुक्त हो जाना चाहती थी।

उसके चेहरे पर कोई फैसला आया। पक्का फैसला। पटिया को पकडकर वह उठ खडा हुआ। 'मैं जाता हूँ।' उसने बस इतना ही कहा।

मैंने भी उसे रोका नही। रोककर भी क्या कर सकती थी ? शायद उसे भी और मुझे भी पता था कि अब कोई बचाव नही कि बचाव के सभी रास्ते बन्द हो चुके थे। बाहर का खतरा दहलीज लाँघकर भीतर आ गया था।

लडखडाते हुए उसने एक कदम उठाया, फिर दूसरा, और फिर कोठरी से बाहर निकल आया। पिछला दरवाजा मैंने खोल दिया। उसने दरवाजे से बाहर निकलते हुए एक बार मेरी तरफ देखा। उसकी आँखों म मौत की परछाइ थी, और मोह था और कृतज्ञता थी और जाने क्या-क्या था ! मैं बता नही सकती। क्योंकि न मै ज्यादा पढी लिखी हूँ, और न मुझे अक्षर जोडने आते हैं पर मैं इतना जानती हूँ कि वह सब-कुछ बरसो तक मेरे आसपास मँडराता रहेगा, और खाली पलो म रह रहकर मेरे पास लौट जाएगा।

वह बाहर निकल गया। मैंने भीतर से कुडी लगा ली, और आहट लेती हुई वही खडी रही।

एकदम बहुत से कुत्ते भौंके। गोलियो की आवाज मटियाले अँधेरे को चीरती चली गई। पर सच कहती हूँ मैंने कोई चीख नही सुनी।

बाहर से सिर्फ कुत्तो के भौंकने की और भारी बूटो के दौडने की आवाज आ रही थी।

तभी गोलियो की आवाज से और दगड दगड की आवाज से मेरी मा शायद अध निद्रा और अर्ध चेतना की दहलीज से चौंककर उठ खडी हुई और बाहर के दरवाजे की ओर दौडती हुई चीखने लगी, 'रे ना मारो मेरे बच्चे को ! ना मारो मेर केवल को ! ना मारो गोलियाँ मेरे बेटे को !

लहू की रोशनी

—अफ़ज़ल अहसन रंधावा
(पाकिस्तान)

जब चक अमरू जाने वाली अंतिम गाड़ी दरबार साहब, कर्तारपुर वाले स्टेशन पर पहुँची, तब शरद की रात एक पहर गुजर चुकी थी। सारी गाड़ी में से शायद चार या पांच सवारियां उतरी होंगी। स्टेशन का बाबू जंगले के पास बत्ती पकड़े खड़ा थर-थर कांप रहा था। इतनी देर में गार्ड ने डिब्बे में से हाथ निकालकर हरी बत्ती हिलाई और गाड़ी दूसरी चीख मारके चल दी। रेल बाबू फकीरू कांटे वाले को सवारियों से टिकटें जमा करने के लिए कहकर स्टेशन के कमरे से चला गया। अंदर उसने अभी जाकर मेज पर बत्ती रखी ही थी कि एक सवारी भीतर आ गई।

"क्या बात है?" बाबू ने आने वाले व्यक्ति की ओर ध्यान से देखा। वह एक लम्बा चौड़ा गबरू जवान था। बाबू इतना ही देख सका था। आने वाले का चेहरा और बदन कम्बल में लिपटा होने के कारण छिपा हुआ था।

"बड़ी सर्दी है।" आने वाले ने कम्बल को और कसके अपने गिर्द लपेट लिया।

"क्या बात है जवान?" बाबू ने फिर पूछा।

"तुम्हारा नाम हरबंस लाल है?"

"हां।"

"यह गाड़ी कब मुड़ के (वापस) आनी है?" गबरू ने और निकट आके बाबू से पूछा। वह बत्ती के बिलकुल करीब आ खड़ा हुआ था। काले और सफेद खाना वाले कम्बल में से उसका थोड़ा सा मुंह, काली दाढ़ी, लम्बी लम्बी ऊपर को उठी हुई मूँछें और लाल मोटी मोटी आँखें नजर आ रही थीं। बाबू डर गया।

'न जाने फकीरू मां का खसम अभी तक क्यों नहीं लौट के आया,' बाबू ने सोचा। अपने दिल को तसल्ली देने के लिए उसने फिर हिसाब लगाया, 'आता ही होगा।' और बाबू ने फकीरू को आवाज दी। डरी-सी, सहमी-सी आवाज, जो मुश्किल से ही उसके गले से निकली थी। आने वाले गबरू का कम्बल जोर से हिला और उसका हाथ कम्बल में से बाहर निकला, जिसमें थ्री-नॉट-थ्री की राइफल थी। बंदूक की बादामी लकड़ी और काला लोहा बत्ती की रोशनी में चमका। गबरू ने बंदूक मेज के ऊपर बत्ती के पास रख दी। बाबू हरबंस लाल डर से कांप उठा। गबरू उसकी की तरफ देखकर धीमा सा हँसा और कहने लगा—

"पक्की रफल (राइफल) है ग्यारां (ग्यारह) गालिया वाली। मगर तुमने बताया नही गाडी लौट के कब आनी है ?"

"तडके," बडी मुश्किल से बाबू के मुह से निकला। बाहर से फकीरु शायद पाले के डर से आ रहा था। मेज के पास आकर फकीरु टिकटें रखने ही लगा था कि उसका ध्यान मेज पर पडी हुई बंदूक की ओर गया। फिर उसने एक बार बाबू हरबस लाल की ओर देखा जो भय से पत्थर के बुत की तरह अडोल खडा था और दूसरी बार उसने मेज के पास तसल्ली से कुरसी पर बैठे हुए गबरू की तरफ देखा जिसकी नजरें फकीरु पर गडी हुई थी। और फकीरु के बदन में भी खौफ की एक लहर गुजर गई। उजाड स्थान के स्टेशन पर शरद की रात, न कोई आए, न कोई जाए। 'मारे गए,' फकीरु ने सोचा, यह स्टेशन भी लूट ले जाएगा और कौन जाने गोली भी मार जाए!

गबरू ने एक तीखी सी नजर से फकीरु की ओर देखा और हँस दिया। जैसे उसने फकीरु के चेहरे से उसकी सोच पढ़ ली हो। उसने चादर की अंटी में से दस का एक नोट निकाला और फकीरु को पकडा दिया।

"मैंने कजरोट जाना है' उसने फकीरु से कहा।

"इस वक्त?" फकीरु ने हैरान होकर पूछा।

"हाँ। और लौटकर मैंने तडके वेले (समय) की गाडी भी पकडनी है!"

"इस वक्त जाना फिर तडके वेले की गाडी भी चढना," फकीरु ने बेखयाली से कहा। दस का नोट अभी तक उसके हाथ में अटका हुआ था।

"हां।"

'मुश्किल काम है" फकीरु ने हिसाब लगाके बताया—'पाच कोस जाना और पाच कोस आना ऊपर से पाला और अँधेरा मुश्किल काम है सरदार जी!"

गबरू फिर हँस दिया। उसके सफेद दांत फकीरु को बहुत अच्छे लगे। नोट अभी तक उसके हाथ मे था जिसका मतलब कुछ कुछ फकीरु की समझ में आ गया था कि इस गबरू ने, उसको कजरोड का रास्ता दिखाने के लिए साथ ले जाने का किराया दिया है। रब (ईश्वर) न करे गबरू उसको कजरोड साथ ले जाए। रात पाला पैदल सफर और पक्की रफल—रब न करे!' फकीरु काप गया और उसने नोट गबरू को लौटा दिया।

"रखो रखो! नशा पानी कर लेना।" गबरू ने हँसकर फकीरु का नोट लौटाते हुए कहा, "मैं तुमको कजरोड साथ नहीं ले जा रहा।"

गबरू ने उठकर मेज से बंदूक पकडी और टिकटो वाली अलमारी, जिसमें दिन का कैश था, की तरफ देखा। बाबू की नजरें गबरू के ऊपर जमी हुई थी और ऐसा लगता था, जैसे बाबू पत्थर का बन गया हो।

अच्छा सत श्री अकाल! और गबरू जल्दी से बाहर निकलकर अँधेरे में

गायब हो गया। बाबू और फकीरू उसे जाते देखते रहे और घड़ी-भर तो वे बोल भी न सके। फिर अचानक बाबू धड़ाम करके एक तरफ पड़ी चारपाई पर जैसे गिर-सा गया। फकीरू कहने लगा—

"लाला जी, लानत है ऐसी जगह नौकरी करने पर! कोई कत्ल कर जाए, कोई लूट ले, न कोई आने वाला और न कोई छुड़ाने वाला।"

"तू भी यहाँ मेरे पास ही चारपाई डाल ले फकीरू! परमात्मा आज की रात खैरियत से गुजार दे, मेरे दिल में कई वहम उठ रहे हैं।" बाबू ने फकीरू से कहा।

तड़के टाइमपीस के अलार्म से जब बाबू की आँख खुली, तब तार की खट-खट हो रही थी। गाड़ी चक अमरू से चल पड़ी थी। फकीरू फटाफट बत्ती जला के सिगनल करने चल दिया। बाबू ने रजाई में से निकलकर नीला सरकारी कोट पहना, ऊपर लोई ली और टिकटों वाली खिड़की खोल दी। दो-चार सवारियाँ जो स्टेशन के छोटे से बरांडे में बैठी हुई थीं, उठकर टिकटें लेने के लिए खिड़की के सामने आ खड़ी हुईं।

"एक वदो-मल्ली।"

"एक रड़या-खास।"

हाथ खिड़की के जंगले में घुसते रहे और टिकटें लेकर निकलते रहे। अन्त में एक हाथ अन्दर दाखिल हुआ और साथ एक भारी-सी आवाज आई।

"दो रायविंड।"

कुछ आवाज पहचान के और कुछ रायविंड के नाम से बाबू की नजरें उठीं। उसने हाथ की तरफ देखा—एक भारी सा चौड़ा हाथ, चौड़ी बाँह, काले बालों से भरी हुई थी। वाहगे रात वाला गबरू पूरी खिड़की रोके खड़ा था।

"सौ के टूटे नहीं हैं," बाबू ने गबरू को पहचान लिया।

"तुम टिकटें दे दो, बाकी कभी फिर ले लेंगे।"

बाबू ने घबराकर दो टिकटें और सौ का नोट भी गबरू की हथेली पर रख दिया। फिर दिल में सोचा, 'सस्ते छूट गए! चार पाँच रुपया की क्या बात है, पास से डाल देंगे।' और बाबू जान बच जाने के खयाल से खुश हो गया।

अभी बाबू यह सोच ही रहा था कि इतनी देर में गबरू कमरे के अन्दर आ गया। उसकी तिल्लेदार, ऊँची एड़ी वाली जूती गर्द से भरी हुई थी। उसने कुरसी पर बैठकर चादर से मुँह पोंछा और बाबू की ओर मुँह करके कहने लगा—

"तुम रायविंड भी रहे हो?"

'पूरे दो साल।'

"सुन्दर सिंह को जानते हो?"

"सुदर सिंह सफेदपोश, जीये वग्गे वाला ?"

'हाँ-हाँ !"

'जानना क्या होता है," बाबू आह भरकर कहने लगा—"वह तो मेरा भाई बना हुआ था बड़ा सूरमा आदमी था, राम राम !"

'हूँ !" गबरू ने हुकारा भरा।

"मगर वह तो कत्ल हो गया था तब ही।'

"हाँ।"

"जवान ! तुम पता नही उसके दोस्त हो या दुश्मन, मगर धरम से वह बड़ा मद आदमी था।'

बाबू अँधेरे म बाहर देखता हुआ कहने लगा, "इतना भलामानस और इतना साहु आदमी मैंने नही देखा।"

"हाँ सुना है," गबरू कहने लगा।

"ठीक सुना है तुमने। वह आदमी ही इस तरह का था, दुश्मन भी उसकी तारीफ ही किया करते थे। जिस रात उसका कत्ल हुआ, उस रात वह लाहौर से आया था। घड़ी पल मेरे पास रुका था और पानी पी के गाँव की ओर चल दिया था। वह पानी का गिलास उसका आखिरी गिलास था। दुश्मनो ने उसे रास्ते म ही ठिकाने लगा दिया। अकेला आदमी भले ही कितना भी जी दार क्यो न हो, आठ-दस आदमियो का मुकाबला कैसे कर सकता है ?"

'फिर ?

'फिर क्या ! सुदर सिंह के बाद उसका अकेला बेटा रह गया, आठ दस बरस का बालक !' बाबू ने आह भरी—'मगर उस बेचारे का भी दुश्मनो ने घूट भर लिया होगा। माझे की दुश्मनियाँ ! परमात्मा माफ करे !!!"

बाबू ने गबरू की ओर से मुँह फेरकर आँखो से बह जाने को तयार आँसू पोछ डाले। फिर कहने लगा—

"दस साल गुजर गए है उस रात को। धरम से एसा लगता है जसे सुदर सिंह कल मेरे पास से उठकर गया हो।' वह फिर चुप हो गया। कुछ सोचकर फिर गबरू से पूछने लगा—

"मगर तुमने यह क्या पूछा है ?

"बस एसे ही गबरू ने हँसकर कहा, "मैं भी जीये वग्गे का रहने वाला हूँ।'

' किसके बेटे हो ?

"सुदरसिंह का !' गबरू की आखो म एक अनोखी चमक आ गई थी।

बाबू उछलकर कुरसी से उठा, जैसे नीचे से बिच्छुआ ने डक मार दिया हो। गबरू के निकट आकर उसने अविश्वास के साथ उससे पूछा, "सुदर सिंह सफेदपोश का ?

"हाँ," गबरू ने असील कुक्कुट की तरह अपनी गरदन अकड़ाकर कहा।

गबरू की चौड़ी पीठ पर बाबू प्यार से हाथ फेरने लगा और फिर बोला, "तुमने कम्बल में मुँह-सिर छिपाया हुआ था, लेकिन धरम से तुम्हारा कद-बुत और आँखें हूबहू सुदर्शसिंह जैसी है। क्या हाल है तुम्हारा? घर-बार की सुनाओ!"

"सप्प-शीह (साँप-शेर) का घर कौन सा होता है? रातें सफर करते और दिन छिपते छिपाते कट जाते हैं। एक बेबे (मा) का दम था, वह भी नही रही मगर मैं कायम हूँ। आधी उम्र जेल मे कट गई और आधी दुश्मनों के पीछे भाग-भागकर। लेकिन रब सच्चे का शुक्र है, छाती तानकर फिरता हूँ। वाहगुरु की वडी किरपा है।"

गाडी पिछले स्टेशन स चल दी थी। बाबू ने उठकर तार खटखटाई, फिर पूछने लगा—

"तुम कजरोड क्या लेने गए थे?"

"एक काम से गया था।'

"तुम अकेले हो, मगर तुमने दो टिकटें क्या ली है?'

"मेरे साथ एक और सवारी है।'

गाडी की आवाज निकट आ गई थी। बाबू बत्ती पकडकर बाहर निकला। गबरू उसके पीछे-पीछे था। बरांडे के एक कोने से एक औरत जो एक कीमती गरम लोई मे लिपटी होने के कारण छिपी हुई थी, गबरू के पास आकर खडी हो गई। गबरू ने गठरी उसके हाथ मे पकड़ ली और कहने लगा—

"यह मेरा चाचा है, सलाम कर इसे!"

औरत घूघट मे कुछ बोली। बाबू ने हैरान होकर बत्ती ऊँची करके उसकी ओर देखा। न जाने कैसे घूघट एक तरफ से सरक गया। बाबू का बत्ती वाला हाथ अपने आप जसे नीचे गिर गया। दूसरे हाथ से उसने लडकी के सिर पर प्यार दिया और जल्दी से गबरू से कहने लगा—

"आओ, गाडी यहा थोडी ही देर रुकती है।'

गाडी प्लेटफार्म पर आकर खडी हो चुकी थी। बाबू ने गबरू को बाजू से पकड़-कर अपने साथ लगा लिया और उसके कान मे बोला—

"यह कजरोड वाले लाला धनीराम की बेटी रानो है न?"

"हाँ,' गबरू बगैर घबराहट के बोला, "अपनी मरजी से मेरे साथ निकल आई है।'

"नही पुत्तरा (बेटा)!" बाबू ने पहली बार गबरू को बेटा कहा, "यह पाप है।'

"यह पाप नही, बदला है चाचा!" गबरू छाती तानकर बोला।

"नहीं ओ पुत्तरा ! धरम से यह पाप है ! इतना बडा बदला ?" बाबू उसका चेहरा बिलकुल ही अपने चेहरे के पास करके कहने लगा, "तुम्हें तुम्हारे बापू की सौगध, तुम्हें मेरे सफेद बालों की सौगध, यह पाप न कर !"

गाडी ने सीटी बजाई, गार्ड ने हरी बत्ती हिलाई। गबरू ने जल्दी से पीछे हटकर औरत की बाँह पकडी और फिर एक बार उसने धीरे धीरे चली जा रही गाडी की ओर देखा और फिर दूसरी बार नाउम्मीद होकर खडे बाबू की तरफ, और उसने औरत को बाबू की ओर धकेल दिया। दो सेर पक्के सोने के जेवरों वाली गठरी औरत के हाथ में पकडाई और दौडकर, भागती जाती गाडी के आखिरी डिब्बे के डडे के साथ जा लटका।

अनुवाद यश सरोज

चूहा

—सुखवतकौर मान

लडकी को देखते ही उसका चेहरा खिल उठा।

"रिक्शे पर आई हो ?" एकदम कुछ याद आ जाने पर उसने बाहर की तरफ झाककर देखा।

"वो सामने के मकान वाला देख रहा है।" उसने करीब होते हुए थोडी फिक्र-मदी से कहा।

"ऊपर आ जाओ !" सीढियो की ओर इशारा करते हुए वह ऊपर की ओर चढने लगा।

"तुम्हारी हील की बडी आवाज है।" उसने आहिस्ता से कहा।

"जरा ठहरो !" ऊपर जाते हुए डरी-डरी सी नजरो से उसने इधर-उधर झाक-कर देखा और इशारे से उसको पीछे-पीछे आने के लिए कहा। आहिस्ता से उसने दरवाजे के पटो को खिसकाया और लडकी जैसे ही अन्दर दाखिल हुई उसने अदर से कुडी लगा ली।

दोनो ने एक-दूसरे की तरफ देखा। उनके चेहरा पर एक सहमी-सी मुस्कराहट फैल गई।

माथे पर उभर आए पसीने को हाथ की हथेली से पोछते हुए वह बेड पर बिखरी किताबो को मेज पर रखने लगा। अचानक उसने लडकी की ओर देखा। वह बाजार की ओर खुलती खिडकी मे से बाहर की तरफ देख रही थी।

"इधर आ जाओ !" माथे पर त्योरी चढाते हुए आहिस्ता लेकिन गुस्से के साथ उसने कहा और दबे कदमो जाकर उसने खिडकी बन्द कर दी।

"खडी हुई को तुम्हे किसी ने देखा तो नही ?" आदमी की आवाज स्पष्ट ही डरी हुई थी।

"कोई भी तो नही था !" लडकी ने थोडी हैरानी के साथ कहा।

"तुम नही जानती यहाँ के लोग किस तरह के हैं।"

"किस तरह के है ?" लडकी मुस्करा दी।

'तुम तो एकदम पगली हो !' आदमी ने लडकी के नजदीक होते हुए कहा— 'थोडा ध्यान रखा करो।" लडकी के और करीब आते हुए उसने सरगोशी मे कहा।

लड़की अभी भी मुस्करा रही थी।

"असल में डर-सा लगता है।" आदमी ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा।

लड़की ने अँगड़ाई-सी लेते हुए मर्द की आंखों में झाँककर देखा।

"सुबह से इंतजार कर रहा था।" लड़की के कंधे पर अपना हाथ रखते हुए मर्द ने कहा।

"कितनी तो दूरी है!" लड़की ने सफाई पेश करते हुए कहा।

"दिल नजदीक होने चाहिएँ।" आदमी ने लड़की के और भी करीब होते हुए और उसकी आंखों में आँखें डालते हुए कहा।

"तुम आई क्यों नहीं इतनी देर?" मर्द ने उलाहने भरे रोब के साथ कहा।

अब मर्द का हाथ लड़की के कंधों पर से आहिस्ता-आहिस्ता सरक रहा था। लड़की मंद-मंद मुस्करा रही थी।

"तुम बड़ी बेरहम हो!" लड़की के कान के पास मुँह ले जाते हुए मर्द ने कहा।

"तुम कौन से कम हो!" लड़की ने जरा ऊँची आवाज में कहा।

"शी...!" मर्द ने मुँह में मद्धिम-सी आवाज निकाली।

अब लड़की प्यार-भरी नजरों से मर्द की ओर देख रही थी। मर्द की आंखों में नशा था और उसका हाथ लड़की की कमर तक सरक गया था, उसका मुंह लड़की के मुंह की ओर और होंठ होंठों की ओर...

ठक, ठक, ठक!—मर्द का चेहरा एकदम फक हो गया। पत्थर का बुत बना वह जहाँ-का-तहाँ गड़ गया। कोई सीढ़ियाँ चढ़ रहा था।

"पिछले कमरे में चली जाओ।" मर्द ने धीमी मगर डरी हुई आवाज में कहा। फिर आहिस्ता से अंदर के दरवाजे की कुंडी बाहर से अड़ाते हुए, बिना खटका किए, अगले कमरे का दरवाजा खोलते हुए उसने देखा—सामने वाले पड़ोसियों की लड़की की सहेली खांबो उनके घर में घुस गई थी।

एक फीकी-सी मुस्कराहट मर्द के चेहरे पर फैल गई। लम्बा साँस लेते हुए उसने माथे पर छलक आया पसीना पोंछा। भीतर आते समय भी उसकी नजरें आस-पास ताड़ती रहीं। अंदर जाकर झट से वह बाहर आ गया। मकान के जंगले से सड़क की तरफ देखते हुए, सामने की छतों पर से फिसलती हुई उसकी नजर पड़ोसियों के घरों को ताड़ने लगी। टोह लेती नजर से आसपास को ताड़ता हुआ वह अंदर आकर दरवाजे को आहिस्ता से बंद करके भीतरी कोठरी के दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ।

'कहीं प्यून (चपरासी) ही न आ जाए! कम्बख्त को छुट्टी ही दे देता!' घड़ी की ओर देखते हुए उसने सोचा।

एक मिनट के लिए वह जैसे ठिठका, काँपते-से हाथा से दरवाजा खोलकर उसने अदर झाँका।

पसीने से भीगी और घबराई-सी कोठरी मे से निकलते ही वह पंखे के नीचे बिछी कुरसी पर गिर-सी गई।

"पानी लाऊँ ?" मद ने शर्मिदा-सा होते हुए पूछा।

"आगे सफर मे कौन-सी कम तकलीफ हुई है!" माथे पर से पसीना पोछते हुए रुआसी-सी हुई लडकी ने कहा।

"कौन सा अपने वस म है!" मद ने बुरा-सा मुह बनाते हुए कहा।

"मुझे इस बार जाना ही नही।" लडकी ने झूठी सी हसी हँसते हुए कहा।

'अच्छा।' वह मुस्कराया।

"तो ठीक है न ? करो वायदा!" उसने अपना हाथ मद के हाथ की ओर बढाते हुए कहा।

'असल मे मेरी नौकरी ही कुछ एसी है सोशल प्रेस्टीज अगर पता लग जाए तो ' आगे और कुछ भी न कहता हुआ वह सोच मे डूब गया।

"कभी मेरा भी खयाल किया है ?" लडकी ने निहोरा किया। कुछ कहने के बजाय मद ने अपना हाथ बढाया और उसके कधे पर टिका दिया। लडकी ने सिर उठाया और मद की तरफ दखा एक नशे स मद की आँखें मुद गई। एक नशे से लडकी की आखे मिचती गइ। मद ने हडबडाकर दरवाजे की तरफ देखा, जैसे कोई परछाइ आगे स गुजर गई थी।

"पाच बज गए!" घडी की ओर देखते हुए मद का रग उड गया। लडकी के कुछ भी बोलने से पहले उसन अपने होठो पर उँगली रखते हुए उसको चुप रहने का इशारा किया। लडकी को कोठरी म जाने का इशारा करते हुए और बाहर वाले बन्द दरवाजे की दराजो मे से झाँकते हुए उसने आहिस्ता से कुण्डा खोला और खडा होकर आखें मलने लगा।

'आ गया ?' उसने किचन म शीतल को घूमते देखकर कहा—"कमबख्त नीद ही नही खुली आज।' शीतल के कुछ कहने से पहले ही वह किचन के दरवाजे में जा खडा हुआ।

"चाय बनाऊँ ?' शीतल ने पूछा।

"नही, भूख बहुत लगी है, रोटी बना दे जल्दी! हाँ, सब्जी बनाने की जरूरत नही, दही-बडे ले आ बाजार से ।' कमरे के अन्दर लौटते हुए उसने कहा। अन्दर घसत ही उसकी नजर कुरसी पर पडे दुपट्टे म उलझकर रह गइ। तिरछी नजर से बाहर झाकते हुए उसने दुपट्टे को गुच्छू मुच्छू करके बेड पर पडे सिरहाने के नीचे रख दिया।

'अगर शीतू देख लेता ' सोचकर वह काप-सा गया। उसने सिरहाने की

तरफ देखा। कुछ ऊँचा-सा लगा। दुपट्टा सिरहाने के नीचे से निकालकर उसने दरी के नीचे कर दिया। पास की अलमारी खोलकर एक किताब उठाकर वह उसके पन्ने पलटने लगा।

कहीं शीतू ने उसे दुपट्टा दरी के नीचे रखते हुए देख न लिया हो—सोचकर उसके अन्दर लरजा-सा फैल गया।

किताब को मेज पर फेंक वह रेगूलेटर के पास जा खड़ा हुआ। "एक, दो, तीन, चार।" वह मुंह मे बडबडाया, फिर बेड पर आ बैठा। माथे के पसीने को पोंछ वह बेड पर लेट गया। उसकी नजरें फर्राटे भरते पंखे में उलझकर रह गई। "कमबख्त अभी बरतन मांजे जा रहा है।" रसोई मे से आते हुए बरतनों का खटका सुनकर वह बडबडाया।

"हद हो गई तेरे वाली, अभी बरतन ही   जल्दी कर! जल्दी रोटी खाकर बहुत सारा काम पडा है करने को।' रसोई के दरवाजे में खड़ा होकर शीतल पर खीझता-सा वह मुंडेर पर से झांका। उसकी नजर अन्दर वाली कोठरी के बन्द दरवाजे मे अटककर रह गई। अचानक उसने शीतल की ओर देखा। 'कहीं ' उसने सोचा।

उसने मेज पर रखे टाइमपीस की तरफ देखा—छः बज चुके थे।

"क्या भइ, इतनी देर क्या लगा रहा है आज?' रसोई मे खडा वह शीतल को झिडकता-सा बोला। हैरान-से हुए शीतल ने उसकी ओर देखा।

"रोटियाँ पकाकर दही-बडे ले आ बाजार से। दही-बडे न मिले तो चने ' कहता हुआ वह फिर अन्दर को हो लिया। बेड के नीचे पड़ी सैण्डल देख जैसे उस का ऊपर का सांस ऊपर ही रह गया। रसोई की तरफ देखकर बेड पर बिछी चादर को और नीचे खींच उसने ओट सी कर दी।

शीतल को हाथ में डिब्बा पकडे नीचे जाते देख उसने लम्बा सांस लिया। "मस्त मटक मटककर जा रहा है लाट साहब का बेटा!" खिडकी मे से बाजार की ओर देखता हुआ वह बडबडाया। कमरे में घुसकर उसने सैण्डल उठाकर अलमारी मे बन्द कर दी और दुपट्टे को बिस्तर के नीचे घुसेड दिया।

उसने इधर उधर झांका और अन्दर घुस आया। अन्दर से कुण्डा लगा वह कोठरी के दरवाजे का हल्का-सा खटखटाने लगा।

उफ अच्छी सजा मिली है!' चेहरे से पसीने को पोंछती हुई वह खीझी-सी पलंग से नीचे आ खडी हुई—'मुझे नहीं आना आगे से।

ओ हां नाराज हो गई हो?'

वह बोली नहीं मगर उसकी आँखों में बे मालूम सी नमी थी।

तुम तो खामखाह नाराज हो गई' मदन ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते

हुए कहा, "अच्छा तुम नहा लो। जरा जल्दी करना ! एक दोस्त है कमबख्त, इस वक्त भी आ सकता है।"

"आने दो, जो भी आता है," लडकी ने तल्ख होते हुए कहा।

"ओ हो, तुम तो सचमुच ही नाराज हो गई हो।" उसके कधे के ऊपर से हाथ लपटते हुए मद ने कहा। मद का हाथ कधे पर से झटककर लडकी उठकर गुसलखाने की तरफ हो ली।

"ऊपर चादर लपेट लो, पडोसियो का पता नही " मद ने एहतियातन कहा। लडकी ने चादर लपेटी और गुसलखाने मे चली गई। मद ने कमरे की खिडकी मे से झाका। खिडकी बद करके वह कुरसी पर आ बैठा।

"जरा जल्दी करो," इधर उधर झाकते हुए बाथरूम के दरवाजे के आगे खडे होकर मद ने कहा—"खटका जरा कम करो " मग के बाल्टी के साथ लगने का खटका सुनकर मद सहम-सा गया।

अचानक पडोसियो के दोनो बच्चे साथ की छत पर आकर खेलने लगे। अब पानी डालने का खटका नही आ रहा था।

'अपने-आप बाहर न निकलना," झट गुसलखाने के दरवाजे के पास खडे होकर वह फुसफुसाया।

बच्चे छत पर खेल रहे थे, भोले-भाले। लेकिन वह भीतर-ही भीतर खीझ रहा था। जल्दी ही बच्चो की मा ने उनको नीचे बुला लिया।

लडकी गुसलखाने मे से निकलकर अदर को हो ली।

"खाना बन गया है। रोटियाँ कुछ कम है।' अदर से दरवाजा बद करते हुए मद ने धीमे से कहा।

नहाकर लडकी का रग निखर आया था। शीशे के सामने खडी होकर वह बाल सँवारने लगी। पीछे खडा मद भी शीशे मे झाकने लगा।

ओ हो, बाल तो ठीक कर लेने दो!' लडकी ने बनावटी-सी नाराजगी के साथ कहा।

"तुम्हारे बाल कितने सुदर है, कितने मुलायम !" मद ने बालो को चूमते हुए कहा।

"क्या करते हो ? ' लडकी शीशे मे ही मद को देखकर मुस्करा पडी।

"क्या करता हूँ !" मद ने शीशे मे ही लडकी की ओर देखते हुए उसके गाल पर होठ टिका दिए। मद ने आहिस्ता से लडकी की कमर के गिद बाह लपेटते हुए उसको बेड पर डाल लिया थरथराते हुए हाथ पिघलते हुए अग रोम रोम मे

ठक, ठक, ठक !—कोई जोर से दरवाजा खटखटाने लगा। मद का रग उड गया। लडकी हडबडाकर उठी और आहिस्ता से पिछले कमरे की ओर खिसक गई।

ठक ! ठक !! ठक !!!

मद थथराया सा उठा। उसने इधर उधर देखा। लडकी के वाला की पिनो का दरी के नीचे रख वह दरवाजे की ओर हो लिया।

"यार, इतनी जल्दी सो गए ?"

"नही" मद ने मुस्कराने की काशिश करते हुए कहा।

तुम्हारे चेहरे का रग क्यो उडा हुआ है ?'

'सिर दद कर रहा है" मद का चेहरा और ढीला हो गया।

"मैने तुम्हे खामखाह तग किया।"

"नही, ऐसी ता कोई बात नही,' मदं न फिर मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा।

"कोई टेबलेट ल लेनी थी" आनेवाले ने कुरसी स उठत हुए कहा—"अच्छा तो तुम आराम करो, मैं चलता हूँ। उधर शर्मा की ओर जात हुए मैंने सोचा तुम्हार पास भी होता जाऊँ कहो तो कोई गाली भेज दू ?

'नही-नही है,' उसक मुह स जरा ऊँची आवाज म निकल गया।

"शुभ ह' उसके जात ही वह उठा और दरवाजे के पास जा खडा हुआ। अँधेरा हो रहा था। एक लम्बा साँस भरता वह अन्दर बेड पर ढह-सा पडा। दरवाजा खुला था। उठा, अन्दर स कुण्डी लगा, वह पखे के नीचे आ खडा हुआ। माथे पर आय पसीने का पोछकर उसन कोठरी का दरवाजा टकोरा। अन्दर से निकल लडकी बेड पर ढह-सी पडी।

"क्या बात है, तुम तो सिसकियां भर रही हो ?'

"नही तो! लडकी न आँसुआ म भी मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा।

'कमबख्त किस समय आ मरा! चलो उठो खाना खाएँ,' मद ने लडकी का सहलात हुए कहा।

अन्दर से कुण्डी लगा वे खाने बठ गए।

'भूख ही मर गई है मानी,' मद के मुह मे निवाला जैस फूल फूल जा रहा था।

'तुमन ता खाया हो कुछ नही ? मद न देखा दो रोटियाँ अभी भी प्लट म बची पडी थी और लडकी वाश-बेसिन के पास खडी हाथ धो रही थी।

"नाराज तो नही हो गई तुम ?' मद ने लडकी को बाहो म भरत हुए पूछा।

एकदम हवा के एक तेज झोके क साथ दरवाजा जार स हिल गया। डरकर मद ने लडकी की ओर देखा। लडकी सिमट गई थी।

"सारा दिन उमस भरा रहा है न, अब आँधी आएगी," मद न लडकी को अपन आलिगन म भरत हुए अनुमान लगाया।

'अब कोई नहीं आएगा" मद न लडकी क कान म कहा।

"दीवारो के भी कान होते हैं," लडकी ने कहा।

"हा तो !" मद मुस्कराया। लडकी भी मुस्कराई।

"तुम जानती हो, मैं तुम्हे कितना प्यार करता हूँ !"

"और मैं भी।" लडकी ने मद की आँखो मे देखते हुए कहा।

"हवा बन्द हो गई लगती है !" मद ने अनुमान लगाया।

मद का हाथ एक थिरकन, एक नशा, निवस्त्र, निरावरण जसे मोम-बत्ती होले-होले पिघल रही हो बूद-बूद करके, कण-कण करके बह रही हो खाड !

एकदम हडबडाकर मद उठ बैठा था। एकदम अपने गिद चादर लपेटती हुई लडकी दौडकर पिछली कोठरी की ओर हो ली थी।

कमर के ठीक बीचोबीच दोनो पजो को उठाए एक चूहा सीधा उनकी ओर झाकता हुआ फिर बेड के नीचे पडे जूठे बरतनो की तरफ जाने के लिए ओट तलाश रहा था।

कुलफी

—सुजान सिंह

महीना शेष होने का था, लेकिन समाप्त होने पर ही नही आ रहा था। सोच रहा था कि महीने के पहले आधे भाग के पन्द्रह दिन कैसे झटपट खत्म हो जाते हैं और तनख्वाह भी उन्ही पन्द्रह दिनों के साथ कैसे उड-पुड जाती है! मुझे पटडे की सफ (चटाई) चुभ रही थी। करवट बदलकर पीठ पर हाथ फेरा तो सफ की पीढ़िया (निशान) बदन में पड़ी हुई थी।

"मलाई वाली कुलफी!" ठण्डी सर्द आवाज मे कुलफीवाले ने हांक लगाई। उसकी आवाज कितनी देर तक मेरे कानो मे गूजती रही। दूध की सफेद कुलफी साकार मेरी आखो के सामने नाचने लगी। मेरे मुह मे पानी आ गया। लेकिन मैं बेबस था। पैसे की तगी हवालात की तगी से भी खराब होती है। मैंने अपने दिल की चाह से बचने के लिए 'कुलफी' शब्द की उत्पत्ति पर विचार करने की आड ले ली। कुफल का अर्थ ताला, सुनारा ने गहनों मे इसको लगाकर कुफल का कुलफी बना दिया। कुलफी को भी टीन के साचो मे बन्द करके जमाया जाता है—इसलिए कुलफी। और इस तरह धीरे धीरे, पता नही कब, नीद ने कुलफी से मेरा छुटकारा कर दिया।

मेरी दोपहर बाद की नीद अभी पूरी भी नही हुई कि मुझे मेरे छोटे काके ने झंझोडकर जगा ही दिया। मैं खीमा हुआ था लेकिन काके की तोतली आवाज ने मुझे शान्त कर दिया।

दा जी! कितनी आवाजें लगाईं, जागते ही नही आप?"

"हा, हाँ, तू क्या कहता है, बता ता!" मैंने कुछ बेचैन होकर पूछा।

"टका, एक टका दो दा जी!'

लेकिन टका मेरे पास था ही नही। मेरे पास आज कुछ भी नही था। जून की छब्बीस तारीख थी। घर का खर्च, बाजार की उधार की साख पर मुश्किल से ही चल रहा था।

'टका दो न, दा जी!"

बाहर मुरमुरवाला हमारे दरवाजे के आगे ऊँची आवाज मे हाक लगा रहा था।

कोई जवाब सोचने के वास्ते समय निकालने के लिए मैंने कहा, 'काका टके का तूने क्या करना है?

"खचना है मैंने टका, और क्या करते हैं टके का ?"

मुझे पता है, पहली जग के बाद जब बडी महँगाई हो गई थी, हमें धेला खचने को मिलता था और धेले के मसद्दी राम से लाये हुए चन खत्म होने म हीं नहीं आते थे। अब इकन्नी के भी उतने चने नही मिल सकते थे। मरी आमदनी, मेरे पिता की आमदनी के पासग भी नही थी, हालांकि मेरी पढाई मेरे पिता से कई गुना अधिक थी। मैं दुनिया की आर्थिक स्थिति और इस स्थिति को उत्पन्न करन और कायम रखने वाले धनकुबेरो के बारे म सोच विचार करने लगा।

बाहर स फिर "मुरमुरा चन" की हाक गूजी और साथ ही काके न कहा, "टका दो भी न दा जी !"

"टका खराब हाता है," मैंने परिस्थितिया स उत्पन्न हुई बदहवासी म कहा।

"हूँ, टका भी कभी खराब होता है, दा जी ? टके का मुरमुरा आता है।"

"मुरमुरा खराब होता है," मैंने कहा और बाकी की बात अभी मेरे मुह मे ही थी कि काके ने कहा, "मुरमुरा तो मीठा होता ह।

इस दलील का मेरे पास कोई उत्तर नही था। मैं भी मीठे का लोभी हूँ। लेकिन फिर भी मैंन अपनी कोरी हिकमत जतात हुए कहा, "मुरमुरे क साथ खासी लग जाती है, बच्चू !"

"आप टका द दो। मुझे नही लगती खासी वासी।"

लडका मचलता प्रतीत हाता था। टका मेर पास था नही। मैंन काके को टालन के लिए उसको पता नही क्या कह दिया—शायद बडा लोभ देकर भुलाने क लिए—

मुरमुरा गन्दा होता है ! हम शाम को बाजार स कुलफी खाएँगे।

मुरमुरे चनेवाला अब टल चुका था। काका भी मरी आशा के विपरीत शाम को कुलफी खान की बात मान गया था। समझा बला टली ! मैंन सोचा, कही कोइ और छाबडीवाला न आ जाए ! इसलिए मैं कपडे पहन कडकती धूप म बाहर निकल गया और सडको पर समय कत्ल करता रहा। कीमती समय मैं एक टके की माग से बचन के लिए नास कर रहा था।

मैं अपने मालिक से क्या नही कहता कि मेरा इतने म गुजारा नहीं हाता ? लेकिन सुनेगा कौन ? अकेल की आवाज चाहे कितनी भी ऊँची क्यो न हो, सुनी नही जाती। जरूरतमन्द इकट्ठे हो नही सकते। हो भी जाएँ ता रहन नही दिए जात, ताकि इकट्ठी माँग न करें। माग करन से कई बार नौकरी से जवाब मिल जाता है। मैं डर गया। बेरोजगारी के भयानक भविष्य मे मैं काप गया। कायरो की तरह मैं हमेशा से चुप रहा था और अब भी चुप रहने का ही फसला मैंने किया।

शाम को यह समझकर कि काका जल्दी सो जाता है, मैं दबे पाँव घर पहुँचा। आवाज नही लगाई, केवल कुण्डा ही खटखटाया। ऊपर से यह आवाज आई, "दा जी, आया जी" और थोडी देर पीछे काके ने आकर दरवाजा खोला।

'दा जी, कुलफी खाने जाना है?" उसन आस भरपूर लहजे मे पूछा।

"ऊपर चल, ऊपर," मैंने कहा।

काका बुझा बुझा-सा आगे चल दिया। चारपाई पर बैठ मैंने काके को गोद म ले लिया और फिर प्यार से कहा, "अब रात हो गई है, कुलफी कल खाएँगे।"

मामूल से उलट काका चुप हो गया। कितनी ही देर आसमान की ओर देखता कुछ सोचता रहा। फिर कहने लगा, "दा जी, तारे रुपए होते हैं न! बडी माँ कहती थी कि तारे रुपए होते ह। तो दा जी, रुपए हमारी छत पर क्या नही बरस जाते?"

मैंने यह कहकर "तारे रुपए नही होते" मानो उसका स्वप्न ढहा दिया। वो पलँग पर लेट गया और आसमान की ओर देखता आखिर सो ही गया।

दूसरे दिन काम पर मैं अपने साथियो से कुछ मागने की कोशिश करता रहा, लेकिन हिम्मत नही हो रही थी। माँगना बहुत ही मुश्किल काम है। मौत जितना दु ख होता है मागने म।

आखिर एक साथी से तीन रुपए ले ही लिये। जब घर आया तो काका दोपहर की नींद ले रहा था। रोटी खिलाते समय श्रीमती जी ने तीन रुपए हथिया लिये। आधा मन लकडियाँ शाम की सब्जी, नमक, तेल आदि म काके के जागने से पहले तीन रुपए खत्म हो गए। मैंने कहा भी कि काके को कुलफी खिलानी है, मगर उन्होंने कह दिया, "बडा उसको याद रहना है। मैं टका द दूंगी मुरमुरे के लिए।"

काके ने जागते ही कुलफी माँगी। चीख पुकार मच गई। कल वाला मुरमुरा और टका मजूर नही थे। आखिर शाम को कुलफी खिलाने का वायदा करके छुटकारा पाया और काके ने टका मेरे पास जमा करवा दिया। शाम से पहले ही मैं किसी से मिलने का बहाना करके निकल गया और फिर रात देर गए लौटा। काके को सोया देखकर साँस म साँस आया। रोटी खिलाते समय श्रीमतीजी ने बताया कि काका बडी देर मेरी प्रतीक्षा करता रहा था। मैं काका के साथ लेटा बडा बेचैन रहा। नींद आ ही नही रही थी, लेकिन आखिर पता नही कब आ गई। नींद तो कहते हैं काँटो पर भी आ जाती है।

आधी रात के बाद का समय था। काका सोया हुआ कुछ बेचैन जान पडता था। उसने दो-तीन बार पेट म टाँगें मारी थी। जब उसने बाजू उठाकर मेरे मुँह

पर मारा। जागा तो मैं पहले ही हुआ था, अब चेतन हो गया। काका सोते मे कुछ वडबडाया। मुये कुछ पता न लगा। फिर वो और जोर से बडवडाया, "कुफी, कुफी, दा जी, कुफी।" मैं विह्वल हो उठा। "सरदार जी, जागते हो?" श्रीमती-जी ने कहा, और यह जानकर कि मैं जागता हूँ, उसने अपनी बात जारी रखी, "खसमाँ खाना साया हुआ भी कुलफियाँ माँग रहा है।" मुझ पर जैसे बिजली गिर गई थी। मैं चुप रहा और काका भी चुप हो गया।

सवेरे जागकर काके ने कुलफी की कोई माग नही की। मेरे काम से लौट आने पर भी उसने मुझसे कुछ न माँगा। रोटी खाकर मैं दोपहर की नीद लेने के लिए लेट गया। उस चुभन वाली सफ पर और उधार न ले सकने की असफलता पर झुंझलाता रहा। फिर मुझे नीद आ गई। मेरी नीद अभी आधे रास्ते म ही थी कि गली मे किसी कुलफीवाले न होक लगाई, "ठडी-ठार कुलफी! मजेदार कुलफी!" मैं जाग गया। काका मरे पास ही रबर की पटी बत्तख स खेल रहा था। दूसरी आवाज पर उसके कान खडे हो गए। बत्तख को फेंक वो उठ खडा हुआ। दरवाजे क पास जाकर वो खडा होकर बाहर देखने लगा। मैंने सोचा, अब मुझे जगाने आएगा, लेकिन वो वहीं ही खडा रहा। फिर वो बाहर चला गया। मैं चुपचाप उठकर दरवाजे की ओट मे आ खडा हुआ। कुलफीवाला सामने शाह जी क लडके को कुलफी निकालकर दने के काम म लगा था। यह लडका गली का 'बुली' था और अपने स छोटे लडको को हमेशा पीटा करता था। यह कोई आठ बरस का था और हमारे काके स करीब तीन साल बडा था। काका सिपाहियो की तरह टाँगें चौडी करके और कमर क पीछे हाथ बाधे खडा था। कुलफी की ओर वो बडे गौर से देख रहा था। लेकिन उसने कुलफीवाले से कुलफी नही माँगी थी। जसे ही कुलफीवाले न शाहो के लडके के हाथ म कुलफी की प्लेट रखी, काका झपटकर उस पर टूट पडा। वो गई प्लेट, वो गई कुलफी, फलूदा और चमचा और मोरी म गिरा शाहो का लडका। किसी विजेता की भाति काका उसकी ओर देखता रहा। शाहो का लडका गुस्सा खाकर उठा—कुलफी का नुकसान और अपनी हेठी उसको जसे नया जोश द रही थी। जसे ही वो उठा, काके ने फिर उसको एक ऐसी ठोकर मारी कि वो फिर मोरी में जा गिरा और चीखें मारने लगा। कुलफीवाला काके को चाँटा मारने क लिए बढा। मैंने दौडकर काके को उठा लिया। कुलफीवाले न शाहो के लडके को उठा लिया।

शाहनी, जो किसी का कोई उलाहना नहीं सुनती थी, आज हमारे घर उलाहना देने के लिए आई। काके का शरीर तप रहा था। श्रीमती ने कहा, "आ खसमाँ-खानया! तू लगा है अभी स उलाहने लाने?" और मारने के लिए चाटा उठाया। मैंने कहा "कुछ वाट मुदन (पगली)! कायर बाप के घर बहादुर बटा पैदा हुआ है!"

अनुवाद यश सरोज

काम या चाम

—सतसिंह सेखों

अंबा अपनी माँ के ना-ना करते भी ट्रांसपोर्ट कम्पनी में कंडक्टर जा बनी थी। उसका पिता मर चुका था और घर के मुख्तार उसका बड़ा भाई और भाभी थे। शायद अंबा की माँ की ना का कुछ असर हो भी जाता, अगर अंबा की भाभी के प्रभाव से अंतगत और कुछ कीमतें चढ़ी होने के कारण अंबा का भाई उसके यह नौकरी पर लेने के पक्ष में न होता। परन्तु इससे यह अनुमान नहीं लगा लेना चाहिए कि अंबा के भाई और भाभी के दिलों में अंबा के लिए कोई स्नेह भाव नहीं था। नहीं, वे अंबा के उतने ही शुभचिंतक थे जितना कोई भाई भाभी हो सकते हैं। वे क्यों न चाहते कि अंबा किसी खाते-पीते घर ब्याही जाती जिनका अच्छा बड़ा व्यापार होता या किसी चाँदनी चौक जैसे बाजार में बजाजी की नहीं तो मनियारी की दुकान होती, या कम से-कम लड़का किसी सरकारी दफ्तर में सौ-सवा सौ मासिक का क्लर्क ही होता? दुःख तो यह था कि अंबा के चेहरे पर माता के दाग थे, और जिस घर से भी अंबा के भाई ने अंबा के रिश्ते की बात चलाई थी, उस घर को किसी न किसी तरह अंबा के चेहरे पर शीतला के दागों का पता लग गया था। अंबा को ऐसा लगता था जैसे उनके पड़ोसियों की बेटी सरूपा जो सच मुच ही सुन्दर रूप वाली थी उन घरों में उसकी चुगली जा करती थी। पिछले अठारह-बीस वर्षों से, जब से इन दोनों ने होश सँभाला था जिससे यह भी अंदाजा लगाया जा सकता है कि अंबा की आयु उन दिनों कम-से-कम तेइस वर्ष की रही होगी, क्योंकि उसकी सगाई की बातें होते भी तब पाँच साल से ऊपर हो गए थे सरूपा उसको राख पर कनियाँ (बूँदें) पड़ी हुई कहकर चिढ़ाती ही नहीं बल्कि जलाती रही थी। लेकिन सरूपा या किसी और चुगलखोर को भी क्या दोष देना

चार बच्चा की माँ भी थी। एक औरत के मुँह की राख पर तो अबा से भी अधिक कनियाँ पडी हुई थीं। 'अरी मरी,' अबा सोचती, 'तुझे भी मैं पसन्द न आई?' और फिर मुह की राख पर अबा के चेहरे से भी अधिक कनियो वाली वह पारखी युद कोई अविवाहित टीचर या टाइपिस्ट या कडक्टर नही थी वह भी किसी घर की रानी थी जिसके सबूत मे उसके हाथो, नाक, कानो म दस तोले सोना पडा हुआ था। शायद उसके दो चार बच्चे भी हो, लेकिन वो साथ किसी को नही लाई थी। न जाने उसको किस बात का हौसला था, उस दस तोले सोने के सिवा कि उसका शरीर कही से भी ढीला नही हुआ था।

'और अगर कोइ बच्चा नही अभी तक' अबा सोचती, 'और न कोई हुआ दो-चार साल, तो भी मेरी तरह कही दिल्ली ट्रासपोर्ट म कडक्टरी की असामी ही तलाशेगी।' और यह सोचकर अबा के होठो पर थोडी-सी मुस्कान आ जाती।

अब जब अबा ने यह कडक्टरी करना स्वीकार कर लिया था, उसकी उम्र पच्चीस साल से कम नही थी और उसके भाई भाभी थक चुके थे उसके लिए लडका खोजते। लेकिन यह महीना जो उसने कडक्टरी की थी, उसका बडे आनन्द स गुजरा था। हालांकि कश्मीरी गेट से लेकर लोधी कालोनी तक टिकट काटते, यात्रियो को चढाते और उतारते खडे-खडे उसकी टाँगें घुटना मे टूटन वाली हो जाती, उसको यह नौकरी अभी अच्छी लगने से हटी नही थी। इसका एक कारण यह था कि जब कई पुरुप यात्री उसके निकट होकर उसे देखत तो उनकी आखो मे अबा को एक प्रकार से अपनी विजय की झलक ही देखने को मिलती। यह ठीक है कि बहुत-से ऐसे पुरुप यात्री पैंतीस चालीस पार कर चुके हुए होते थे। जवान लडके जब अबा की आखो की ओर देखते तो उनकी आखो म अबा को शरारत की चमक दिखाई देती जैसे वो अबा पर हँस रहे हो और उस चुडैल सरूपा की तरह उसका 'मुह की राख पर कनियां पडी हुइ' ताना मार रहे हो। लेकिन अबा इस तरह के जवान लडको का इतना खयाल ही नही करती थी, झट टिकट काटकर, पैसे लेकर आगे पीछे हो जाती। मगर अधेड पुरुपो के पास टिकट काटने के लिए जाने म उसको मजा आ जाता। उनके पास खडे होकर अबा को अपने लडकपन पर मान सा हो जाता। एक दिन तो एक ऐसे यात्री न अपने साथी से, जो उसकी चार-पाच बच्चा वाली थल थल करती बीवी ही थी, अबा की आयु का अनुमान लगभग सत्तरह का ही लगाया था। इतनी छोटी उम्र की लडकियो को मुलाजिम रखने की कानून की तरफ से आज्ञा नही होनी चाहिए उसने कहा था। उसकी थल-थल करती साथिन ने जवाब दिया था, 'यह सत्तरह साल की नही, कम-से-कम बीस साल की होगी।' अबा का मन हुआ कि अगर कानून आज्ञा देता हो और अगर उस औरत का मद भी उसके साथ न उतरे तो अबा उसको और एक पल भी बस म न बैठने दे। और

फिर खडे खडे थक जाने वाली बात का भी अवा के पास एक इलाज था, भले ही इसम कुछ थोडा शरारत का भी अश आ जाता था, लेकिन अवा सोचती कि इतनी सी शरारत इस उम्र म माफ होनी चाहिए और फिर उन पुरुषा के साथ जो उसके बाप-जसे थे। वह शरारत केवल यह थी कि कई बार टिकट काटत समय अवा किसी ऐसे पुरुष के साथ लगकर, उस पर थोडा सा अपना बोझ डालकर खडी हो जाती, और आदमी म कुछ ऐसी दुबलता होती कि अवा को माफ दिखाई दे जाता कि वो आदमी जिसके साथ वह ऐसे सहारा लेकर खडी होती, इस कारण बडा खुश होता।

'लेकिन निगुन, अगर तू कुआरा या इतनी बडी उम्र का होन के कारण तीन बच्चो का बाप रडुआ भी हो, तो क्या जब मेरा भाई तुझे मेर रिश्त के लिए कहे और तू मुझे देखना चाहे तो मुझे मिलने पर मेरे चेहरे के दागा को देखकर सिर नही फेर लेगा?' अवा सोचती। उसे याद था ऐसे ही एक पैंतीस साल पार कर चुके तीन बच्चा के बाप ने, जिसकी पहली पत्नी को मरे मुश्किल स छ महीन ही हुए थे, उसको किसी बहाने देखा था और फिर कह दिया था कि अवा के चेहरे के दागा की उस इतनी परवाह नही थी अगर अवा का कद थोडा लम्बा होता। तब स अवा को अपने कद के छोटे होने का भी चुभता सा एहसास होने लगा था।

एक दिन एसे ही एक तीस साल के मुसाफिर के ऊपर थोडा सा बोझ डालकर अवा टिकट काट रही थी कि उस मुसाफिर ने धीरे से अपनी बाँह अवा की पीठ पीछे लगा दी थी, उसको और सहारा देने के लिए। उसके ऐसा करने मे अवा अपने सपने से जाग पडी थी। उसने सावधान अपने भार खडी होकर उस यात्री की ओर देखा था और फिर उसकी हैरानी की हद नही रही थी, यह देखकर कि यही मुसाफिर कोई तीन साल पहले अवा के रिश्ते म मना कर चुका था। अवा के दिल म आया कि उसके मुह पर चाँटा मार और पूछे—मरदूद, अब मेरे चेहरे के दाग साफ हो गए है और कि मैं दो इच ऊँची हो गई हूँ? उस समय अवा को स्त्री सभा की सचिव सुलखना (सुलक्षणा) की बात याद आ गई थी कि आज की नारी समाज के जुल्म की चक्की म पिसकर वश्या नही बनगी आर्थिक स्वाधीनता स्थापित करके मुकाबला करगी। उस समय अवा को अपनी इस आर्थिक स्वाधीनता का एक सुन्दर विजय भरा अनुभव हुआ था और वह उस तीस वष की आयु के यात्री को क्षमा करके दूसर स्थान पर जा खडी हुई थी।

इसम सन्देह नहीं कि जिस दिन स अवा इस नौकरी पर लगी थी, उसको अपने स्वास्थ्य म अतर उत्पन्न हो गया महसूस होता था। उसको भूख खूब दिल खोलकर लगती थी और भले ही वह इन राशन वाले दिना म रोटी पहले जितनी ही खाती थी, उसका उसम म अधिक खुराक मिलती प्रतीत होती थी। पहले सप्ताह जब खडे-खडे उसकी टाँगें टूटन लग जाती थी। उसम उसका हौसला ही करीब करीब टूट गया था और उसको डर लगने लगा था कि वह शायद बीमार हो जाएगी और

इस कारण हो सकता था कि उसकी नौकरी ही उससे छिन जाए। लेकिन दूसरे सप्ताह उसकी टाँगें पहले की अपेक्षा कम थकने लगी थी और उसको महसूस होने लगा था जैसे वह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक शक्तिशाली होती जा रही थी। और कोई माने या न माने, उसको शीशे मे अपने चेहरे के दाग भी कुछ मद्धिम होते प्रतीत होते थे। ऐसे में वह अपनी उँगलियो के पोर अपने कपोलो पर वहाँ-वहा फेरती जहा ये दाग अधिक गहरे थे। सभवत उसे दपण पर विश्वास नही होता था। उसकी उँगलियो के पोर शायद उसके सामने होने के सबब झूठमूठ या शायद सच्चे भाव से साक्षी देते प्रतीत होते थे कि ये दाग कम गहरे हो रहे थे। लेकिन फिर अबा स्वय से कहती, अब मुझे इनके गहरे या गूढ होने की कोई चिन्ता नही, मुझे अब कौन-सा विवाह का परीक्षा मे बैठना है? और चाहे यह माना नही जा सकता कि अबा के मन मे विवाह की भावना नही रही थी और ऐसी भावना का मारा जाना भी कोई अच्छी बात नही थी, इतना अवश्य था कि अबा का वर घर प्राप्त न होन का पछतावा बहुत कम होता जा रहा था।

कल उसे महीना समाप्त होने पर वेतन मिला था, पूरे सौ रुपये। ये सौ रुपये लेकर अबा जिस उत्साह से घर पहुँची थी, वह शायद उसको अगर वह ब्याही होती, पहले बच्चे को जन्म देने के लिए मायके आती के मन म भी न होता। उसने ये सौ रुपये अपने पास नही रखे थे। वह इतनी खुदगरज और निर्मोही नही थी। लेकिन न ही उसन यह रुपया ले जाकर मा को दिया था क्योकि मा अब उनके घर की कर्ताधर्ता नही थी। ये सौ रुपये उसने जाकर अपनी भाभी को दिये थे। नीति की यही माग थी और वैसे भी अगर उसन ये रुपए सम्भालकर ही रखने थे तो भाभी को छोड और किसके पास रख सकती थी? अबा का भाई, घर का कर्ताधर्ता भी तो रुपया-पसा लाकर भाभी को ही देता था। भाभी ही इस घर की भडारिन थी।

"अबा बीबी, तू अपने रुपए अलहदा रख, अपन भाड के पास या डाकखान मे जमा करवा दे। हमने तेरे पैसे नही बरतने," भाभी ने कहा था।

"मेरा बैंक तो भाभी जी आप ही हैं," अबा ने जवाब दिया था।

इस पर भाभी ने अबा को आलिंगन मे भरकर उसका दागा वाला माथा भी हल्का-सा चूमा था।

अबा को भाभी बडी अच्छी लगी थी और उसन भी आग से उसको प्यार के साथ जोर से दबाया था। सच है कमाते-खाते को दुनिया प्यार करती है और प्यारी भी लगती है।

लेकिन बात तो करने वाली आज की है, जब अबा एक यात्री को अपन साथ

घर लाई थी। वो मुसाफिर जोर लगा रहा था पड़ोस के किसी घर जाने के लिए और अवा उसको कह रही थी, "घबरा नही, अभी तेरे साथ जाकर छोड आती हूँ मुह-हाथ धो ले।"

आज जिस समय अवा अपने दिन के अंतिम चक्कर कश्मीरी गेट की तरफ आ रही थी, जहाँ से उसने अपनी दिन की नौकरी पूरी करके घर को आना था, तो उसको यह यात्री बस मे मिल गया था। अवा रोज की तरह ही वही जवान लडका और औरतो मे चक्कर घडी होती और वही अधेड पुरुषो के साथ सहारा टेकती टिकटें देती आ रही थी कि पहली सीट पर आकर उसने इस यात्री से "कहाँ जाना है?" पूछा था। इस यात्री का चेहरा उतरा हुआ था और आँखो में कुछ आसू भी ढलके हुए थे, लेकिन अपने काम में व्यस्त अवा ने उसकी आँखो की ओर कहाँ से देखना था? केवल इस यात्री की भर्राई हुई आवाज ने अवा का ध्यान इसकी ओर खीचा था।

'सरुपा ?' अवा ने हैरान होकर कहा था।

"तू अवा?' उस भर्राई हुई आवाज ने जरा साफ होकर कहा था, 'तून नौकरी कर ली है?"

यह प्रत्यक्ष था, फिर अवा को उसे प्रत्यक्ष का प्रमाण क्या देना था? फिर जब सरूपा ने कश्मीरीगेट कहकर आवश्यक किराया निकालकर पेश किया था, तो अवा ने रिवाजन ही वो पैसे लेने से एक बार मना कर दिया था लेकिन फिर अपनी नौकरी की मजबूरी समझकर ले लिये थे।

तो भी अवा के मन में सरूपा के लिए स्निग्धता थी और अवा पैसे ले, टिकट काट उसके पास ही बैठ गई थी। तब सरूपा ने बताया था कि वो क्यो अकेली आज इस बस में कश्मीरी गेट अपने मायके घर जा रही थी और क्यो उसकी आँखो में आसू थे। सरूपा ने बताया था कि उसका पति, जो बडे दफ्तर में एक छोटा अफसर था, अपने घर एक दूसरी स्त्री ले आया था जो सरूपा से सुन्दर भी नही थी और आज लडाई झगडे के बाद उसने सरूपा को बाह से पकडकर घर से बाहर निकाल दिया था।

परन्तु अवा का पूरी तरह अपने जीवन की सफलता का अनुभव तब हुआ जब अवा सरूपा को उसके मायके छोडकर वापस आई। अवा की भाभी ने उसको बताया कि उस तीन बच्चो के बाप रडुए व्यक्ति ने, जो कुछ वर्ष पूर्व अवा के रिश्ते से इनकार कर चुका था और जो, जैसा कि केवल अवा को ही ज्ञात था, एक दिन अवा को बस में उसकी नई प्राप्त हुई शक्ति का प्रमाण दे चुका था, अवा के रिश्ते के लिए उसने अब संदेशा भेजा था।

अनुवाद यश सरोज

मगो

—सतोखसिंह धीर

हुकमे मॉगट की गाय जब दूध देना बन्द करने लगी तो वह एक गाय और ले आया जो आज या कल में ब्याने वाली थी। घर में दूध के बगैर किरती किसान का घडी भर भी गुजारा नही चलता।

पहली गाय, मगो, घर की हाथो से पाली हुई बछिया थी। चूकि वह मगल वार को हुई थी, इसलिए उसका नाम मगो था। नई गाय सोमवार को आई थी, इसलिए उसका नाम सोमा पड गया।

सोमा जब खूँटे पर आकर खडी हुई तो सारा परिवार नई गाय के गिर्द जमा हो गया। छोटे बच्चे खुशी से उछलने लगे। हुकमे ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा और थूथनी पर प्यार किया। हुकमे की घरवाली चिन्तो सगन करने के लिए तसले मे गुड, चने और चाँदी का तम्गीरा डालकर लाई, मुह के आगे रखकर सर थपथपाया और पीठ थपथपाने लगी।

मामा ने बेरुखी से तसला सूघा, फिर भयभीत आँखो से चुपचाप घर की तरफ देखने लगी। चिन्तो ने उसके भुने हुए पट पर हाथ फेरा, भरे हुए थन टटोले, लेवे पर से एक चिच्चड तोडा और होठो से 'पुच्च पुच्च' की आवाज निकालने लगी, ताकि गाय सामने के रखी चीजें खा ले। बहुत कहने पर सोमा ने तसले मे थोडा-सा मुह मार लिया और फिर चुपचाप खडी ताकने लगी। उसके मुह पर पानी की दो धारें बह रही थी।

"इसे तारेमीरे की पेडी दे, चिन्तकौर, मैं जानू इसे बादी है" हुकमा बोला।

"चाहे पडी ही दे दो" चिन्तो ने ढीली सी आवाज म कहा, फिर गाय के असली दु ख को बूझकर बोली, "अभी इसका दिल नही लगा, गम करती है, अपने जैसी ही आत्मा है," उसने तसला उठाकर पानी दिखाया, फिर भूसे की सानी करके आगे डाल दी।

"चने तो कुछ भी नही खाए!" हुकमे ने तसले की तरफ देखकर कहा।

गाय देखने आई पडोसिन बोली, "अभी अजनबी है, नया पशु बहुत नही चर सकता। मेरा खयाल है यह सुरा नस्ल की है, मुश्किल से बकरी जितनी खुराक होती है इस नस्ल की, और दूध देती है भरपूर। दाने का खयाल रखना!"

"भागां वाली हां बहन, दाना बहुतेरा है," चिन्तो ने कहा।

"अच्छा बहन, तुझे लहना कर" मजाक करने के लिए पड़ोसिन ने बधाई दी। "धौली धार तो रब्ब सबको दिखाए!" कहती हुई वह चली गई। हुक्मा हथेली पर तारमीरे की पेड़ी ला रहा था। मन के खौफ से डरकर उसने हौले से कहा, "राह की मट्टी छुआकर चूल्हे में डाल देना, चितकोरे, बाजी-बाजी नजर तो पत्थरों को फाड़ जाती है!"

पास खड़ी मंगो यह सब कुछ देख रही थी। इतनी देर तक किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया था। आज किसी को इसका खयाल नहीं आया और नई मेहमान के लिए सारा परिवार भाग रहा है। मंगो को यह बात खा गई। यह घर की मालकिन ठहरी और वह परदेसन। यह यहां पैदा हुई, पली, मुटियार होकर इसने तीन-तीन सुए मिलाए, और वह मोल ली हुई, अनोभड़ क्या पता कितनी बार ब्याने वाली है, क्या पता ब्याती भी है या महीना छड़ें मारकर दौड़ जाए! यह घर घराने की, एक ही जगह खड़ी हुई, इज्जत वाली। वह जगह-जगह से होकर आई पागल और गरजात! उसके अन्दर क्षोभ जाग उठा और घरवालों के खिलाफ उसके मन में गिले उठने लगे। क्या हुआ अगर अब मेरे थनों में दूध नहीं रहा! नौ महीने तो हो गए हैं थन निचोड़ते को। आगे फिर आस है। अब भी अगर दूध न सूखे तो क्या हो! एक-एक बूंद तो निचोड़ लेते हैं। मैं दूध को कौन-सा कहीं और दे आती हूं? बस, बदन में लहू बाकी है, उसे भी निचोड़ लें। बछड़ा मरा तड़पता रहता था। उसके लिए भी ये कम्बख्त दूध नहीं छोड़ते थे। सारी-सारी रात रंभाता रहता था। अपने बच्चों के बराबर तो उसे न जाना। मुझे रुलाया अपनों को खुश किया। दो थन छोड़ने चाहिए बछड़े के लिए। सूखे तिनके चबा चबा कर दोहने भरती रही हूं। न कभी खली, न कभी बिनौले। यह बदकी मेरी! भले मानस को चारों तरफ से मार पड़ती है। इसके तो आते ही शगन मनाए जा रहे हैं, जैसे गौना करवाकर आई है! अगर मुट्ठी भर चने मेरे आगे भी रख देते तो कोई अंधेर तो नहीं आ चला था? मैं इतनी भुक्खड़ तो नहीं थी कि सारे चने ही खा जाती! मान रखने की बात होती है। क्या होती है तारेमीरे की मामूली-सी पेड़ी? दाढ़ीवाला होकर भी शर्म न आई उसे इस काने बंटवारे पर! मालिक तो मां-बाप के समान होते हैं। मां-बाप के लिए सब एक-बराबर होने चाहिए। वह बन्दा ही क्या जो सबको एक नजर से न देखे!

"और वह मुटल्लो-सी, बड़े गुमान वाली, किस बात का गुमान हो गया उसे? सारा दिन टिकने नहीं देती। जब देखती है गिलास लेकर थन निचोड़ने आ बैठती है। सारा दिन चाय का पतीला चूल्हे पर उबलता रहता है किसकी बदौलत? चार दिन मोल का दूध लेना पड़ा, तो सारा परिवार झींक उठा। कौन दे देगा मुंह बिना पानी का दूध? आधाआध पानी, पैसे दुगुने। फिर सब मनरव में बछड़े

को मेरे नजदीक बाँधन ! राँड पीठ थपथपाकर कैसे मचलकर कहती है, 'मगो, चाय के लिए तो देती चल बहना !' मीठी छुरी ! अच्छी तरह सँवारकर दूँगी इसे अब दूध। अब ज़रा चलाए मथानियाँ गिन गिन। ज़रा नजदीक आए, अगर लात न चलाई तो !

"हाय रे, मेरी पहलौठी, कबूतरी जसी बछिया। बदन पर गोरे-गोरे दाग। माथे पर सूरज जसा फूल। खसम की सती ने सुनकर ठूठी जैसा मुह बना लिया। कहने लगी, बछडा नही दिया। जट्टो को अपनी गज प्यारी है। बछडा होता तो हल के आगे जोडते। मेरा दूध पीते, उसका लहू पीते। कमजात ने इतने इतने हाठ बिचकाए। अरी हैंसियारी, तेरा क्या खा चली थी ! हर कोई अपनी किस्मत साथ लेकर पैदा होता है। तेरी अपनी भी तो चार बेटियाँ ह, अब द दो चारो को फाँसी ! मरी बेटी पर ही दाँत बजता या ! छ महीने की भी नही हुई थी मरी बच्ची कि इस रण्डी न उसे अपनी बहन के घर भेज दिया। पच्चीस बरसा की इसकी बडी बेटी बुज-जसी हुई फिरती है। उसे घर से निकालने का नाम तक नही लेती। और फिर सारा दिन माँ-बेटी सौतो की तरह झगडती हैं। इसी तरह का होता है बच्चे का प्यार।

"अगले सुए म बछडा जनमा था। हस जैसा मेरा बटा आँगन मे उडता फिरता। इन टूटपडना से वह भी बर्दाश्त न हुआ। अभी दस महीने का भी नही हुआ था, उसे खोलकर मण्डी ले गया। वह टागो मे से फिसल फिसलकर घर की तरफ भाग भागकर आता था। इसे मौत पडे, यह उसके गले म परना डालकर, घटता-घटता उसे घसीटकर ले गया ! मैं देखती ही रह गई। अभी तक मुझे उसकी आवाजें सुनाइ देती हैं ! इसका अपना बेटा जब घर से भागकर फौज म भर्ती हो गया था, तो सारे परिवार ने रो रोकर गाँव इकट्ठा कर लिया था। मैं किसे रोकर सुनाऊँ ? अब इस बच्चे पर दात धग हुआ है ! मेरा कलेजा फोडे की तरह पका हुआ है। य पापी मेरे क्या लगते हैं, काले माथे वाले ! इन्होंने मेरे साथ कोई कम बुराई तो नही की। मैं तो कहती हूँ, हे रब्ब सच्चे ! जो इन्होने मेरे साथ किया है, वही इनके साथ भी हो। मैं भी अब आख मिलाने से रही। जैसे लोग हो वैसा ही खुद भी बनना चाहिए। कल सन उठाए घूम रही थी, कहती थी, चाचा नत्थू से रस्सी बँटवाएगी। ज़रा आए तो सही रस्सी लेकर मेरे नजदीक !"

मगो क्षोभ से भरी खडी थी कि अगली सुबह चिन्तो बतन लेकर दूध दूहने आइ। बछडा छोडकर जब उसने थनो पर पानी लगाया तो मगो उछलकर परे हट गई। चिन्तो ने सीधी तरह खडे होने के लिए झिडकी दी। पास खडा बछडा फिर थना स आ लगा। मगो खडी रही। चिन्तो ने बछडे को कान से पकडकर खूँटे स बाँध दिया। पानी का छीटा देकर थना को हाथ लगाया तो गाय ने हुडककर लात चलाई। चिन्तो ने फुर्ती स बचत हुए कहा, "अरी, तुझे चोर ले जाएँ ।'

बछड़े ने थनों को मुंह लगाया था, इसलिए थनों में दूध उतर आया था लम्बे, गोरे-गोरे, अकड़े हुए थन । लेकिन मगो थी कि अब हाथ भी नहीं लगाने देती थी । चिन्तो ने आवाज लगाई, "मीरो के बापू, जरा थम्मी पर से खोलकर रस्सी तो लाना ! पता नहीं इस रांड को क्या चण्डाल सवार हो गया है ।"

हुक्मा थम्मी से बँधी सन की नई बटी रस्सी ले आया । चिन्तो ने टाँगों पर से घुमाते हुए पूछ का जोर में मरोड़कर रस्सी बाँध दी—"अब बता, कैसे हिलेगी सौतन ?" चिन्तो बड़बड़ाई ।

रस्सी मगो की टांगों में चुभती जा रही थी । उसने जोर लगाकर देखा । उस कुतिया ने जैसे कीले गाड़ दी थी । पूंछ तक नहीं सरक सकती थी । चिन्तो ने थनों में हाथ लगाया । मगो ने कान खड़े करके सींग घुमाए । चिन्तो ने थूथनी पर डण्डा जड़ दिया । अब मगो क्या कहती ? चारों तरफ से काबू आई हुई थी । आखिर थोड़ा सोचकर वह जिद पर उतर आई । बर्तन में अभी दूध की धार ही धारें पड़ी होंगी कि मगो खड़ी खड़ी सारा दूध चढ़ा गई । "लाख लानत है तुम पर गई हुई के !" और चिन्तो खाली थनों को खींचती रह गई ।

मगो खुश थी कि वह झुकी नहीं थी । चिन्तो चिढ़ गई कि इस कमबख्त ने आज चाय भी नहीं बनने दी । लेकिन मगो एक ही बार में सारा बैर नहीं साधना चाहती थी । उसकी कौन-सी खेत की मेड़ साँझी थी !

उसे तो इसी बात का मलाल था कि उसे पीछे फेंककर सोमा को क्या आगे कर दिया गया था ? यह उसका हक था और हक की लड़ाई वह पैंतरे बचाकर लड़ते रहना चाहती थी । कभी सुलह, कभी जंग कभी ज्यादती भी कर लो !

तीसरे पहर के करीब जब हुक्म ने दूध दुहा तो पक्के सेर वाला लोटा गले तक भर गया । हुक्म ने गुग्गल की धूप दी और गुरुद्वारे के भाई से तावीज बनवा लाया, 'मुमरी मंगलवार को पैदा होने के कारण कड़वे स्वभाव की है चिन्तकौरे, वैसे दिल की बुरी नहीं है मगो ।'

कभी रस्सी बाँधी, कभी न बाँधी, कभी एक बार, कभी दो बार, चिन्तो थोड़ा थोड़ा करके मगो से दूध लिये जा रही थी । उधर सोमा भी ब्यानेवाली थी । चिन्तो ने देसी घी और अजवायन मँगवा रखी थी । सारे परिवार की आँखें उधर लगी थी ।

आज पता नहीं, मगो को क्या गुस्सा चढ़ गया । जब सुबह चिन्तो बर्तन लेकर दूध दुहने आई तो मगो का वह जहर-सी मालूम हुई । उसने मगो की पीठ सहलाई । मगो ने पीछे हटकर पूंछ घुमाई और सींग मारने दौड़ी । चिन्तो ने गाली देकर एक मुक्का मारा फिर थनों की तरफ बछड़ा छोड़कर टाँगों पर रस्सी बाँधने

लगी। मगो ने हड़बड़ाकर चारा पैर उठा लिये, कान खड़े किए और बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर चिन्तो को घूरने लगी। चिन्तो ने सँभलकर पीछे हटते हुए हुक्मे को आवाज़ लगाई। हुक्मा डंडा लेकर आ गया। हुक्मे ने हिम्मत बांधकर मगो का सींगो से पकड़ लिया। वह सींग छुड़ाने के लिए ज़ोर मारने लगी। हुक्मे ने पेट में लात मारी। मगो की पीठ पर डर और शिक्वा काँप उठे। उसने फिर ज़ोर लगाया, हुक्मे ने तिघड़ी पर एक-दो डंडे जमाए। इसी वक्त मौका पाकर चिन्तो ने टांगों में रस्सी बांध दी। मगो काबू में आकर जकड़ी गई। लेकिन रस्सी की चुभन के साथ उसे गुस्सा चढ़ता जा रहा था, "मुझे कमज़ोर समझ लिया न!"

मगो धोखा देने के लिए बहाना बनाकर चुपचाप खड़ी रही—निरी सुशील, जैसे पेट में कोई भी बात न हो। उसने दूध से थन भर दिए और चिन्तो झबर-झबर बतन में दूध की धारें मारने लगी। "भला इसी तरह चुपचाप खड़ी रहा करे तो तुझे कोई दुर भी न कहे," वह खिले माथे से बोली।

हुक्मे ने सींग ढीला छोड़ दिया और लापरवाही से खड़ा हो गया। गाय अब दूध देने लगी थी। मगो ने सबको बेखबर जानकर अपनी पिछली टांगों में सारा ज़ोर भर लिया। थोड़ी देर तक वह पशोपेश में रही। रस्सी में कसी पूछ को हिलाकर देखा, फिर तगड़ा मन करके वह लात चलाई कि चिन्तो का थूथन तोड़ दिया और दूध से भरा लोटा लुढ़ककर दूर जा गिरा। चिन्तो चकराकर एक तरफ गिर पड़ी और सर थामकर हाय, हाय करने लगी। मगो खूँटा तुड़वाने के लिए ज़ोर लगा रही थी। यह देखकर हुक्मा दांत पीसने लगा। जैसे मकई कूटी जाती है उसी तरह उसने डंडे मार-मारकर गाय को धुनक दिया और जब वह थकान में हाँफने लगा तब जाकर उसने मारना बन्द किया।

मगो चुपचाप खूँटे पर खड़ी हो गई थी। अब वह बेबस थी— 'एक रस्से से बँधा हो दूसरा खुला हो, भला यह कैसी लड़ाई?'

उधर सोमा ब्या गई थी। दो-चार दिनों के बाद उसका दूध पीने के काबिल हो गया। सोमा के थनों में दूध भी काफी था। घरवालों ने अब मगो का पीछा छोड़ दिया। कौन इस अक्खड़ गाय से अपने पैर ज़ख्मी करवाए और जानवर के साथ जानवर बने!

जब मगो ने यह देखा कि किसीको उससे गर्ज नहीं रही तो उसने भी अपनी नीति बदल ली। सारी जलन तो सोमा से थी। उसीके आने से सारे झगड़े शुरू हुए हैं। घरवालों से काहे का वैर?

सोमा की भरी हुई नांद देखकर मगो के कलेजे में सांप लोटते थे। सोमा को दोनों वक्त काढ़े, खली की लेटिया और दूसरी न्यामतें मिलती थीं। मगो को सूखा भूसा। सौतन! अकेली का तो मैं भी तुझे माल नहीं हड़पने दूंगी। मगो के मन में सोमा के लिए वैर भावना और भी तीखी हो गई।

चिंतो सोमा के आगे लेटी धरकर गई ही थी कि मगो ने घुटनों में बल पड़-कर अकड़कर उसके आगे से तसला खींच लिया। न खाया न छोड़ा, फेंक फांककर सारा बर्बाद कर दिया। चिंतो ने देखा तो छड़ी लेकर आई, "अरी मुलख की सौतिन !" और उसने मगो के थूथन पर, जिससे उसने यह हरकत की थी, पांच सात छड़ियां जड़ दीं। "हरामजादी, हावसू हावसू करती है ! क्या मजाल, जो जच्चा के पेट में मुट्ठी भर चीज भी जाने दे !"

कई बार काढ़े का भरा तगार मगो टांग चलाकर गिरा देती। पानी पीते वक्त सारी चाटकर खुद गटक जाती। आगे बढ़कर नांद में से सोमा का भूसा खा लेती, बाकी फना देती। सोमा बेचारी सब्र से चुपचाप खड़ी रहती। अगर कुछ बचता तो खा लेती लेकिन मुंह से उफ न करती। इस बात पर मगो को दुगुनी खीज आती थी कि सोमा जवाब देकर उसे सच्चा होने का मौका क्यों नहीं देती थी !

जब सोमा का सब्र न टूटा तो ईर्ष्या में अंधी हुई मगो अब अंगारों पर लोटने लगी। उस छोटे बच्चे का भी ध्यान न रहा। दूध दुह जाने के बाद मां के थनों को चूसता चूसता एक बार सोमा का बछड़ा उछलकर मगो की तरफ गया तो उस जली फुंकी ने उसे सींगों पर उठाकर दूर फेंक दिया। फरियाद से भरी सोमा जोर से रंभाई और भीतर से चिंतो ने चीखकर कहा, "अरी बूचड़ों के जाने वाली ! मीरो के बापू जरा फावड़ा लेकर आना, ये बछड़े मारने को दौड़ती है। मनहूस, चार दिन के बच्चे को भी नहीं देख सकती।"

हुक्मे ने आकर दो चार छड़ियां मगो को मारीं और उसे भलेमानस बनकर खड़े रहने के लिए चेतावनी दे गया।

अब तो मगो हाथ धोकर सोमा के पीछे पड़ गई। "यारनी ने खसम से शिकायत करके मेरी हड्डियां तुड़वा दीं ! अब देखूंगी भला कैसे लगाती है एक की चार-चार !"

सोमा की वजह से मगो के साथ सख्ती तो बहुत होती थी, लेकिन जितनी ज्यादा सख्ती होती थी, सोमा के साथ वह उतनी ही ज्यादा जिद करती थी। सोमा को सताकर अब उसे मजा-सा आने लगा था। एक दिन चरवाहे ने आकर शिकायत की 'इस साखी भलियाट को जूड़ डालो भाई ! आज इस अकेली ने मुझे जितना सताया है, उतना सारे झुंड ने कभी मेरा खून नहीं पिया—नई गाय पर टूट-टूटकर पड़ती है।'

"क्या पता इस चंदरी को क्या बुरा दिखाई दे गया ! हरामजादी इसके पीछे ही तो पड़ेगी..." गउओं को रस्से डालते हुए चिंतो ने बूढ़ी चूहड़े से कहा।

"गउओं का गुस्सा बुरा ! जूड़ डालकर छोड़ना भई," घरवालों को चेतावनी देकर चरवाहा चला गया।

दूसरे दिन मगो को जूड़ डाल दिया गया। मजबूत रस्सी का एक सिरा उसकी

टाग से बांधा गया, और दूसरा उसके सीग के साथ। अब वह गर्दन ऊँची नही कर सकती थी।

मगो के जूड क्या पडा कि सोमा के लिए कहर आ गया। यह तो साफ जाहिर था कि सोमा की वजह से ही जूड डाला गया था। चरने के वक्त तो मगो कुछ नहीं कर सकती थी, लेकिन घर आकर जूड खोल दिया जाता था। मालिक हर वक्त तो रखवाली पर नही बैठ सकते थे न !

मगो नज़रो ही नजरो म सोमा को फाड फाडकर खाती और दांत पीस पीस-कर कहती, "मैं तेरा कलेजा भून-भूनकर खाऊँगी रडी ! तूने मेरी छाती पर जो मूग दली है, देखना तो सही, या तू यहाँ रहेगी, या फिर मैं ही रहूँगी !"

सोमा मगो की आखो की तरफ दखकर डर गई। लहू से भरी भयानक आखें, जिनमें से एक यमराज उसकी तरफ देख रहा था। सोमा का दिल फट गया। आखिर कोई कहाँ तक सब्र करे ! सारे जीवन की वेदना उसकी आखो मे भर आई। कितनी भयकर थी उसकी नजर के सामने की दुनिया, जिसकी एकमात्र भयानक सचाई यह मगो है। काश, एक क्षण क लिए ही वह इस दुनिया से आख मूद सकती ! जीवन की इस भयानक सचाई स छिप सकती—सिर्फ एक ही क्षण के लिए ! दिल की सारी उदासी उसके ओठो पर काप उठी और उसके नैनो से गम की नदिया फूट पडी।

पहली बार आज मगो मुस्कराई। सोमा को रोता हुआ दखकर उसके दिल को ठडक पहुँची थी।

अभी आधी रात भी नही बीती थी कि अचानक नींद-भरे वातावरण मे 'धडाम' की आवाज फैल गई। हुकमा हडबडाकर उठा। उसने दिया जलाया और गउओ के पास जाता हुआ वह ऊँची आवाज म बोला, 'अरी उठ, देख तो चिन्तो ! हमारी सोमा को किसकी नजर ने खा लिया !"

जैसे किसीने चिन्तो के कलेजे को मुट्ठी मे जकड लिया हो। लम्बे वियोग का विलाप करती हुई वह भागकर सोमा के गले से लिपट गई। फिर उसने रो रोकर थकी आवाज़ म हुकमे से कहा, "अब इसके कान मे फूँके क्या मार रहा है, गले से रस्सा खोल दे जल्दी से ! सोमा तो हमे छोडकर जा रही है ।"

सारी रात गाय के पास बठे-बठे दिन चढ आया। लेकिन मगो अभी भी यही समझ रही थी कि सोमा न मकर किया है। "इस खेखनहारी को कितने चलित्तर सूझते है ! आधी रात से कनपटी लेकर पडी है। अब क्या तेरी आरती उतारेंगे ? इन हालतो म तेरी खातिर कोई कमडल लेकर सन्यासी बनने से तो रहा। वाऊजी ! अब दुनिया बडी सयानी हो गई है। अब तो सूखे टाडे चबाने पडेंगे। ये टाँगें किस तरह पसारी है—जैसे मर गई हो। अगर तू मर ही जाए तो क्या तेरे बगैर जग सूना हो जाएगा ? पता नही अई, लोगो को कितनी चालाकियाँ आती हैं। हम तो

ऐसी बातें करनी कभी नही आइ । ' मगो मन ही मन यह कह ही रही थी कि पाच-सात आदमियो ने भीतर आकर सोमा के पैर बाँधे और बीच म डडा डालकर उसे उठाने लगे ।

"हे !" मगो पूनी की तरह हो गई—"सोमा सचमुच मर गई ?" मगो पत्थर की तरह चुप खडी थी। एक दहशत-भरी कँपकँपी उसके शरीर को चीर गई—"यह क्या हो गया ! ऐसा तो उसने कभी नही सोचा था। दो बरतन होन हैं तो आपस म टकराते ही ह। लेकिन यह क्या हो गया ?"

दरवाजा पार करते वक्त जब सोमा का लटकता हुआ मुह दहलीज से टकराया तो मगो फूट पडी। वह इतनी जोर से रभाई कि छत फटने लगी। सोमा खूटा खाली कर गई थी।

आज शाम का मगो पहले ही झुड म से निकलकर अकेली घर आ गई। दरवाजे मे घुसते वक्त वह जोर से रभाई और अपनी नाद छोडकर सोमा के थान पर चली गई। सोमा के उदास बछडे पर गदन फककर मगो हमदर्दी स रभाने लगी, "बेट र, मुझे माफ कर ! लाल र ! मुझसे भूल हो गई !"

आज मगो की आखो के आसू थम नही रहे थे।

वापसी व वापसी

—बलराज साहनी

लंगड़े नूरअहमद ने सर्गी की नमाज़ पढ़ते वक्त कुछ तोपें दगती सुनी थीं। उसके बाद चपरासियों को नई वर्दियाँ पहने इधर-उधर दौड़ते हुए देखा था। लेकिन परवरदिगार की दरगाह से यह पूछने की कोशिश न की कि माजरा क्या है। नियमानुसार खुदावंद-ताला से सारे काश्मीरियों की, और विशेषकर दरोगे की चमड़ी कुत्तों के आगे डालने की दुआ करके वह चुपचाप अपनी लोई की तहों में सिमटकर बैठ गया, और कई घंटे बैठा रहा।

नियमानुसार बारह बजे लोहे का बड़ा फाटक खड़खड़ाया और दरोगा साहब ने अपनी छड़ी घुमाते हुए प्रवेश किया। उन्हें देखते ही नूरअहमद ने नियमानुसार अपना छः फुट चार इंच लम्बा शरीर एक टाँग के भार उभारा और बड़े परिश्रम से गला साफ करते हुए तोला-भर बलगम दालान में थूक दिया। इस स्वागत-करण पर आज दाएँ-बाएँ की कोठरियों से हँसी की बजाय प्रतिवाद उठा, जिसमें एकांतवासी नूरअहमद को पता चला कि आज महाराज का जन्मदिन है और शायद कुछ कैदी छूट जाएँगे।

यदि आठ साल इन तोपों के दगने का कुछ असर नहीं हुआ तो आज होगा, इसकी लंगड़े को आशंका न थी। लेकिन जब पिछले सालों की तरह कैदी कोठरियों में से लोइयाँ सम्हालते निकले, तो नूर सोचने पर बाधित हुआ कि अब उसकी पत्नी की जवानी पर एक साल और पड़ जाएगा।

और जब उसकी कोठरी के आगे से गुजरते हुए दरोगा साहब के कदम सहसा रुक गये तो उसका दिल भी रुक गया और उसकी लाल आँखें डबडबा गईं।

कुंजी ताले में फिरी और उसे बाहर निकलने का आदेश हुआ। निकलते ही दरोगा साहब ने एक ऐसा चौरस थप्पड़ उसकी गर्दन में दिया कि उसकी टोपी मिट्टी में जा पड़ी। लेकिन उसे उठाकर नूरू अपनी मस्तमौला चाल में चलता गया। वे दिन पूरे हो चुके, जब थप्पड़ उसके मस्तक पर बल डाल सकते थे। कमखुशकिस्मत कैदी अपनी अपनी कोठरियों से पूरी हार्दिकता के साथ उसे अल्विदा कर रहे थे, लेकिन उसने न सुना, न ही यह सोचा कि उसके जाने के बाद उनका वक्त कैसे गुज़रेगा। किसी ने ज़माने की हास्यास्पद रीति के अनुसार एक पुरानी कपड़ा की थैली उसे ला दी। किसी ने पैसे दिए, किसी ने अँगूठा लगवाया, किसी ने मशीन

पर चढ़ने को कहा। नूरू मन्त्र मुग्ध की भांति सब-कुछ करता और अपनी बड़बड़ाहट से कर्मचारियों का दिलबहलाव करता रहा। फाटक के बाहर पहुँचकर उसने चाकियों से आगे बढ़कर छाती पर हाथ रखा और अपनी गुस्ताखियों के लिए दरोगा साहब के आगे सिर झुका दिया। अपने इस अन्तिम मसखरेपन पर लोगों का हास्य सुनता सुनता वह पहाड़ से नीचे उतरने लगा।

दस-पन्द्रह कदम उतरकर वह ठहरा। एक बार श्रीनगर के शहर पर और चारों ओर की फसल पर नज़र घुमाई। अपने मुहल्ले को पहचानने की कोशिश की। झील पर नन्हे नन्हे शिकारों को रेंगते हुए देखा। फिर आश्वस्त हो, अल्लाह का शुक्र कर उतरने लगा। सड़क पर बँदियों व सम्बन्धियों का जमघट-सा लग रहा था। चीं चपड़ का बाजार गरम था, जिसे देखकर उसे नफरत हुई। स्वतन्त्रता की कल्पना करते समय उसने यह कभी न सोचा था कि बाहरी संसार में रोना धोना भी होगा।

फिर भी उसकी गर्दन, जनसमूह से ऊपर उभरी हुई, घूम-घूमकर किसी को खोजने लगी। किन्तु थोड़ी देर बाद निराश हो गई और वह चल निकला। यह देखकर भीड़ के सम्पर्क से दूर पुल पर बैठा हुआ एक नवयुवक उठा और नूरू की ओर चला। उसकी दाढ़ी पान के पत्ते की तरह तराशी हुई थी, रंग गोरा था और वह हर कोट व सफेद लाल पट्ट वाली पगड़ी में सुसज्जित था। नज़दीक आकर अकस्मात उसने नूरू के पांव छू दिए। नूरू सटपटा गया, और आवश्यक 'बार छुस 'खैर छुस' के बाद खिसकने लगा। स्वच्छ कपड़े पहनने वालों से उसे सख्त नफरत थी। लेकिन नवयुवक ने उसकी बांह पकड़कर कहा—

लाला, मुझे पहचाना नहीं ?

नूरू तय न कर सका कि यह मजाक है या यथार्थ। उसने नवयुवक का सिर से पैर तक देखा। न न, यह छेड़खानी नहीं थी। नवयुवक की आँखें सरल थीं और उनमें कुछ न कुछ नाहक उसे अपनी ओर खींच रहा था। नवयुवक ने कहा—

'लाला, मैं हबीब हूँ।'

'आ हबीब ? ओ बेशरम !' नूरू ने नवयुवक को छाती से लगा लिया। उसकी लाल आँखें फिर उमड़ आईं और उसकी मुस्कराहट सुख और दुःख की सीमाओं में निरर्थक-सी लकीर खींचने लगी। लेकिन नवयुवक को यह भावुकता अच्छी न लगी क्योंकि इसमें कई महीनों के बिना नहाए शरीर की बू थी। वह अलग होने की कोशिश करने लगा।

'हबीब ! ओ बेशरम ! तू इतना बड़ा हो गया ?' पिता ने पुत्र को फिर से निहारते हुए कहा।

'लाला आठ साल हो गए।'

हाँ आठ साल हो गए।' नूरू ने साँस छोड़ते हुए कहा और दोनों आगे बढ़े।

कुछ देर की चुप के बाद हबीब ने गम्भीरता से पूछा—

लाला, अब तुम क्या करोगे ?'

नूरू को यह वाक्य भद्दा-सा मालूम हुआ। आठ साल की पाशविक कैद से छुटकारा पाकर दाजग की पहाडी से अभी उतरा हूँ और मेरे पुत्र के पास स्वागत करने का केवल यही साधन है कि मुझसे पूछे कि अब मैं क्या करूँगा ? क्या इसे किसी ने नही सिखाया कि एसी बात नही कही जाती ? नूरू खिन्न हो गया। यह वह 'हब्बे' नही था जो पुलिसवाला के जतन करने पर भी बाप के कन्धे से नही उतरता था, जिसके रोते हुए चेहरे की स्मृति ने उसके जीवन म तूफान पैदा कर दिया था। इस पान के बादशाह की-सी दाढी और अकडे हुए कपडो वाले को अपने बाप स शरम आती थी। शायद 'रहती' भी इसी कारण नही आई। क्यो आए ? कभी चोर क घर आन पर भी किसी को खुशी हुई है ? लेकिन नही, नही। उसने प्रेम भरे नेनो से अपने पुत्र की ओर देखा। कितना सुन्दर चेहरा था ! कितना पौरुष-भरा डील-डौल ! कुछ दिनो तक ये लोग स्वय ही देखेंगे कि नूरू कितना बदल चुका है। लेकिन रहती क्या नही आई ? कही बीमार न हो ! कही मर ही तो नही गई ? भला पूछू तो ! फिर रुक गया। हब्बू सोचेगा, बाप कितना निलज्ज हो गया है ! उसे अब यह अवसर नही देना चाहिए। उसन पुत्र के सवाल का जवाब सवाल मे दिया—

'तू अपना अहवाल सुना।'

हब्बू का चेहरा तमतमा गया। वह इसी इन्तजार मे था। उसके वरदी पहनकर आने, व बाकी लोगो मे अलग होकर बैठने का अभिप्राय ही यह था कि ससार जान ले कि वह मामूली आदमी नही है। शायद उसे देखकर बाप को भी उपदेश मिले कि स्वच्छता और पारसाजी बुरी वस्तु नही। अठारह वर्ष की अवस्था म ही उसके जीवन की महत्त्वाकाक्षाएँ बर आई थी, यह श्रेय किस किसको हासिल होता है ? वह एक प्रभावशाली अग्रेज का बैरा है। दिन रात, जीवन का एक-एक क्षण साहब की सेवा म व्यतीत करता है। घर जाना, अपने सम्बन्धियो के मुहल्ले तक मे कदम रखना उसे मुसीबत है। कई सडकें ऐसी हैं, जिन पर से गुजरने की बजाय दो मील का चक्कर काटना उसे ज्यादा मजूर है। ऐसा बाप और जब ऐसी मा, बिरादरी तो उसे कच्चा चबा डाले।

'मैं राममुन्शी बाग मे मिटमन साहब की कोठी पर नौकर हूँ। दो साल हुए काम शुरू किया था। पहले झाडू-बुहारी व बूट पालिश का काम मिला फिर साहब ने मेरी ईमानदारी और परिश्रम की दाद देकर मुझे अपने कारखाने म चपरासी लगा लिया। अब दो महीने से बैरे का काम कर रहा हूँ। बीस रुपये तलब मिलती है और रोटी-कपडा साथ मे। साहब बहुत ही नेक आदमी है। उसकी फैक्टरी म दो सौ आदमी काम करते ह लाला, दो सौ। महाराज के साथ पोलो खेलता है। दो मोटरें रखी हैं उसन, जिधर से निकल जाती है जहान देखता है। पिछले हफ्ते मुझे

अपने साथ बिठाकर गुल्मर्ग ले गया था। वहां तो कुछ जाता नहीं, पर लाला, अल्लाह रहम करे और मेरे ईमान को बरकत बख्शे, साहब आगे और भी मेहरबान होगा। खुदा जानता है कि रात को तीन-तीन बजे क्लब से आता है और उसकी जेबों में सैकड़ों रुपये होते हैं। अगर चाहूं तो रोज पांच दस इधर उधर कर दूं, लेकिन हराम की एक पाई मुझे मंजूर नहीं।'

लगड़ू नूरअहमद को और सुनना असह्य हो गया। देखो लंगूर की तरफ! बजाय इसके कि मर्यादानुसार पहले अपनी मां का, फिर दूसरे सगे सम्बंधियों का कुशल समाचार दे, इसे अपने साहब की पड़ी है! और फिर इसकी जुरंत कि अपने बाप को धर्म ईमान का उपदेश देना शुरू कर दे? लानत है! उसने काटकर कहा—'खैर, बहुत अच्छा। लेकिन बेटा, जो शख्स बाहर से आए उसे पहले बुजुर्गों का हाल-अहवाल देना चाहिए, अदब यही सिखाता है।'

'ऊंह, उनका क्या है?' हब्बू ने उपेक्षा से कहा—'जिस गन्दगी में आगे सड़ रहे थे उसी में अब भी पड़े हैं। वही गन्दा पानी पीते हैं, साल भर नहाते नहीं, सारा दिन फिजूल बकवक में गुजार देते हैं। बाबा अहदजू के पास जो कुछ था, वह शराब और जुए की नजर हो गया है और अब घरवाली को लातें जड़ने के सिवा उन्हें कोई काम नहीं। लाला, इन लोगों से मुझे नफरत हो गई है।'

चिनारों से घिरी हुई अब वे पुरानी सड़कें न थीं। उनका स्थान चौड़े चौड़े चिकने मैदानों ने ले लिया था, जिन पर चर चर करती हुई मोटरें इधर से उधर भाग रही थीं। चौराहों पर सिपाही कौतुकपूर्ण अन्दाज में हाथ हिला रहे थे और बार-बार नूरू को आस-पास के थड़ों पर चलने का आदेश करते, जिन पर उतरने चढ़ने में उसे दिक्कत होती। हर तरफ परिवर्तन स्वच्छता की बू आ रही थी। नदी के आस पास बेंत के वे जंगल, जिनमें कई दोपहर उसने छिपकर चरवाही युवतियों के संग बिताये थे, अब कहीं नजर नहीं आते। आठ साल के अन्दर नूरू का देश बिलकुल बदल गया। 'मैंने सुना है फिरंगी हराम की चीज भी खाते हैं क्या यह ठीक है?' नूरू ने विष भरे स्वर में पूछा।

हबीब का उन्नत मस्तक इस प्रश्न पर गिर पड़ा। बेशक खाना-पकाना खानसामा का काम था लेकिन प्लेट पर धरकर लाता तो वही था। उसके जी में आया कि स्पष्ट कह दे कि चोरी के मुकाबले में यह काम बुरा नहीं है, लेकिन आखिर बाप था, वह यह धृष्टता न कर सका। नूरू को भी पश्चात्ताप हुआ। यह माना कि उसने अपने पुत्र के लिए सदैव किसी उज्ज्वल और स्वतन्त्र जीविका की कल्पना की थी, लेकिन इस कद की लम्बी अनुपस्थिति ने सब बरबाद कर दिया। इसमें हब्बू का क्या कसूर?

कुछ दूर तक फिर दोनों चुपचाप चलते गए। आखिर नूरू से रहा न गया—'रहती क्यों नहीं आई, ठीक तो है न?

'हाँ, ठीक है'—हब्बू ने गुनगुनाकर जवाब दिया—'मुझे काम ज्यादा था इसलिए कोठी से सीधा इधर आ गया।'

अब वे सडक के आर-पार बनाये गए एक ऊँचे से फाटक के पास पहुँचे जो टहनियो और फूलो से लदा हुआ था। इससे आगे रंग बिरंगी झडियो का एक ताता-सा लगा हुआ था। दुकानें सजी हुई थी और स्थान-स्थान पर सुनहरे अक्षरा से जटित कपडे लटक रहे थे।

जन्मोत्सव की इन निशानिया को देखकर नूरू को पहले महाराज की याद हो आई। तब मोटरे भी न थी और ये चौडी सडके भी न थी। फौजी डागरे एक कन्धे पर बन्दूक और दूसरे पर चिलम थामकर पहरा दिया करते थे। कितना शरीफ था बूढा महाराज! आते-जाते हजारो खैरात कर जाता था। जिस दिन थोडे पडे, ड्याटी म जा घुसे। दाल-भात नसीब हो जाता था। सिपाही को चौथ पाचवें दिन एक विलायती सिगरेट पिला दो, फिर चाहे वजीर की जेब कुतर लो। आह, व दिन

अकस्मात् हनीज ठहर गया और कलाई पर लगी हुई घडी को देखत हुए बोला—

'लाला, अब इजाजत दो, मुझे काम है। शाम का आऊँगा।'

नूरू को जैसे किसी न नश्तर चुभो दिया हो। इसे बाप को घर तक छोड आन की फुरसत नही! उसके हाथा मे जलन हुई, लेकिन पहले दिन ही कान पीस देना ठीक नही होगा। कल सही।

इसके बाद लगड़ नूरअहमद अपनी मद्धम चाल से चलकर अपने मुहल्ले म पहुँचा। काले कीचड, नाकरखानी तथा सडी हुई मछली की बदबू एक-साथ सूघते ही उसन अपन शरीर मे एक नयी जान महसूस की। किसी कजूस बनिये की तरह जिस परदस से लौटते समय ही आशका बनी रहती है कि मरा घर कही लुट न चुका हो, वह धडकते हुए दिल से ठहरकर प्रत्येक स्थान को पहचानता। उसे तसल्ली हुई कि उसका कोई साथी व्यापारी मुहल्ले के दो एक मकान उठा नही ले गया।

अपनी गली के सिरे पर पहुँचकर उसने बिस्मिल्ला कही और अन्दर प्रवेश किया। लेकिन, न जाने क्यो, वही दीवारें जिनकी ओर कभी उसने आख उठाकर देखन की परवाह न की थी, आज उस खाने को दौडी। उनकी इटें उसे अपरिचित-सी मालूम हुइ। जस पूछ रही हा—तुम कौन हो? यहा तुम्हारा क्या काम है? दीवारो से नूरू को अब वैसे भी डर लगता था, मगर ये तो रास्ता ही रोक रही थी। नूरू ने सोचा, शायद वह किसी दूसरी गली मे घुस आया है और वापस

मुडा। एक क्षण के लिए उसे ऐसा प्रतीत हुआ शायद वह मरने के बाद अपनी कब्र से उठकर चल पडा है। उसने रहती, अपनी पत्नी, के चेहरे को याद करने की चेष्टा की, लेकिन वही रेखाएँ जो जेल म हरदम उसके सामने रहती थी अब दूर, किसी धुधले ससार म जा बसी थी। बाजार म पहुँचकर उसने फिर गली को परखा। गली तो वही थी!

इतने मे अन्दर स एक ढाल की तरह मोटी अधेड उम्र की हलवो, हाथा को किरन के अन्दर छिपाए अपनी छातिया की विपुलता को काँगडो का मेक देती हुई आती दिखाई दी। नूरू को देखत ही अपनी छोटी छोटी दागी सेब की-सी आँखें नचाती हुई चिल्ला उठी—

"वाह रे मेरे नागराई—य, वाह रे मेर राँझिये, वाह र मर कामपोश! फिर हँसत-हँसते लाल हो गई। फिर पास आई और नूरू की बाँह थामकर मुहल्ले वालो को पुकारने लगी कि उसका नागराई वापस आ गया है।

लकिन उस मूरख के नागराई भी रोज वापस आत थ, इसलिए मुहल्ल म काइ हरकत पैदा नही हुई। उदास सी होकर वह उस लेकर एक थडे पर बैठ गइ।

नूरू न उस शोर करन स मना किया और कहा—'देखो, मैं थका हूँ, मुझे घर जान दो छेडो मत!'

स्त्री ने नटखट अन्दाज स हाथ उठा लिये और उन्ह अपनी जाँघो पर पटकती हुई बोली— जाओ तुम्ह रोकता कौन है? मगर जाओगे कहा?'

'क्या रहती क्या घर पर नही?

स्त्री अपनी भयानक हसी स फिर लोट-पोट हो गई।

'रहती? अरे काफिर, तुझे इस बेहूदा ढग से बात करते हुए लाज नही आती? बेगम अख्तरी जान नोशलब को रहती पुकारता है?'

चुहल का व्यग नूर की समझ म न आया। आखिर उस काबू करन क एक मात्र उपाय का आश्रय लेते हुए उसन स्त्री की ठोडी हाथ म लेकर लगातार दस-पन्द्रह अश्लील वाक्य कह डाले कि वह पसीज गई और शरमाती हुई बोली—

'रहती ने धधा कर लिया है। वह जो दरिया पर झुका हुआ मकान है, वह जिसके छज्जे पर फूलो के गमले ह और ऊपर मैना का पिंजरा है हाँ, उसी म रहती है।' यह कहकर वह रोने लगी।

नूरू उठा और अपनी टोपी को हाथो स टटोलता हुआ इस नये घर की ओर दृष्टि बाँधकर चला।

मकान की सीढ़िया क पास एक क्षण क्षीणकाय लम्बे और खूब सँवारे हुए बालो वाला व्यक्ति खाट पर बैठा हुक्का पी रहा था। लगड़ो को ऊपर जाते हुए देखकर दुत्कार कर बोला—"ओ हुता कहाँ जाता है?'

नूरू रुका नही।

व्यक्ति अपनी गुडगुडी छोड, लोई के आराम को स्थगित कर, उस पर लपका, लेकिन कुछ क्षण बाद उसी तेजी के साथ लुढकता हुआ सीढिया से वापस आ गिरा और कुछ सोचकर फिर तम्बाकू पीने लगा।

नूरू एक बन्द-से विलास-गृह मे दाखिल हुआ। फर्श पर लाल गब्बा बिछा था और उस पर कोने मे, तकिया से सजी हुई एक सफेद चादर। खिडकिया बन्द थी और बत्ती जल रही थी। उसका प्रकाश खिडकिया के आगे लटकी हुई रग बिरगे मोतियो की झालरो, दीवार के साथ टँगे हुए चौडे शीशे, कुछेक अधनगी तस्वीरो मे छलक रहा था। उसकी रहती सिल्क की रजाई ओढे, आँखो मे हल्का-सा काजल डाले, सिरहाने कुछ फूल रखे हुए, चौडे बिस्तर पर सो रही थी।

नूरू अपनी सालम टाँग के बल खडा होकर बेहोशी के आलम मे उसे देखता रहा। यदि वह इस समय उसे छुरे से काट देता, या उसके साथ जा लेटता, तो ये दोनो ही घटनाएँ असम्भव न थी। लेकिन वह निश्चल खडा रहा। ऐसी परिस्थिति का उसे स्वप्न मे भी सामना न हुआ था। वेश्याओ के पास वह जा चुका था, लेकिन उनमे से कोई भी इतनी सुन्दर न थी, जितनी उसकी पत्नी थी।

हठात् रहती ने आँखें खोली। विश्वास न कर सकी और उठ बैठी। उसके आतक मे अपनी बीवी की झलक नूरू को मिली, उन दिनो की जब सडक ही पर वह उसे पीटने लग जाया करता था। पहचान से मुहब्बत और चाह जागी। चिल्ला उठा—

'ओ हरामजादी, खजीर की बच्ची, तुझसे इस नापाक कुतियापन के बगर रहा न गया? ओ तेरे बाप की नसल दोजख मे जाए! मै वहा आग मे जलता रहा और तू यहा गुलछर्रे उडाती रही? और '

पेश्तर इसके कि जोर-जोर से चीखने चिल्लाने का पुराना सिलसिला जारी हो जाता और नौबत उसके हाथ उठाने पर पहुँचती, रहती ने रोना शुरू कर दिया। यह रोना असली था या नही, केवल रहती ही जाने। वह कुछ-न-कुछ बदल चुकी थी। उसके चेहरे का अल्हडपन बदस्तूर कायम था, लेकिन अब वह उससे काम लेती थी। यह भी जान गई थी कि जितना थोडा काम लिया जाय, प्रतिक्रिया अधिक होती है। जीवन मे पहली बार उसे अपने खाविन्द के प्रति इस खयाल से प्रेरित होने का सौभाग्य मिला कि वह बेवकूफ है।

आधा घण्टा बीता। नूरू उसे क्षमा कर चुका था। वह पास बैठी रुँधे कण्ठ से अपनी अनगिनत विपत्तियो का हाल कह रही थी। नूरू सहानुभूति के साथ सिर हिला रहा था। बेशक वह भी सच्ची थी। वह क्या करती? लोगो ने उसे यह नही बताया कि उसके अजीज को किश्तवाड मे ले जाकर बन्द किया गया था, बल्कि यह बताया कि कलकत्ते मे गए है। सम्बन्धियो ने मुँह मोड लिया, खाती कहा से? पुत्र भी ऐसा पामर निकला कि माहबी के चक्कर मे जाकर अपनी मा तक को भूल

बैठा। दो बार वह दरिया में कूद पड़ी, लेकिन बदनसीब को लोगों ने निकाल लिया। उसके वास्ते और क्या चारा था? फिर भी उसने किसी काफिर को अभी तक नहीं छुआ, हालांकि पैसे ज्यादा देते हैं। पाँच बार नमाजें पढ़ती थी।

'अच्छा, जो हुआ सो हुआ,' नूरन ने कान में दियासलाई फिराते हुए कहा—लेकिन अब रवैया बदलना होगा। मौजूदा हालत दोनों ही के गुनाहों का नतीजा है, वरना बेटा ऐसा गँवार न निकलता। रहती को शरीफ-जादियों की तरह फिर से मैले कपड़े पहनने होंगे, और मुँह धोना भी दस-बीस दिन के लिए टालना होगा। सिर में राख डालकर बाल सीधे कर डालने होंगे, ताकि जमाने की छुरियाँ न चलें।' रहती सहमत हो गई, उठी, और जल्दी ही कपड़े बदलकर पुरानी हो गई।

उसके बाद वही हुआ जिसकी गली मुहल्ला अब तक प्रतीक्षा में था। बेगम अख्तरी जान नागलव के चौबारे में अकस्मात बला की चीख-पुकार शुरू हुई। तमगे और मोतियों की झालरें गर्मियों की बारिश की तरह यकायक बाजार में टपक पड़ीं। लोगों ने न केवल मर्द के बच्चे के प्रचण्ड गर्जन की दाद दी, बल्कि किताबों से आई हुई नई गालियाँ अपने शब्द-कोश में जोड़ लीं। अख्तरी जान नागलव का चीत्कार मुहल्ले के दरो-दीवार को कम्पायमान करने लगा। टप टप जूतियों की चप्पलों की, छड़ी से पीटने की आवाजें आने लगीं।

फिर लोगों ने देखा कि बेगम नंगे सिर सीढ़ियों से लुढ़ककर नीचे आ रही है। उसके पीछे लँगड़ू पलंग का एक [illegible] पाया हाथ में लिए हुए जल्दी से उतरने में अग्रसर हो रहा है। सड़क पर पहुँचते ही बेगम एक कोने में सर पटक-पटककर लगी विलाप करने।

नूरन ने उसे तो वहीं छोड़ा, अब [illegible] में पड़े चारपाई पर बैठे दलाल के गँवार हुए बाला को जा पकड़ा। सड़क पर घसीटकर उसकी गरदन को ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर [illegible] और कमर में तीन-चार घूँसे लिए और एक ही क्षण में उसे [illegible] की तरह चित कर लिया।

अब नूरन ने बेगम को [illegible] में पकड़ा और [illegible] बेगम [illegible] में उसका [illegible] करार। [illegible] बेगम के प्रेमी रह चुके थे अब घर [illegible]। [illegible] जमा हो चुके थे। अब वे तमाशा [illegible] [illegible]। [illegible] पर खड़ी होकर अपना [illegible] [illegible] करने लगी। [illegible], [illegible] नूरन अपने [illegible] [illegible] हो गया था। अब [illegible] और [illegible] अपना तमाम पुराना [illegible] [illegible] तो नूरन की छाती [illegible] हुई। [illegible] [illegible], बेगम का अपने [illegible] [illegible] [illegible] आई और [illegible] में [illegible] हो गई।

फिर वही पुराना घर, जिसकी तिकोन छत पर प्याज की खेती थी। नूरू ने संतोष की सांस ली। रहती के साथ विवाहित जीवन को दुबारा शुरू करने में अब कोई रुकावट न थी, क्योंकि रसम पूरी सजीदगी के साथ निभा दी गई थी। रहती ने भी मुह से नकली लहू पोछा, और देखा कि नोटों का पुलिंदा इजारबंद में सुरक्षित है, फिर घर के काम में लग गई। नूरू साथ वाले घर की छत पर बैठकर एक बुजुर्ग की चिलम की सांझी करने लगा। उसी घर के एक नवयुवक ने बाजार से उसके लिए मलमल की सफेद पगडी ला दी जिसे अपने उन्हीं मैले कपडों पर सजाकर और रहती की ओर एक लालुप नजर फेंककर, वह अपने नए जीवन की सूचना ससार को देने के लिए निकल पडा।

शाम हो चुकी थी। बाजार में भीड बढ गई थी। घरों में से चीड के धुएँ की खुशबू फैल रही थी। नूरू के मन में दो भाव इस समय प्रबलता से उठ रहे थे। एक तो यह कि उसे भूख लगी है और दूसरे यह कि जेल के फाटक में से जो ससार इतना सुखमय और बहुमूल्य नजर आता था, वह अभी तक बहुत छोटा और फीका जान पडता है। जेल में वह कुछेक महत्त्वपूर्ण निश्चय करके निकला था, लेकिन अब उनके प्रतिफलित होने की आशा कठिन-सी जान पडती थी। रहती के शरीर के लिए उसके रक्त में जबरदस्त भूख थी। शायद रात को वह चुपके-चुपके उसे फिर उसी तरह साफ होकर आने के लिए इशारा करे। लेकिन उसके जीवन का भविष्य हन्नू पर ही टिका था। वह कितनी उपेक्षा के साथ कन्नी काट गया? शाम हो गई, लेकिन अभी तक नहीं आया। क्या ही अच्छा हो कि उसे कुछ दिनों के लिए जेल में ही भेज दिया जाय! अभी कुछ घण्टों की आजादी ही काफी है।

कुछ इसी प्रकार सोचता वह लँगडाता हुआ चला जा रहा है। उसका ध्यान एक खाने-पीने की दुकान के बाहर पडे हुए सन्दूक की ओर गया। इसमें से किसी लडकी के गाने की आवाज आ रही थी—

गुल हमा रोशे रोशे
पोश मति जाना ना।

नूरू ठहर गया। यह कौन गा रही थी? उसने देखा कि सडक के किनारे बीस आदमी मान पर हाथ रखे बैठे हुए हैं, लेकिन किसी के मुह पर तरस की रेखा तक नहीं कि गानेवाली को इस तरह बन्द किया गया है। और सन्दूक उसकी कोठरी के मुकाबले में कितना छोटा था? इतने में गाना बन्द हो गया। दुकानदार ने सन्दूक का ढक्कन खोला और उसमें से एक थाली सी निकाली। नूरू लपककर आगे बढा और अन्दर झाँककर पूछने लगा—'हतबी कहा है?' सभी लोग हँसने लगे। इतने में एक पुराने हमजोली ने उसकी बाह पर हाथ रखा और उसे दूकान के अन्दर ले गया।

रात के दस बज चुके थे। जब नूरू लडखडाता हुआ दूकान में से निकला, लडकी फिर वही गीत गा रही थी—

चुल हमा रोशे रोशे
पोशे मति जाना नो।

नूरू ने हँसते-हँसते ढक्कन उठाया और अन्दर झाँककर फिर रख दिया। लेकिन अब कोई न हँसा। सडक खाली थी।

अपने मित्र से विदा लेकर नूरू आहिस्ता-आहिस्ता अपने घर की ओर चला। लेकिन साथ-ही-साथ उसका मन घर की ओर से उचाट होने लगा। क्या रखा है वहाँ? बीसिया के साथ सो चुकी है। हब्बू के घर न आने का कारण भी वही है। न जाने अब भी किसी यार का बगल में लिये पड़ी हो। नशे में आकर किसी की प्रवृत्ति तामसिक हो जाती है और किसी की सात्त्विक।

नूरू वापस लौट पड़ा। पूरब दिशा में आकाश लाल बत्तियों के प्रकाश से अंगारे की तरह जगमगा रहा था। अभी अमीराकदल में भीड का शोर सुनाई दे रहा था। नूरू के दिमाग में शराब की मस्ती कुछ बढ रही थी। कदम चुस्त करके वह भी अमीराकदल की ओर चला।

बडे बाजार में भीड सडक के दोनों ओर रुकी हुई थी और महाराज की मोटरें गुजर रही थीं। नूरू को भीड में ठहरना पसन्द न आया। सरकता-सरकता, लोगों की गालियाँ और धक्के खाता हुआ वह पुल के पास पहुँच गया। भीड में से निकलकर वह पास ही के एक बाग में चिनार के नीचे जा बैठा। उसका हाथ उठकर उसकी आँखों के सामने आया। उसमें घडी तथा सोने की जंजीर थी और एक चमडे का बटुआ। नूरू ने उसे खोलकर देखा—पन्द्रह रुपये थे।

इनकी तरफ देखता हुआ नूरू हँसने लग गया। हँसता गया और घडी को उलट उलटकर देखता रहा। उसके हाथ अनभ्यस्त होकर भी इतने शिथिल नहीं हुए थे। एकाएक उसने बटुआ भी और घडी भी घृणा के साथ दूर फेंक दिए और हाथ को उलट-खोल कर-करके उँगलियों को सराहने लगा।

लेकिन उसके मन की बेचैनी दूर न हुई। उठकर वह फिर बाजार में आ गया। मोटरें गुजर चुकी और भीड तितर बितर हो रही थी। नूरू को ऐसा लगा कि उसके मनोविनोद के लिए बनाई गई वस्तुएँ बिखर रही हैं। और वास्तव में जो लोग एक व्यक्ति को मोटर में गुजरते हुए देखने के लिए घण्टों खड़े रहे और फिर चुपचाप घर चले जाएँ, वे और थे ही क्या?

भीड एक स्थान पर गठ गई थी। एक मोटे पेट वाला व्यक्ति कभी पुल पर इधर और कभी उधर जाता था। जिधर वह जाता भीड उसके पीछे जाती। नूरू को पता चला कि उसकी सोने की घडी चोरी हो गई है। उसके बाद एक और टोली एक थानेदार साहब की निगरानी में आ पहुँची। इनमें से एक का बटुआ गुम हो गया था और एक का कलम एक दूसरे व्यक्ति का जेब कट गया था। नूरू पहले तो विस्मित हुआ, फिर उसकी बाँछें खिल गई। यह अकेले जादूगर का

काम नही है। कोई और भी खेल रहा है। पुल के नीचे-नीचे दरिया अपनी मस्त चाल से बह रहा था। डूगो म हतावियाँ किसी आगामी शादी के गीत गा रही थी। तख्तए-सुलेमान पर चाँद अपनी पूरी ज्योति के साथ चमक रहा था। पुल के जगल के साथ टेक लगाकर नूरू ने गुनगुनाना शुरू किया

'चूल हमा रोशे रोशे
पोशे मति जाना नो।'

भीड आहिस्ता-आहिस्ता खत्म होने को आई। लगड भी उसकी एक शाखा के साथ-साथ पीछे चला।

वह नहीं जानता था कि किस दिशा मे जा रहा है, या क्यो। कभी-कभी राहगीरो को ताने द देता, उनके कपडा पर फबती कसता, लेकिन वे गम्भीर-सा मुह बनाकर आगे चले जाते, जैसे घर नही दफ्तर जा रहे हो।

अब उसे ख्वाहिश हो रही थी कि घर लौट जाऊँ, लेकिन एक एक कदम के साथ उस ऐसा प्रतीत होता था कि वह बीस-बीस कोस आगे बढ रहा है। हबीब खान घर पर नही होगा। रहती कितनो के साथ लेट चुकी है? नापाक औरत! अब भी किसी की बगल म पडी होगी।

इस उधेडबुन का आखिरी फैसला सोचते हुए नरू ने तय किया कि वह आज ही रात दूसरी शादी करेगा। रहती और हबीब को भविष्य मे शक्ल नही दिखाएगा। स्त्रियाँ डूगा मे बैठकर उसके गीत गाएँगी और वह स दूक स भी सगीत करवाएगा।

लेकिन इसके लिए पैसा की जरूरत होगी। हूँ? पैसो के लिए ही तो वह भीड के पीछे जा रहा था।

हजूरी बाग के किनारा के समीप पहुचकर उसने राह बदल ली। बाग के बाई ओर तीन चार सफेद कोठियाँ चाद की धूप मे सो रही थी। उन्ही मे से एक पर उसकी नजर जम गइ।

कोठी की बगल मे एक पेड था। नूरू उसके साथ सटकर खडा हो गया जैस किसी प्रेयसी के गाढ आलिगन मे हो। आहिस्ता से उसने अपनी सफेद पगडी को जमीन पर रगडकर मला किया, और फिर उसे रस्सी की तरह गठकर बाह के नीचे दाब लिया।

कोठी के आगे सात फुट ऊँची दीवार थी और उसकी चोटी पर काच के टुकडे जडे हुए थे। सडक की टोह लेकर नूरू बडे आराम के साथ दीवार के पास पहुँचा और छाह मे लुक गया। थोडी दर भिखारियो की तरह बैठकर दाएँ बाएँ देखता रहा फिर उठकर उसने पगडी को ढीला किया और काच के ऊपर जबरदस्त झटके के साथ पटका। वह फौरन बैठ गई। स्थान स्थान पर उसन उसम गाठें बाँधी। इस प्रकार पगडी की दोहराई म जूते समेत कदम रखकर वह सहज ही दीवार पर

पहुँच गया। वहां से बिजली की तरह पगडी-सीढी उठाकर अन्दर की ओर फेंकी और फिसलकर बगीचे में आ रहा।

फिर पगडी खोलकर उसने इस ढंग से फैला दी जैसे कोई कपडा सूखने के लिए डाला जा रहा हो। उसके एक छोर के नीचे अपना जूता छिपा दिया ताकि ढूंढना न पडे।

मकान के आगे एक छोटा-सा बरामदा था जिसके शीशे के सभी दरवाजे बन्द थे। शीशा को काटकर दरवाजा खोलना असम्भव था, क्योंकि नूरू के पास कोई औजार न थे इसलिए वह मकान की पिछली तरफ गया। ऊपर की छत के एक कमरे में बत्ती जल रही थी और इसमें नौकर बतन माज रहे थे। मकान के एक तरफ लकडी की तंग सीढी थी, जिसका दरवाजा अभी बन्द नहीं किया गया था। यदि फौरन ही उसने इसका फायदा न उठाया तो यह भी बन्द कर दिया जाएगा। नूरू दबे पाँव ऊपर चढ गया और रसोईघर की खिडकी में से अन्दर झाँकने लगा। एक नौकर बरतन धो रहा था और दूसरा प्लेटों को पोंछ रहा था। कम-अज-कम आधे मिनट के लिए उनके मुह पलटने की सम्भावना नहीं। यह तय कर नूरू ऐन उनके सामने होकर गुजर गया और एक अंधेरे कमरे में दाखिल हुआ। लेकिन तभी उसे एक नौकर के गाने की आवाज अपनी ओर आती सुनाई दी। नूरू एकदम सटकर दीवार के साथ खडा हो गया। नौकर अन्दर आया। नूरू का कलेजा धडकने लगा लेकिन नौकर ने बिजली का बटन नहीं दबाया। कोई चीज उठाकर वह फिर बाहर चला गया। नूरू फौरन दूसरे दरवाजे से होकर मकान के भीतर जा घुसा। यहाँ एक गली सी थी, जिसके साथ-साथ सीढियां ऊपर नीचे जाती थीं। फर्श लकडी का था और चिरचिर करता था। लेकिन नूरू हल्के कदमों से ऊपर वाली सीढियों पर जा चढा। फिर अपने हाथों की मदद से जंगले पर जोर डालकर तीन छलाँगों में तीसरी छत पर जा पहुँचा। एक मंजिल बाकी थी वह भी चढ गया। उसने जांच लिया कि इस मंजिल पर कोई नहीं रहता। आश्वस्त होकर वह सीढ़ियों पर बैठकर दम लेने लगा।

सीढियों के दाएँ-बाएँ के दरवाजों से चन्द्रमा का प्रकाश छनकर अन्दर आ रहा था। इसकी सहायता से नूरू ने अपरिचित घर के दाएँ-बाएँ नजर फेरी। सब सुनसान था। नूरू का अपना वहाँ होना बहुत ही विचित्र सा लगा।

उसका मन चुटकियाँ लेने लगा। मैं क्यों यहाँ आया हूँ? इसलिए कि मैं रह नहीं सका। मुझे दूसरों के घरों में वह दृश्य देखने की लत पड गई है जिसे वे स्वयं नहीं देखते। धन खर्च करते हैं मकान बनवाते हैं फिर उसे भूल जाते हैं। सुबह उठे, काम पर चले गए रात को लौटे चिटखनियाँ चढ़ाकर सो गए। कभी इस तरह सीढियों पर बैठकर उन्होंने चन्द्रमा नहीं देखा। वास्तव में मकानों का

स्वामी ता मे हूँ। मैं पास जाते ही उनकी दीवारा से मित्रता पैदा कर लेता हूँ। मैं उनकी छातिया चीरकर चला जाता हूँ और वे मुझे याद करती रहती हैं।

एक सफेद बिल्ली किसी कोने से निकली और उसे देखकर भाग गई। नूरू भी सटक गया। फिर हँसने लगा। खुदावन्द ने उसे गुरूर की सजा दी।

नौकर अब सो गए हागे, यह अनुमान करके नूरू उठा और धीरे-धीरे निचली छत पर उतर आया। यहा उसने एक किवाड का धकेला और दाखिल हुआ। चन्द्रमा की रोशनी कमरे के अन्दर आ रही थी। कमरा खाली था। दीवार के साथ एक मेज पर कुछ बोतलें पडी थी और बाकी कमरा भी एक बडे से मेज और कुर्सिया से पूर्ण था। नूरू ने एक बोतल खोली और नाक मे लगाइ। फिर गटागट पाच दस घूट पी गया। इसके बाद वह कुर्सिया से बचता हुआ साथ वाले कमरे म पहुँचा। यह भी खाली था। क्या सारा मकान खाली था?

इस कमरे के एक तरफ मेज पर कुछ वस्तुएँ पडी थी। नजदीक आने पर मालूम हुआ कि ये तेल की बोतलें व कघी बुरुश इत्यादि हैं। नूरू ने दराज खालकर देखे। यहा उस सोने की चार चूडिया और दो अँगूठिया मिली। नूरू न इसे बहुत ही अच्छा सगुन समझा। उसकी भावी पत्नी के लिए जेवरा का इन्तजाम भी सहज ही म हो गया। उन्हे जेब मे डालकर उसने दराजो का फिर टटोला, लकिन और कुछ न मिला। वापस लौटते वक्त उसने देखा कि उसकी टागें कुछ-कुछ लड-खडा रही ह। यह अनुभव करके कि शराब अब भी ठीक वही वस्तु है जा आठ बरस पहले थी, उसे प्रसन्नता हुई, इसलिए उसन पहले कमरे म वापस आकर बाकी बोतल भी समाप्त की। अब उसे खयाल आया कि दुलहन के लिए जेवर तो ले लिय, लेकिन अगर तेल कघी और शीशा भी ले चलू ता क्या हज है? जमाना बदल रहा है। मुझे भी अपने विचार बदलन चाहिएँ। मैं अपनी दुलहन को वेश्याओ से भी सुन्दर बनाकर रखूगा और वह किसी दूसर मर्द की तरफ देखेगी भी नहीं। केवल मुझे प्यार करेगी।

अब निधडक होकर उसन बिजली का बटन दबा दिया। रोशनी न उसकी आँखा का चुधिया दिया। उसने देखा कि दीवारा से सटी हुई दो-तीन आल्मारिया भी हैं। वह रुकता रुकता उनके पास पहुँचा और उन्हें खोला, देखा कि आल्मारियाँ सिल्क और ऊन के मुलायम कपडा स लदी पडी हैं, और उनम अत्याकर्षक गन्ध आ रही है। उसन कपडे फर्श पर फेंकने शुरू कर दिये। फिर कघी शीशा लेने ड्रेसिंग टबिल पर पहुँचा। शीशियो के बीच म एक चाँदी की छोटी-सी अति सुन्दर कश्मीरी सुरमादानी पर उसकी आँख पडी। उसका दिल बाग-बाग हो गया। अगर दुलहन सजी धजी होनी चाहिए तो दूल्हा का शृगार भी तो लाजिम है। कपडा के ढेर के दरमियान आईना अपने सामने रखकर वह बैठ गया और लगा आँखो म सलाई फेरने।

दूर से पहरेदार की आवाज उसके कानो पर पडी—'खबरदार! खबरदार हो ए ?' यह नूर को बडी सुरीली लगी, विशेषकर 'हो ए' वाला हिस्सा, जैसे पहरेदार ने केवल उसी के मनोरजन के लिए निकाली हो। बडे आराम से उसने अपनी आखो म सुरमा डाला, और कोशिश की कि आँखा मे ही पडे।

पहरेदार की फिर आवाज आई—

'खबरदार हो ए ?'

नूर को फिर बहुत आनन्द आया। बच्चा की तरह नकल उतारकर उसने भी ऊँचे स्वर मे पुकारा—

'खबरदार ! खबरदार हा ए ?'

मुहल्ले का पहरदार इस प्रतिध्वनि को सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। कलाविदो का कलाविदो का अभिनन्दन पाकर प्रोत्साहन मिलता है। उसन लटठ किसी दीवार क साथ पटककर एक नए ढग से ललकारा—

'हट हट अहहहह खबरदार हो ए ?

इधर स भी प्रतिध्वनि हुई—

'हट हट अहहहहह खबरदार हा ए ?'

लेकिन साथ ही एक दारुण चीत्कार भी उठा। वजीर माल साहब के बँगल मे घबराई हुई आवाजें आनी शुरू हो गई। पहरेदार भागा और फूल म छुपे हुए काटे की तलाश मे, फाटक कूदकर मकान के अन्दर घुसा। घुसते ही उसने बन्दूक का एक फायर आकाश म किया। निचली छत पर वजीर साहब और उनका कुटुम्ब बरामदे म खडा काँप रहा था। ऊपर से लगातार आवाजें आ रही थी—

'हट हट अहहहहह खबरदार हो ए ?'

'हट हट अहहहहह खबरदार हा ए ?'

चाँदनी रात का एक दुखान्त

—कर्तार सिंह दुग्गल

कोई नही कहता था, मालिन और मिन्नी माँ-बेटी है। जहाँ से गुजरती, लोग यही समझते कि बहनें है। मिन्नी बालिश्त भर ऊँची थी अपनी माँ से। "अरी मालिन, अटूट यौवन उतरा है तरी बेटी पर!" अडोसिनो-पडोसिना की उसकी ओर देख-देखकर भूख न मिटती। और लडकी जस सच्चा मोती हो। जितनी सुन्दर, उतनी सुशील। मालिन अपनी बेटी के मुह की ओर दखती और उस लगता जस हूबहू वो खुद हो। अभी तो कल की बात थी, वो स्वय वैसी-की-वसी थी। और वो सोचती, अब भी उसका क्या बिगडा था! अब भी—अब भी कोई पहाड काट-कर उसके लिए नहर निकालन के लिए बेताब था। अब भी—अब भी कोई सात समुन्दर तैरकर उस तक पहुँचने के लिए बेकरार था।

यह कौन उसे आज याद आ रहा था?—मोतिया का व्यापारी।

ये क्या उसकी पलकें आज भीग-भीग जा रही थी? उसकी बेटी अब जवान हो गई थी। अब उसे यह कुछ शोभा नही देता था। सारी उमर सम्हल-सम्हलकर चली, आज ये कसे खयालो मे वो खोई चली जा रही थी? नही-नहीं। अगले हफ्ते मिन्नी, अपनी बेटी का उस काज रचाना था। नही, नही, नही!

"पास मेरी परम प्यारी, एक पल न बिसारी

कल उसने चिट्ठी लिखी थी। हर बार वो आता, यह उसे वैसे-का-वैसा लौटा देती। आखें मीचकर अपना द्वार बन्द कर लेती। लेकिन वो था कि एक पल भी इस उसन नही बिसारा था। मालिन उसकी जान थी। एक क्षण उस चैन नही था इसके बिना और सारी उमर उसने काट ली थी किसी की प्रतीक्षा म, फफक-फफक-कर, सिसक सिसककर, तडप-तडपकर – सारी उमर। और अब परछाइयाँ ढल रही थी। चाहे कभी पछी उड जाए।

मालिन सोचती, आज रात वह जरूर आएगा। शरद पूनम की रात वो जरूर इसका द्वार खटखटाता था। वर्षों से खटखटाता आ रहा था। कभी भी तो इसने अपना पट उसके लिए नही खोला था।

और फिर मालिन को कई वष पहले की शरद पूनम की वो रात याद आने लगी, जब अमराई के तले नाचती इसकी चुनरी उसकी बाहो के साथ लिपट गई थी और

सर से नगी यह उसके सामने दुहरी हो-हो गई थी, और फिर उसने इसकी चुनरी इसके कधा पर ला रखी थी।

है ! उस दिन वैसे ही अपना दुपट्टा आज इसने अपने कधे पर रखा हुआ था !—और मालिन सर से लेकर पाव तक लरज़ गई।

सामने गली मे मिन्नी आ रही थी, जस सरो का पेड हो। ऊँची, लम्बी और गोरी। हाथ लगाने स मैली होती। मह-मथ नपट आँखें नीचे डाले। मजाल है किसी ने उसका ऊँचा बोल भी कभी सुना हो ! मन्दिर से लौट रही थी भगवान के आगे हाथ जोड जोडकर, उसके मन की मुराद पूरी हो। भगवान् सबके मन की मुराद पूरी करे ! और मालिन आप-ही-आप मुस्कराने लगी। जैसे किसी के गुदगुदी हो रही हो। उसके मन की क्या मुराद थी ?

"मा, तहेजी आज नही आए ?" मिन्नी मा स पूछ रही थी।

"तेरे तहेजी आज नही आएँगे। वो तो कही कल भी आ जाएँ तो लाख शुक्र ! कितनी सारी बजाजी और कितना सारा अनाज उसे खरीदना है। ब्याह-शादी म चीज बच जाए तो अच्छी कम पड गई का बडा झझट होता है।' मालिन बेटी को समझा रही थी। मिन्नी चूल्हे चौके म व्यस्त होने स पहले धीरे स आई और अपनी मुकैश वाली चुनरी मा के कधो पर रख उसका दुपट्टा उतारकर ले गई। कहीं उसकी रेशमी चुनरी मैली न हो जाए !

कितनी महीन मुकैश उसने टाँकी थी अपनी चुनरी पर !

धुधलका हो रहा था। अकेली आगन म बैठी मालिन कल्पनाओ म खो गई थी। कई चक्कियाँ बडा महीन आटा पीसती है। मालिन सोचती, वो भी तो एक चक्की की तरह थी जो सारी उमर अपनी धुरी पर चलती रही। कभी भी तो उसकी चाल नही डगमगाई थी। अपने-आपको उसने मलीदा कर लिया था। रोक-रोककर, भीच भीचकर खत्म कर दिया था अपने आपको।

पूरे चाँद की चादनी अमराई मे से छन छनकर उसके ऊपर पड रही थी। ये कैसे विचारो म वो बहती जा रही थी आज ? मालिन को लगता जैसे एक नशा-नशा-सा उसको चढ रहा हो। पूरे चाद की चाँदनी हमेशा उस पर एक जादू-सा कर दिया करती थी।

चार दिन और, और फिर इस आँगन मे गीत बजेंगे।—मालिन सोच रही थी—और फिर मेहदी रचाई जाएगी। और फिर मिन्नी दुल्हन बनेगी। सिर से लेकर पाँव तक गहनो स सजी हुई, लाल जोडे मे कैसी लगेगी मिन्नी ? और फिर कोई घोडे पर चढकर आएगा और डोले म डालकर उसे ले जाएगा अपने घर, अपनी अटारी में। और उसकी हथेलियो को चूम चूमकर उसकी मेहदी का सारा रग पी लेगा।

मालिन सोचती अभी तो कल की बात थी उसने भी मेहदी लगाई थी।

पर मिन्नी के तहेजी ने तो एक बार भी उसकी हथेलियां को उठाकर अपने होंठा मे नही लगाया था, एक बार भी उसने कभी इसके हाथों को उठाकर अपनी आखा से नही छुआ था। थका-हारा वो काम मे लोटता, खाना खाता और खाकर सो जाता। एक वेटे की लालसा मे कभी-कभी आधी रात को उसकी आख खुल जाती —तब, जब मुश्किल से कही तारे गिन गिनकर मालिन का नींद आई होती। और फिर हर वष, हर दूसरे वष इनके एक न एक बेटी आ जाती। बिना बुलाई लडकियाँ। आप-ही-आप आती, आप ही-आप जाती रही। बस एक मिन्नी बची थी, इकलौती। मोटी मोटी, काली-काली आखें—मालिन की आखें। गोरे-गोरे गाला के नीचे तिल—मालिन का तिल। गज गज लम्बे बाल—मालिन के बाल। मालिन सोचती, जैस इस जीवन की उसकी सारी भूख ने उसकी बेटी म पुनजन्म ले लिया हो, अपनी पूर्ति करने के लिए। मालिन मोचती, उसका हुस्न जैसे फिर साकार हो गया था अपनी कोखजाई मे अपना मूल्य चुकवाने के लिए। मालिन को हमेशा महसूस होता जसे उसके अग-अग, पोर-पोर मे एक भूख बसी हुई है। एक प्यास मे उसके होंठ बेकरार हा रह थे।

पूरे चाद की रात मालिन से कभी कुछ खाया नही जाता था। और मिन्नी कब की चूल्हा-चौका सम्हाले, सामने ड्योढी के दरवाजे को कुण्डी लगा अन्दर कमरे म सो गई थी।

रात भी कितनी हो रही थी। चाद जैसे सारे का सारा उसके आगन म आन उतरा हो। रात ठण्डी थी। अभी ठण्ड कहा! यो ही हल्का हल्का जाडा था। पूरे चाँद की रात, अकेला आगन, मालिन सोचती—वो क्यू यू बैठी थी? किस-के इतजार म? मिन्नी अन्दर सो चुकी थी। मिन्नी के तहजी को आज ही क्या शहर जाना था? पूनम की रात तो वो अपन आपको बाध-बाधकर रखती थी। और मालिन ने मुक्कश वाली मिन्नी की चुनरी के साथ अपना मुह-सर लपट लिया। चाँद की चाँदनी मे दमक दमक पडते मुक्कैश के दान। उम लगा जसे आसमान के तारे उसके बालो मे उतर आए हा—उसके गालो पर, उसके कधा पर आकर खेलने लग गए हा। सामने अमराई पर फिर कोई पछी आकर बाल रहा था—हुक, हुक, हुक! सारी रात पुकारता रहेगा—पूनम की सारी रात। सारी उमर या ही पुकारता रहा था और जिसने आना था, वह नहीं आया था।

ये किन विचारा मे वो आज बहती जा रही थी? मालिन सोचती, शायद इसलिए कि वो अकेली थी। अकेली क्यो थी? अन्दर मिन्नी उसकी जवान जहान बेटी सोई थी। अगले हफ्ते, जिसका उसने काज रचाना था। सात दिन और, और वो चली जाएगी। और फिर मालिन अकेली रह जाएगी। इतना बडा आँगन और वो अकेली। मालिन का अग-अग लरज गया। यह आँगन उसे खाने को दौडा करेगा। मिन्नी क्या इसके यहाँ आएगी? वो तो अपना घर बसाएगी। गाँव के

चौधरी की बहू बन तो अपने सहन का सिंगार बनेगी। और मालिन माचती, वो अकेली रह जाएगी, बिलकुल अकेली। मिन्नी के तहजो की तो सारी उमर सूद-खोर म कट गई थी—एक अटूट दौड। घर का मर्द, शाम को हर रोज हारकर जस का आता था और निढाल अपनी चारपाई पर ढेरी हो जाता था। कई बार उस यह कहती—आखिर इतने झमेले किसलिए ? काहे को उमने इतने झमट पाल लिए थ ? लेकिन उम कोई बात नही समझ आती थी।

मालिन घडी की घडी क लिए अन्दर कोठे म गई। मिन्नी सचमुच सो गइ थी। अल्हड जवानी की नीद म बेसुध सोई पडी थी। लाल चूडियां को उतार, सिरहाने रख, सो गई थी। कहीं चूडियां रखी थी उसन ? ज्यो ही करवट लगी, कच-कच टूट जाएगी। और मालिन न सोचा, वो उठाकर चूडियों को सामने ताखे म रख द। लेकिन उसन तो चूडियां पहन ली थी—ताखे म सम्हालन की जगह उसने तो चूडियां अपनी कलाइयो म सजा ली थी। छह एक ओर और छह दूसरी ओर। चमक चमक पडती चूडियां, अभी तो कल ही मिन्नी न गली म बैठकर चूडी वाले स चढवाई थी।

और मालिन बाहर आंगन म लौट आई। सिर पर रेशमी मुकेश वाली चुनरी बाहो म लाल चूडियां, पूरे चांद की रात मालिन को लगा, जस एक ऐंठन-सी उसके अग अग म फलती चली जा रही हो।

और फिर उसकी ड्योढी का दरवाजा किसी न खटखटाया। वही था, वही था! धीरे से, सहमा हुआ, झिझकता हुआ—वही था ! जैस उसने चिट्ठी म लिखा था अपन वचन पर आन पहुँचा था—"शरद पूनम की रात मैं तुम्हारा किवाड खटखटाऊँगा। तुम्हारी मर्जी हो खोल देना तुम्हारी मर्जी न हो न खोलना तुम्हारा किवाड खटखटान का मेरा हक बस का बस बना हुआ है।' ठक ! ठक !! ठक !!! अत्यन्त कोमल, अत्यन्त मधुर, प्यारी सी यह दस्तक उसी की थी। वही था। चांदनी रात का चोर। और सहसा चांद घन काले बादलो के पीछे हो गया। अँधेरा अँधेरा छा गया चारो ओर। जैसे किसी ने एकदम बत्ती बुझा दी हो। घोर काले बादलो का पहाड सा चांद के सामने आ गया था। बादलो पर बादल चढे आ रहे थे।

और रात के उस अँधेरे म मालिन क कदम ड्योढी की ओर चल दिए। अँधेरा अँधेरा, चक्कर चक्कर, ठण्ड ठण्ड, पसीना-पसीना। कांपते हुए हाथ से धीरे से उसन कुण्डी खोली और अपने-आपको तडप रही बाहो म ढेरी कर दिया। और फिर होठो पर होठ दांतो म दांत,—बीस वर्षो का रुका हुआ एक बांध जसे फूट कर टूट पडा हो। जसे कोई फूल की पत्ती किसी बवण्डर की लपट म आ गई हो।

मालिन को नही पता था कब चलते-चलत वो गाँव के बाहर बरगद के नीचे जा खडे हुए कितनी देर वहाँ खडे रहे। मालिन को नही पता था कब वो बरगद

के साथ लगते खेत मे जा बैठे, कितनी देर वहा छिपे रहे। तडके मुँह-अँधेरे की गाडी दूर सडक के पार चीखती-चिल्लाती गुजर रही थी कि उसकी आख खुली और मालिन धीरे से उसकी बाहो म स निकल मुह सर लपेटे तेज-तेज कदम अपने घर लौट आई।

चूडिया को उतारकर उसने वैसी-की-वैसी मिन्नी के सिरहाने रख दिया। उसकी रेशमी चुनरी उसकी चारपाई पर धरी और अपना दुपट्टा लेकर सामने बिस्तर म जा लेटी।

मालिन अपन पलँग पर आकर पडी और उसकी आख लग गई। यू तो उसे कभी भी नीद नही आई थी, जैसे सारी उमर का किसी का रतजगा हो।

धूप निकल आई थी और तब कही उसकी आख खुली।

'कैस अल्हड लडकिया की तरह तो आज सोई है मा।" मिन्नी न उसे छेडा।

जवान-जहान लडकी। उसने घर की झाड पाछ दख ली थी। चूल्हा चौका खत्म कर लिया था और नहा धोकर अब मन्दिर जा रही थी—मोतियो की कलियाँ अपनी चुनरी के पल्लू के साथ बाधे, अपने इष्ट की भेंट चढाने के लिए।

मिन्नी आख से ओझल हुई और मालिन अलसाई हुई लाखो-लाख सपने अपने पलको म लिय सामने आँगन मे जा बठी। मीठी मीठी पुरवैया चल रही थी। हल्की हल्की धूप सामन मुडेर से नीचे उतर आइ थी। एक खुमार-सा था आस-पास। मालिन को लगा जसे वो दूध की लबरेज कटोरी हो। दूध और उस पर तैर रही चमेली की कलिया। एक उन्माद मे उसकी पलकें जुड-जुड जाती, खुल-खुल जाती।

"अरी मालिन, कहाँ है तुम्हारी काइयाँ बेटी ?" जस उसको किसी न आकर चाँटा द मारा हो। मालिन की ऊपर की सास ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गई।

"यह अनय कभी नही किसी ने सुना। चार दिन इसके डोले को रह गए है और यह लडकी यू उथल पडी।' लाजो पडोसिन हथेलियाँ मलती मालिन के पास आकर बठ गई।

"क्या हुआ है मरी बेटी का ? वो तो निरी गऊ है।" मालिन भभककर उग लाटने को पडी।

"तेरी गऊ सारी रात कल मुह काला करवाती रही है।"

मालिन न सुना और उसके जसे सोत सूख गए। काटो तो लहू नहीं। नीली पीली—उसका अग-अग जैस मुड रहा हो।

"उधर रात हुई, इधर यह किसी गुण्डे के साथ बाहर निकल गई। सारी रात

तेरी डयोढी खुली रही है। मैंन खुद इन आंखो मे देखा, डयोढी के बाहर किसी की बाहा म यह ढेरी हुई पडी थी। मैं बाहर चोटी करने निकली थी और मैंन वैसे का वसा किवाड भिडा लिया। और फिर ये होले-होले कदम, बांह म बांह टाल बाहर खेता की ओर निकल गए। सारी रात मेरी तो आंख नही लगी। बटियाँ मबकी सांझी होती हैं। यू पहले कभी किसी ने अपन मा-बाप का मुह काला नही किया। यू कभी किसी न अपने बडे-बूढा की पत नही उतारी। हम ता कही मुह दिखाने के लिए नही रहे।" और लाजो छल छल रो रही थी—रोए जाती और हथेलियो को मले जाती।

मालिन जैसे पत्थर का पत्थर हो, उसे कुछ सुनाई नही दे रहा था।

और फिर यू बिलखती बिलखती लाजो चली गई।

लाजो अभी गई ही थी कि गांव का चौकीदार जुमा पिछवाडे की ओर स उतर आया।

"भाभी ! अरी भाभी मालिन ! कब का वो उसके पास खडा उसे बुला रहा था।

"क्या है जुमा ?" जसे कुएँ म स निकली आवाज हो। मालिन चौकीदार को आगन म खडा देखकर सम्हलने लगी।

"भाभी ! बात कहने वाली तो नही पर, कल रात बडा जुल्म हुआ है इस गाव म। मैंने तो बाल सफेद कर लिये चौकीदारी करत हुए ऐसा अधेर मैंन कभी नही दखा। तरी बेटी मिन्नी किसी के साथ बरगद के तल मुह काला करती रही। रात चाँदनी थी, लेकिन आकाश बादला स अटा हुआ था। दो बार मैं दस कदम की दूरी पर इनके पास से गुजर गया। होठो पर होठ जमाए, एक-दूसरे को चिमटे, इनको कुछ पता नही लगा। बरगद के तले खडे खडे थक गए और फिर खेत म जा छिपे। मैं तो सारी रात तरे घर का आकर रखवाली म बठा रहा हूँ। खुली डयोढी, चार दिन इसके ब्याह को रह गए हैं। ब्याह वाला घर गहना-कपडो स भरा होता ह। सवर हुई तो मैं यहा स हिला। पता नही कब यह झक मार मार कर लौटी, कमजात। मैंने तो इस गोद खिला खिलाकर पाला ह। मेरी बटी होती ता मैं इसका गला घाट देता। मैं तो पिछली दीवार फांदकर आया हूँ। मैंन सोचा, कोई पूछेगा कि तुम सुबह-सुबह किधर चल दिए, तो मैं क्या जवाब दूगा ?"

मालिन के मुह म जबान नही थी, टिट टिट आखें जुमा चौकीदार की ओर देख रही थीं।

और जुमा जिस राह आया था, उसी राह दीवार को लांघकर लौट गया।

जुमा गया और सामने गली म रतना जमीदार दहाडता-फुकारता सिर जितना ऊँचा लटठ उठाए उसके आंगन मे आ धमका। क्रोध मे उबल रहा था।

"कहा है तुम्हारी लडकी ?" ड्योढी म घुसत ही वो गरजा, "कहा है वो बदजात छिनाल ? मेरा ही खेत रह गया था इसे खराब करने को ?" रतना उछल-उछल पड रहा था। मन-मन की सलवातें सुनाता, सारा मुहल्ला उसने इकट्ठा कर लिया। अडोसी पडोसी मुडेरो पर आ खडे हुए।

"मैंन खुद अपनी आँखो से देखा है। तडके मैं कुएँ की ओर जा रहा था। मैंने खुद अपनी आखा से देखा—पहले यह निकली मेर खेत म से मुक्कश वाली चुनरी ओढे हुए। मैंने सोचा, लडकी शायद बाहर बैठन आई है। और फिर एक पल गुजरा और इसका यार किसी दूसरी ओर मे नीचे उतर गया।"

"क्यो झूठ बालते हो चाचा ?" बिजली की तरह कडककर मिन्नी भीड का हटाती हुई आगे बढी। देर से वो मन्दिर से लौटी हुजूम के पीछे खडी सब-कुछ सुन रही थी।

"मैं झूठ बोलता हूँ बदजात ? मैं झूठ बोलता हूँ कुलच्छनी ? यह लाल चूडी किसकी टूटी थी मेरे खेत म ?" और अपनी चादर के पल्लू मे बँधी लाल चूडी उसन मिन्नी की हथेली पर जा रखी। एक आख झपकन मे मिन्नी ने अपनी कलाइयो पर चूडियाँ को गिना—ग्यारह थी। और वो ठिठककर रह गई। उसकी आखो के सामन अँधेरा छा गया।

और फिर मुहल्लेवालियाँ आँखो ही आखो म एक-दूसरी को कहन लगी। उन्होने स्वय मिन्नी को पिछले दिन चूडिया चढाते हुए देखा था, दस के ऊपर दो चूडिया। लाल रग चुनकर उसने निकलवाया था।

लोगो से आगन भर गया था। और फिर मालिन का समधी आया भीड को चीरता हुआ। उसके पीछे मिन्नी की होने वाली सास थी। और उन्होने सारे वो थाल, सारे वो कपडे, सारे वो नोट, सब वो मुदरियाँ मालिन के सामने ला पटकी। हक्के-बक्के लोग एक-दूसर के मुह की ओर देख रहे थे। औरतें बार-बार काना को हाथ लगाती। जवान-जहान लडकियाँ मुह म उँगलियाँ लिये काट रही थी।

और फिर धडाम स पडोस के कुएँ मे किसी के गिरन की आवाज आई। सबकी ऊपर की साँस ऊपर और तले की साँस तले रह गई। लागा न आगे-पीछे देखा, मालिन की गऊ जैसी सुशील बेटी कही भी नही थी। वो बेटी, जिसका ऊँचा बोल किसी न नही सुना था। सच्चा मोती। जो सुबह-शाम भगवान् के सामन हाथ जोड-जोड नही थकती थी, वो बेटी कही भी नहीं थी। और लोग एक साँस कुएँ की ओर दौड पडे।

मालिन तडप का तड्पा, वसी की वैसी पडी थी। उसका आँगन भाँय भाँय कर रहा था। अडोसी-पडोसी अल्ले मुहल्लेवाले सारे कुएँ की ओर दौड गए थे—किसी तरह लडकी बच सके।

भूसे का गट्ठर

—कुलवंत सिंह विर्क

बहादुर सिंह सचमुच ही बड़ा बहादुर आदमी था। उसकी बहादुरी केवल लाठी-सोट की बहादुरी नही थी, वह अपनी जात बिरादरी के नाम और आन पर मिटने वाला आदमी था। चट्ठा बिरादरी के वहाँ बहुत सारे गाँव थे। बस यह बिरादरी ही बहादुर सिंह की जी-जान थी। इस बिरादरी म किसी की बहू उसकी अपनी बहू थी। अगर इस बिरादरी के किसी आदमी की हेटी हो जाए तो इसको बहादुर सिंह अपनी हेटी समझता। किसी की इज्जत उसकी अपनी इज्जत थी। यह बिरादरी बस बहादुर सिंह का एक बडा-सा कुनबा थी जिस पर उसने मुर्गी की तरह अपने पख फैलाए हुए थे। बहादुर सिंह और उसके अपने कुछ और साथी इस बिरादरी को ठक-लपटकर इकट्ठा रखते, पुरानी बातें सुन-सुनाकर उनका आत्माभिमान बनाए रखते। नयी पीढी के लडको को वे बताते कि कैसे चट्ठो ने सदा एकजुट होकर सब विपत्तियो का सामना किया। कैसे पिछले वक्तो म उन्होने भट्टियो और खरलो को उनके गाँवो से भगाकर वे गाँव हथिया लिये और उनकी जमीनें आपस मे बाँटकर वहाँ नये गाव बसाए। ऐसी बातें सुनकर नयी पीढी के मन एक दूसरे के निकट रहते और जंजीर की कडियो के समान वे आपस मे जुडे रहते।

वैसे चट्ठो ने इन गाँवो के गिर्द कोई बाड नही बनाई थी। बाहर के लोग इन गाँवो के आर पार आते जाते—पैदल, घोडियो पर, मोटरो पर, लेकिन वे इस बिरादरी पर कोई असर न डाल पाते। किसी को झुका न सकते। सरकार लगान लेती पुलिस चोरी करनेवालो को, लडनेवालो को जेल भिजवा देती, पर यह बिरादरी फिर भी एकजुट, डब्बी के समान बन्द रहती। बिरादरी के ढाँचे पर इन बातो का कोई असर न होता। हल चलते रहते, भैंसें जोहडो मे नहाती रहती, रोटियाँ पकती रहती और कम्मी सेवा करते रहते।

चट्ठो के इन गावो के निकट एक गाँव वडैचो का भी था। वडैचो का वैस तो एक ही गाव था और चट्ठो के बहुत थे, किंतु एक एक वडैच के कई-कई मुरब्बे थे और कई वडे-बडे लोगो के बाहर यू० पी० म गाव के गाव अपने थे। बेचारे चट्ठो

की भूमि तो बस गुजारे-भर की थी। इस जमीन से रोटी निकालने के लिए हर-एक को अपने हाथा से खेती करनी पडती थी। पर उन्होंने कभी वडँचा की फू फा का रौब नही माना था और न कभी उनसे डर थे।

कहते हैं मोटरो के आने से पहले वडँचा का सबसे बडा सरदार, महताब सिंह अपने हाथी पर चढकर बहादुर सिंह की हवेली के पास से जा रहा था। बहादुर-सिंह अपने बेट की उँगली पकड बाहर खडा था। जब सरदार पास आया तो अपन बेटे की ओर इशारा करके बहादुर सिंह न कहा— 'सरदार महताब सिंह! मेरे इस बटे को अपने गाँव तक हाथी पर बिठाकर ले जा, कहता है घर जाना है।" सरदार बेचारा न हाँ करने योग्य, न ना करन योग्य। खिसियाना-सा होकर बोला, "भई, ऊपर बिठा दे, हम ले चलेंगे।' बहादुर सिंह की अपने बटे को गाव पहुँचान की कोई इच्छा नही थी। यह बात तो उसने केवल अपने आपको हाथी पर चढे हुए सरदार के स्तर तक ले आने के लिए कही थी। वहादुर सिंह उस समय अकेला नही बाल रहा था। उसकी आवाज म उसके सैंकडो साथिया की, चटठा के अनेक गाँवो की शक्ति बोल रही थी।

एक बार डिस्टिक्ट बोड के चुनाव हो रहे थे। वडँचा का एक सरदार भी मम्बरी के लिए खडा हो गया और मोटर पर चढकर वोट मागने बहादुर सिंह के गाव आ गया। बहादुर सिंह उस भाई भी वोट नही दिलाना चाहता था, क्योंकि मुकाबले पर चट्ठो मे से भी एक आदमी खडा हुआ था। उम एक मखौल सूझा। हुक्का हाथ म लेकर जाते हुए गाव के एक वद्ध बूढे की ओर उँगली म इशारा करके बोला, "सरदारजी! हम तो आपके पडौसी है, आपके बाहर नही जा सकने, पर यह बाबा हमारे गाव का चौधरी है, जिधर वह कहता है, उधर ही सारा गाव वोट डाल देता है। आप जरा उसे मना लें।'

सरदार बेचारा भागकर उस बूढे के पीछे गया। वह उसका आदर-सत्कार करन के लिए उसके पास को होता जाता था और बूढा बेचारा परे-परे हाता जाता था कि कहीं सरदार छू ही न जाएँ। वहादुर सिंह और वहा बठे हुए और लोगो की हँसी छूट गई और सरदार बचारा शर्मिंदा होकर अपने गाँव लौट गया। बाद मे वह सरदार कहता फिरता था, "भई, चटठा क गिद तो एक चार-दीवारी खिची हुई है, इसमे से गुजरना बहुत कठिन है।'

एक दिन चट्ठो की चारदीवारी मे दरार पडन की खबर आई। एक फौजी चटठे ने अपनी पहली पत्नी को छोडकर एक और ब्याह कर लिया था और उसकी पहली पत्नी अपनी छोटी-सी लडकी को साथ लेकर अपन पीहर म रहने लगी थी। पीहरवाला का हाथ तग देखकर उस औरत ने शहर म जाकर किसी के घर नौकरी कर ली। वह आदमी किसी दफ्तर मे नौकर था। धीरे-धीरे बात निकल गई कि चटठो की बहू शहर म किसी के घर नौकरी करती है। बहादुर सिंह न

जब यह सुना तो उसे बड़ा दु ख हुआ। अगर उनकी बहू किसी के घर मे नौकरी करती फिरे तो उनकी क्या इज्जत रह गई ? क्या हुआ अगर वह उसकी अपनी बहू नहीं थी, उनके गाव की भी नही थी, बल्कि किसी दूसरे गाव की थी, फिर भी तो वह चट्ठा की बहू थी और इसलिए बहादुर सिह की अपनी बहू थी।

बहादुर सिंह घर का कोई इतना रईस नही था, फिर भी वह यह नही चाहता था कि चटठा की कोई बहू शहर म नौकरी करती फिरे। पर इसम उस बेचारी का क्या दोष था ? अगर उसके पेट को रोटी न मिले तो उसे नौकरी तो करनी ही हुई। इस समस्या को निपटाने का एक ही उपाय था कि बहादुर सिंह उसे अपन घर ले आए। उसे घर ले आने की सलाह बहादुर सिह न अपन बेटे मे भी की। चटठा की बहू का किसी क घर म नौकरी करना लडके के स्वाभिमान को तो चोट पहुँचाता था, पर उसे यह पसन्द नही था कि बहादुर सिह उस औरत का सारी उम्र का खर्च अपने सिर ले ले।

"जैसे भी किसी के दिन कट रहे हो, उन्हे तो काटने ही होग, पर बापू, आपका उसम क्या ? आप कोई सारी दुनिया का घर बैठे रोटियां द सकते हैं ?" उसके बेटे ने दलील दी। किंतु बहादुर सिंह के लिए यह कोई लम्बी बहस का सवाल नही था बल्कि एक औरत को अपन घर रोटी देकर सारी बिरादरी की इज्जत बचाने का सवाल था। बहादुर सिंह के मन म यह निश्चित था कि जब तक वह औरत शहर मे नौकरी करती थी, तब तक वह खुद आराम मे रोटी नही खा सकता था। अत मे वह उस औरत को समझा-बुझाकर अपने घर ले आया और इस प्रकार चटठा के गिर्द बनी चारदीवारी म जो मोघला हो गया था, उसे ब द कर दिया। अब बहादुर सिंह घोडी पर चढकर गाव गाव जाता और अपने इस काम के बारे मे लोगो की प्रतिक्रिया की टोह लेता। उसके काम की चारो ओर धूम थी।

इस बात को कई साल बीत गए। बहादुर सिंह के बूढे हो रहे शरीर न कई जाडे और देखे और चुनाव एक बार फिर आ गए। एक ओर स एक चटठा खडा हुआ था और उसके मुकाबले म शहर का एक वकील था। बहादुर सिंह के लिए वोट डालने का सवाल बिलकुल साफ था। सारे चटठा का चाहिए था कि वह चटठे उम्मीदवार को अपने वोट दें और रुपये पैसे से भी उसकी सहायता करें। पर उस वकील न एक और जाल बिछाया हुआ था। उसने चटठा के गावो म यह बात फैला दी कि अगर सारे चटठे उसके पक्ष मे वोट डालेंगे तो वह दस हजार रुपया लगाकर उनके एक बडे गाँव मे एक हाई स्कूल खोल देगा। सारे पेंशन पाने वाले फौजी इसलिए उस वकील को वोट देने के पक्ष मे थे। अगर स्कूल बन गया,' वे कहते थे 'तो लडके पढेंगे और नौकरियाँ करेंगे। पहले ही जमीनें तग होती जा रही है। मेम्बरो का क्या फायदा ? चट्ठा हो गया तो क्या और वकील हो गया तो क्या ?

बहुत लोग फौजिया के पीछे हो लिये और यह फैसला हुआ कि सारी वोटें वकील को ही दी जाएँ और चटठा उम्मीदवार बैठ जाए।

जिस दिन यह फैसला हुआ उस दिन बहादुर सिंह बहुत दुःखी था। उसका जी करता था कि वह अपनी सारी जमीन बेचकर रुपया इकटठा करे और फिर लोगो से कहे, 'जाओ, मैं तुम्हे स्कूल बनवा देता हूँ, तुम वोटें अपने चटठे भाई को ही दो। मजबूत बनो, क्या ख्वामख्वाह इधर-उधर के लोगो के बहकावे मे आते हो?' पर शायद उसकी जमीन इतने रुपया की थी ही नही, और फिर जमीन बेचना कौन-सा आसान काम था! उसे बहुत अफसोस था कि आसपास से आर्थिक बाढ आकर उनके इलाके को चीर रही थी और उनके अपने घरो म बाहर के लोग चौधरी बनने जा रहे थे।

बहादुर सिंह के गाव का एक जाट लडका जमीन से गुजारा न होते देख तागा चलाने लगा था। बहादुर सिंह को यह काम कुछ घटिया-सा लगता था। तागेवाला सब किसी का नौकर था। जिसकी जेब म चार पैसे हो उसे ही 'जी, जी' और उसका वह दबल। पर इस काम मे एक और बात जो बहादुर सिंह को ज्यादा चुभती थी, वह थी कि और तागवालो मे कोई महरा था कोई नाई। उस चटठे लडके की इन्ही से दोस्ती थी और इनके साथ ही उठना-बठना। किसी देखनेवाले के लिए तो यह पहचानना भी कठिन था कि वह चटठा का लडका था या धीमरो का। फिर बहादुर सिंह ने सुना कि वह लडका एक दिन एक धीमर तांगेवाले को अपने साथ घर ले आया। दोनो न साथ बैठकर शराब पी और फिर चट्ठे लडके की पत्नी न उन दोनो को खाना खिलाया। यह सुनकर बहादुर सिंह के तन-बदन मे आग लग गइ। कोई धीमर किसी जाट चटठे के घर बैठकर शराब पिये और फिर उस चटठे की घरवाली उस धीमर का खाना खिलाए, यह बात बहादुर सिंह को सहन होने वाली नही थी। इन दिनो जब वह तागवाला लडका बहादुर सिंह को मिला तो उसन उससे बात चलाई।

"बेटा! शरीफ लाग तो धीमरो का घर लाकर शराब नही पिलाते न?"

"चाचा! धीमर हो या कोई सरदार हो, तागेवाले सब तागेवाले ही होते ह।"

"बेटा! तागेवाला तो तू हुआ अड्डे पर। गाँव म तो तू हमारा बेटा है। हमारी बहू स तो धीमरो को खाना न खिलवाया कर! धीमरो को हमारे बतन माँजने ह या हमारे साथ बराबरी म बैठकर हमारी बहुओ के हाथो का बना खाना है?'

"सिर्फ अड्डे पर तागवाला होन स नही चलता, चाचा! रास्ते मे अगर मेरा ताँगा खराब हो जाए या मेरा साज टूट जाए या मेरे घोडे को कुछ हो जाए, तो कोइ ताँगवाला ही आकर मेरी बाँह पकडेगा न! अगर कोई सवारी मुझसे ऊँच नीच करे तो मैं तागेवालो के सिर पर ही उसका जवाब दूगा न! अगर अड्डे का

ठेकेदार फीसें बढा दे तो हम तांगवालो को एकमात्र होकर ही लडना-मरना है न। हमारा तो बस अब उनमे ही भाईचारा बिरादरी है।"

"फिर भी, बेटा। अपनी जात का रोब तो रखना होता है न।"

"नही, चाचा। हमारा रोब तो आपस म मिलकर बैठने मे ही है, एक-दूसर मे बडा बनने मे नही। आप तो सबको रोटी कमाने मे मना करते फिरते हैं। आप कहते हैं बस अपनी अकड मे घर बठे रहो, चाहे भूखे मर जाओ। उस दिन आप कह रहे थे, 'निशाना' तहसीलदार का अदली क्या बन गया है? सुसरा खतरके तहसीलदार के बरतन माँजता फिरता है।"

बहादुर सिंह चुप हो गया। चटठो के किले म बहुत बडा सुराख हो गया था और जिसने यह सुराख किया था, वह इसे अपनी रोटी कमाने के लिए, साँस लेने के लिए, जीवित रहने के लिए आवश्यक समझता था।

कुछ वर्ष और बीत गए। बहादुर सिंह अमृतसर गया। शहर के निकट नाशपाती का एक बाग था। बाग वाले न इसम पाँच छह लडके रखे हुए थे। चार-पाच लडके चूढे थे और एक सिख। बहादुर सिंह उनसे नाशपाती खरीदने के लिए बैठ गया। सिख लडका अकेला होने के कारण उन चूढो के बच्चो से परेशान था। वे सब उसका मजाक उडाते किन्तु वह अकेला होने के कारण उनका कुछ नही कर सकता था। उसने कभी चूढो के साथ बराबरी स खडे होना नही सीखा था, इस लिए वह उनमे से किसी को अपने साथ भी नही मिला सकता था। उस समय भी उनकी आपस मे कुछ गर्मा-गर्मी चल रही थी। एक लडका उससे कह रहा था—

"अपनी आटे की परात दूसरे छप्पर के नीचे कर ले, यार। नहीं तो फिर कहेगा, छू गया।"

"उस छप्पर मे, बेवकूफ। चूहे है, तू अपनी परात मेरी परात से जरा परे हटाकर रखना।"

'परे तो धूप है, धूप मे हम अपना आटा सुखा लें?'

और फिर सबसे बडे रखवाले ने उससे कहा, 'तू जवान। सारे दिन गूँधने पकाने मे रहता है, बाग का फेरा कब लगाता है? आज आएँगे शाहजी, उनसे यह बात भी करते हैं।" चूढे लडको मे से तो कोई एक ही सबकी रोटी पका देता था और बाकी सब मजे से फेरा लगाते रहते थे, पर सिख लडके को हर बार अपने अकेले के वास्ते अलग खाना पकाना पडता था। उसकी बातचीत बहादुर सिंह का कुछ अपने-जसी लगी तो वह उससे बात करने लगा—

"छोकरे। तुम कौन,जात हो?"

'चटठा।"

बहादुर सिंह का अनुमान ठीक निकला।

"किस गाव के हो ?"

"झमक्या।"

"तुम्हारी ज़मीन मकान कहा गया ?"

"ज़मीन गिरवी पडी है।"

"तुम्हारे बाप अब क्या करते हु ?"

"वह गुजर चुके हैं।'

इस लडके का एमे बेतरह फँसा हुआ देखकर बहादुर सिंह का दिल बिंध गया। अगर वह इस लडके को वहा से निकालकर अपने घर ले जाए तो उसकी जिन्दगी आसान हो सकती है। बहुत बरस पहले वह चटठा की एक बहू को इस तरह गलत जगह मे रहते देखकर अपने घर ले गया था। पर अब तो दिन ही कुछ और तरह के आ गए हैं। हर ओर लोग उसके हाथो से निकलकर बाहर जा रहे थे। कही चटठे चट्ठो के विरुद्ध वोट डाल रहे थे, कही कोई चटठा तागा चलाता था और उसकी पत्नी धीमरो को खाना पकाकर खिलाती थी, कही कोइ चटठा लडका खत्री तहसीलदार के बतन माजता था। हर एक का अलग-अलग दिशा की ओर मुँह था। बिरादरी की कोख से निकलकर लोग अनजानी जगहा मे साझेदारी जोड रहे थे और इस रखवाले लडके की तरह जो नही जोडते थे, इन अनजान जगहा मे रिलत-मिलते सही थे, पर परेशान रहते थे। नही, वह लडके को घर नही ले जाएगा। एक दो लडको को घर ले जाने से अब उसकी बिरादरी की एकता और इज्जत कायम नही रह सकती थी।

बहादुर सिंह को ऐसा लगा जैसे बहते दरिया मे उसका भूसे का गटठर खुल गया हो। एक एक तिनका अपने-आप दरिया के प्रवाह मे बहता जा रहा था। एकाध तिनके को पकडकर अब क्या बन सकता था ?

विवशता और विवशता

—केवल सूद

उस दिन स्कूटर पर बैठते हुए उन्होंने पीछे घूमकर मेरी ओर देखा था और कुछ कहा था। उनकी मुख मुद्रा कठोर हो आई थी। शब्द भी अधिक मीठे नहीं थे। यह देख तुम फुटपाथ पर खड़े-खड़े सहम-से उठे थे। तुम्हारे चेहरे पर चिन्ता की एक गहरी पर अदृश्य छाया घिर आई थी। शायद तुम मेरे लिए चिंतित हो उठे थे। और मैं मन-ही मन हँस पड़ी थी। तुम्हारा चेहरा किसी डरे-सहमे निरीह बालक-सा लग रहा था और मेरा मन हुआ था उतरकर तुम्हें किसी मीठी बात से सहला दूं।

तुम्हारे मन और चेहरे में इतना सीधा सम्बन्ध है कि ऐसा कम ही लोगों में देखने को मिलता है। तुम्हारा चेहरा कभी नामल नहीं होता। अक्सर तुम उदास होते हो, कहीं खोए हुए। तुम्हारा यह रूप देख लगता है जैसे तुम मातम कर रहे हो—उसका, जो तुम्हारे भीतर घुट रहा है, मर रहा है। और तुम्हारा दूसरा रूप, अन्यथा न हो तो कहूँ, जब तुम मेरे साथ होते हो, किसी शरारती बच्चे का-सा होता है जो मचलने, रूठने के लिए बहाने ढूंढता रहता है। तुम्हारा एक रूप देखकर मन में दया और सहानुभूति की मिली-जुली भावनाएँ जागती हैं और दूसरा रूप देख बरबस प्यार आने लगता है, थोड़ा थोड़ा गुस्सा भी।

पहले-पहल जब तुम हमारे इधर आए तो मैंने तुम्हें बगल वाली कुर्सी पर बैठने को कहा था। मैं लम्बी छुट्टी के बाद दफ्तर आई थी और तुमने मुझे चौंका दिया था। तुम खड़े खड़े सकुचाते रहे थे। पर मेरे आग्रह को तुम टाल भी नहीं सकते थे। तुम्हारे बैठते ही मैंने ढकी चोर नजरों से तुम सारे के-सारे को पी लेने का प्रयास किया था। एक विचित्र सी सिहरन सारे बदन में दौड़ गई थी और साथ ही भीतर कहीं भय की एक रेखा खिंच गई थी। तुम्हारे चले जाने के काफी देर बाद तक एक महक मेरे आस पास डोलती रही थी। और कुछ ही देर पश्चात उसके पीछे लग विवश सी तुम्हारे उधर पहुँच गई थी।

“आप पहले कहाँ थीं, मेरा मतलब किस सेक्शन में थीं?” मुझे अब भी याद है तुम अस्थिर से हो उठे थे। “पर शायद आप नई आई हैं?” मैं हँस दी थी। क्या सच ही मैं तुम्हें नई लगी थी? मुझे तो तुम्हें देख ऐसा

नही लगा था। मैं तो तुम्हे बहुत दिनो से जानती थी। हाँ, तुम अप्रत्याशित ही सामने आ खडे हुए थे इसलिए चौकी अवश्य थी।

फिर बहुत दिनो तक हमारा परिचय 'हैला-हैलो' तथा मुस्काना के घेरा म ही घूमता रहा था।

पर उस दिन जब कॉफी हाउस से निकलत ही तुम्हारा पत्रकार मित्र अलग हो गया था और हम प्लाजा बस स्टैंड पर आ खडे हुए थे, तुमने कहा था, 'आप ही की तरह मेरे एक मित्र की भी ठोडी के नीचे एक गढा था। जब वह हँसता तो यह और भी गहरा हो जाता। तब मैं उसमे कहता—'जरा ठहरो, यार' और साथ ही अपनी यह उँगली उसमे रख यू-यू घुमा देता।' तुम घबराए स लग रहे थे। शायद इसलिए कि आस-पास खडी सवारियाँ हम घूर रही थी। बात पूरी होने तक तो तुम्हारे माथे पर पसीने की बूँदें चमकने लगी थी। और मै तुम्हारी ऐसी दशा देख मुस्कराती रही थी। तुमसे विदा होन के पश्चात मैंने इस सारी घटना को फिर से सोचा और महसूस किया कि तुम्हे अपन मित्र के इण्टरव्यू का बहाना न मिला होता तो तुमस यह सब न हो पाता। साथ ही एसा भी लगा कि शायद यह तुम्हारी ही गढी हुई स्कीम थी। और काफी हाउस से निकलते ही तुम्हार उस तथाकथित पत्रकार मित्र का एकदम अलग होना भी उसी कायक्रम म शामिल था। आखिर तुम भी तो अच्छा, सच सच बताता, कितनी बार रिहसल की थी उस डायलॉग की?

वरना तुम तो लडकियो स गए गुजरे हो। बात तुम्हारे गले स शर्मा-शमाने निकलेगी। हाय! कही मोच न आ जाए गोरी के पाव में, कुछ इस अदाज म।

उसके बाद भी मुझे याद है कि कैसे तुम दो मिनट भी बस स्टण्ड पर खडे नही रह सकते थ। फिर उसी दिन शर्मा क बार बार कहने पर भी तुम मेरे साथ बस मे सवार नही हो सके थे। वाह रे तुम्हारे नखरे! उस दिन मुझे तुम पर इतना गुस्सा आया था, इतना गुस्सा आया था कि कि बस से उतरकर तुम्हे एक जोर का धक्का दे जाऊँ।

दूसरे दिन न जाने कैसे तुम बस म चढ आए थ। शायद सारी रात सोच-सोच कर तुमने ऐसा मन बनाया होगा। मैंने पिछले दिन की बात छेडी तो जनाब फरमाने लगे—पोस्ट आफिस जाना था, कुछ आवश्यक पत्र लिखने थे। 'पर क्या पोस्ट आफिस म ही लिखे जा सकते है?' मैने कहा था।

नही नही, वह आप बडी वह है!' और तुमने पहली बार मुझे छूते हुए हल्के-से धकेल दिया था। क्या बताऊँ कैसा लगा था तब! कुछ कोयले सी काली और चादी-सी उजली रेखाएँ एक-साथ मन म खिंच गई थी। बस के साथ-साथ मन भी पछी सा पख फडफडाता हुआ उड रहा था। उस दिन सब भला-भला लगता रहा था।

विवशता और विवशता

—केवल सूद

उस दिन स्कूटर पर बठते हुए उन्होने पीछे घूमकर मेरी ओर देखा था और कुछ कहा था। उनकी मुख मुद्रा कठोर हो आई थी। शब्द भी अधिक मीठे नही थे। यह देख तुम फुटपाथ पर खडे खडे सहम म उठे थे। तुम्हारे चेहरे पर चिंता की एक गहरी पर अदश्य छाया घिर आई थी। शायद तुम मेरे लिए चिंतित हो उठे थे। और मैं मन ही मन हँस पडी थी। तुम्हारा चेहरा किसी डर-सहम निरीह बालक सा लग रहा था और मेरा मन हुआ था उतरकर तुम्हे किसी मीठी बात स सहला दू।

तुम्हारे मन और चेहरे म इतना सीधा सम्बन्ध है कि एसा कम ही लोगो म देखने को मिलता है। तुम्हारा चेहरा कभी नामल नही होता। अक्सर तुम उदास होते हो कही खोए हुए। तुम्हारा यह रूप देख लगता है जस तुम मातम कर रहे हो—उसका जो तुम्हारे भीतर घुट रहा है, मर रहा है। और तुम्हारा दूसरा रूप, अन्यथा न हो तो कहूँ जब तुम मेरे साथ होते हो, किसी शरारती बच्चे का-सा होता है जो मचलने, रूठने के लिए बहाने ढूढता रहता है। तुम्हारा एक रूप देखकर मन मे दया और सहानुभूति की मिली जुली भावनाएँ जागती है और दूसरा रूप देख बरबस प्यार आने लगता है, थोडा थोडा गुस्सा भी।

पहले-पहल जब तुम हमारे इधर आए तो मैंने तुम्हे बगल वाली कुर्सी पर बठने को कहा था। मैं लम्बी छुट्टी के बाद दफ्तर आइ थी और तुमने मुझे चौंका दिया था। तुम खडे खडे सकुचाते रहे थे। पर मेरे आग्रह को तुम टाल भी नही सकते थे। तुम्हारे बठते ही मैंने टढी चोर नजरो स तुम सारे के सारे को पी लेने का प्रयास किया था। एक विचित्र सी सिहरन सारे बदन म दौड गई थी और साथ ही भीतर कही भय की एक रेखा खिंच गई थी। तुम्हारे चले जाने के काफी दर बाद तक एक महक मेरे आस पास डोलती रही थी। और कुछ ही दर पश्चात उसके पीछे लग विवश सी तुम्हारे उधर पहुँच गइ थी।

आप पहले कहाँ थी मेरा मतलब किस सेक्शन म थी?' मुझे अब भी याद है तुम अस्थिर स हो उठे थे। पर शायद आप नई आई है?"

मैं हँस दी थी। क्या सच ही मैं तुम्हे नई लगी थी? मुझे तो तुम्हे देख एसा

नही लगा था। मैं तो तुम्हे बहुत दिनो से जानती थी। हा, तुम अप्रत्याशित ही सामने आ खडे हुए थे इसलिए चौंकी अवश्य थी।

फिर बहुत दिनो तक हमारा परिचय 'हलो-हैलो' तथा मुस्काना के घेरो मे ही घूमता रहा था।

पर उस दिन जब काफी हाउस से निकलते ही तुम्हारा पत्रकार मित्र अलग हो गया था और हम प्लाजा बस-स्टण्ड पर आ खडे हुए थे, तुमने कहा था, 'आप ही की तरह मेरे एक मित्र की भी ठोडी के नीचे एक गढा था। जब वह हँसता तो यह और भी गहरा हो जाता। तब मैं उससे कहता—'जरा ठहरो, यार!' और साथ ही अपनी यह उँगली उसमे रख यू-यू घुमा देता।' तुम घबराए से लग रहे थे। शायद इसलिए कि आस पास खडी सवारियां हमे घूर रही थी। बात पूरी होने तक तो तुम्हारे माथे पर पसीने की बूदें चमकने लगी थी। और मैं तुम्हारी ऐसी दशा देख मुस्कराती रही थी। तुमसे विदा होने के पश्चात् मैंने इस सारी घटना को फिर से सोचा और महसूस किया कि तुम्हे अपने मित्र के इण्टरव्यू का बहाना न मिला होता तो तुमसे यह सब न हो पाता। साथ ही ऐसा भी लगा कि शायद यह तुम्हारी ही गढी हुई स्कीम थी। और कॉफी हाउस से निकलते ही तुम्हारे उस तथाकथित पत्रकार मित्र का एकदम अलग होना भी उसी कार्यक्रम मे शामिल था। आखिर तुम भी तो अच्छा, सच-सच बताना, कितनी बार रिहर्सल की थी उस डायलॉग की?

वरना तुम तो लडकियो से गए गुजरे हो। बात तुम्हारे गले से शर्माते-शर्माते निकलेगी। हाय! कही मोच न आ जाए गोरी के पाव मे, कुछ इस अन्दाज मे।

उसके बाद भी मुझे याद है कि कैसे तुम दो मिनट भी बस स्टण्ड पर खडे नही रह सकते थे। फिर उसी दिन शमा के बार-बार कहने पर भी तुम मेरे साथ बस मे सवार नही हो सके थे। वाह रे तुम्हारे नखरे! उस दिन मुझे तुम पर इतना गुस्सा आया था, इतना गुस्सा आया था कि कि बस से उतरकर तुम्हे एक जोर का धक्का दे जाऊँ।

दूसरे दिन न जाने कैसे तुम बस मे चढ आए थे। शायद सारी रात सोच-साच कर तुमने ऐसा मन बनाया होगा। मैंने पिछले दिन की बात छेडी तो जनाब फरमाने लगे—पोस्ट आफिस जाना था, कुछ आवश्यक पत्र लिखने थे। 'पत्र क्या पोस्ट आफिस मे ही लिखे जा सकते हैं?' मैंने कहा था।

नही नही, वह आप बडी वह हैं!' और तुमने पहली बार मुझे छूते हुए हल्के से धकेल दिया था। क्या बताऊँ कैसा लगा था तब! कुछ कोयले-सी काली और चाँदी-सी उजली रेखाएँ एक-साथ मन मे खिच गई थी। बस के साथ-साथ मन भी पछी सा पख फडफडाता हुआ उड रहा था। उस दिन सब भला-भला लगता रहा था।

पर जहाँ यह सब मीठा-मीठा याद है, वहाँ बाद का कुनन का-सा वह कड़वा-पन-कसैलापन भी जबान पर जमा बैठा है। बल्कि कहना चाहिए कि वही एक बकबकापन ही अब तो शेष है। कुछ भी पुराना याद आता है तो मन होता है थूकती रहूँ बस थूकती रहूँ। जीभ को कितनी बार टंग क्लीनर से रगड़-रगड़कर साफ करती हूँ पर कुछ असर नहीं होता।

अपने विवाहित जीवन में आगे कितने ही प्रश्न चिह्न लगे मुझे प्रतीत होते हैं। शायद तुमने भी कुछ की कल्पना की हो, पर किसी भी बात का मेरे पास ठीक उत्तर नहीं है। वे स्वस्थ हैं, देखने में भी अधिक बुरे नहीं। फिर भी कहीं कुछ कमी है। शायद उनमें वह सब नहीं जो कॉलिज-जीवन में मेरी आँखों में प्राय: तैर आया करता था। शरीर भीग जाता है, पर मन नहीं भीगता। इससे अधिक क्या कहूँ! हाँ, उस पर विडम्बना यह कि मेरे मन की स्थिति अब फसककर थोड़ी उन तक भी पहुँच गई है।

कहीं पढ़ा था माँ बनने के बाद औरत की बहुत-सी शिकायतें लँगड़ी हो जाती हैं। देखो!

अभी तो चिप्स के गीले फर्श पर खड़ी हूँ और ऊँची एड़ी के सैण्डिलों में कीलें ठुकी हुई हैं। हर कदम उठाने से पहले लगता है कि अब फिसली, अब गिरी।

टेबल पर लगे कागजों के अम्बार में से कोई भी कागज उठाती हूँ तो उस पर तुम होते हो। तुम्हारी टूटी टूटी सी लिखावट के शब्द भी हू ब हू वैसे ही हैं जैसे तुम हो। जिधर भी हाथ डालती हूँ तुम बैठे हुए मिलते हो। कभी यह सब भला लगता था और प्राय: मन होता था कि एक ही कागज को लिये बैठी रहूँ और देखती रहूँ। अब तुमसे क्या छिपाऊँ, कई बार ऐसा भी खयाल आया कि सब कागजों को एक-साथ अगल-बगल लिटा लूँ तो तुम पूरे बन जाओगे और फिर जो चाहे पर जानती हूँ कि विवाहित हूँ और दफ्तर में नौकरी करने आती हूँ।

पर अब अक्सर मन होता है कि इन कागजों के ढेर में आग लगा दूँ। या चिथड़े चिथड़े कर हवा में उड़ा दें। पर फिर वही दोहरी विवशता! न वह सम्भव था, न यह सम्भव है।

जो तुम में पाया था उसकी तलाश शायद मुझे वर्षों से थी। इससे मेरे विवाहित होने या न होने तथा किसी अन्य से भी मित्रता रखने या न रखने का कोई सम्बन्ध नहीं। बस यों पतिव्रत धर्म का मुखौटा कितना घिस गया है इस सदी में! और अपने सपने को अपनी ही आँखों के सामने लाश होते कौन देखना चाहता!

शायद तुम्हें याद हो तुम्हारे एक प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा था—विवाहित न होती तो और बात थी।

क्या-क्या नहीं कहना-सुनना पड़ा तुम्हारे कारण! दफ्तर में भी और घर पर भी। हँसती घूरती आँखें चुभते हुए फिकरे, घुमा फिरा के कही गई बातों में छुप

इशारे। कविता मुझे अच्छी नही लगती, फिर भी 'अवस हुए बदनाम सब तेरे लिये।'

लेकिन तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई उस दिन मेरी अवहेलना कर निकल जाने की ? क्या औरत होने के नाते किसी से भी सहज होने का मेरा अधिकार छिन जाता है ? तुम चाहते हो अपना सब पुराना काटकर फेंक दू। सब परिचय भुला दू। सतीश के साथ जब भी तुमने मुझे देखा है, तुम जल गए हो। भले ही तुमने कभी कुछ कहा नही, पर मैं बहुत पहले ही यह जान गई थी। क्या रुआब से सिगरेट फूकते चले जा रहे थे तुम ! तुम्हारे मुह से उस दिन का निकलता हुआ सिगरेट का धुआं आज तक मेरे सीने पर सांप-सा बना लोटता है। जैसे औरत सौत नही सह सकती वैसे ही अपनी चाहत का तिरस्कार भी नही सह सकती। समझ नही आता इस सबसे कैसे छुटकारा पाऊँ ?

वह तो न जाने कैसे मैं उस दिन बस मे अधिक कुछ न कर सकी, नही तो वह ऐसा अवसर था तुमसे बदला लेने का कि तुम कही मुह दिखाने लायक न रहते। मैं तो कई दिन से चाह रही थी कि तुम कोई ऐसी हरकत करो ताकि हो सकता है, तुम्हारे कहने के अनुसार, तुम्हारा घुटना बस के हिचकोले से ही मुझसे छू गया हो, पर उससे लाभ उठाया ही जा सकता था। और शायद ऐसा कुछ हो भी जाता अगर मेरी आँखें तुम्हारे चेहरे की ओर न उठ गई होती। मुझे शायद लगा कि वहां तुम नही, बल्कि तुम्हारा मुर्दा मेरे सामने खड़ा हो। और तभी मेरे भीतर कुछ छनाक्-से जैसे टूट गया हो।

फर्ज करो

—गुरदयाल सिंह

कपूर साहब का बड़ा लड़का कई दिन रहकर वापस चला गया, परन्तु वे नहीं मान। यही कहते रहे, "हम यहाँ ठीक हैं। सभी हमारे अपन हैं।'

लड़का भी बजिद था, अगले महीने फिर आने के लिए कहकर लौट गया।

उस शाम जब जग्गी डाक्टर के क्लीनिक पर बेंट के लौटन की बात चली तो तारों की टाँगों वाली, टीन की साठ साल पुरानी कुर्सी पर बैठा जग्गी डाक्टर बोला, "कपूर साहब ! फर्ज करो आपको यहाँ कुछ ऊँच-नीच हो जाए"

"ऊँच-नीच हो मेरे दुश्मनों को या हो तुम्ह, जो कमबख्त पानी के टीके लगा-लगाकर गरीबों की जिंदगी स खेलता है। मैं बताता हूँ तुम्ह '

"ब्रेक-ब्रेक, कपूर साहब, ब्रेक !" मास्टर गोयल ने उनके मुँह की तरफ हाथ बढ़ाकर उन्ह चुप करा दिया।

कपूर साहब हँस पड़े, पर ब्रेक उन्होंने नहीं लगाई। जरा स्पीड हल्की करते हुए बोले "यह ठीक है मेरी उम्र पैंसठ की हो चुकी है, पर मैं अभी मरना नहीं चाहता जनाब ! जिन्दगी तो अब शुरू हुई है। अब तक तो कोई होश ही नहीं था कि भई जीना मरना होता क्या है। देखो, सात साल हो गए रिटायर हुए आज भी रात को आवाज़ देन लग जाता हूँ सपन म— ओ रामरक्खे, तुझे होश नहीं रत्ती भर, गाड़ी आउटर पर खड़ी है और तू अभी चाबियाँ ढूँढ रहा है ? भप्पे की मम्मी कई बार आवाज़ सुनकर जाग पड़ती है और बड़बड़ाने लगती है 'य मुई गाड़ियाँ, पावर, टोकन, फोन, सिगनल, फाटक अभी भी पीछा नहीं छोड़ते !'— हम तो जनाब कहीं रुककर साँस भी नहीं ले सके कुछ पल। मेल एक्सप्रेस की तरह बस चल सो चल ! अब थोड़ा दम लिया है"

"और अब लड़के साँस नहीं लेन देते।' जो कानूनगो ने फिर उन्ह टोककर ब्रेक लगान का यत्न किया।

दोस्तों म यह बात प्रसिद्ध थी कि कपूर साहब का वैक्यूम हमेशा खुला रहता है, और रुकते ही सारा प्लेटफार्म पार कर जाते है। मित्रों को कपूर साहब की रेलवे वाली शब्दावली प्रयोग करके हँसने-खेलने का शौक पड़ गया था। कुछ शब्द वे कपूर साहब को गुस्सा दिलान के लिए प्रयोग करते। ऐसे शब्दों स चिढ़कर जब यह बड़े बाऊ जी भड़क उठते, तब उनकी लाहौरी अंदाज म दी गई गालियाँ

सुनकर बडा आनन्द आता। परन्तु आज तो वे बिना ऐसे शब्दों के ही उत्तेजित हो रहे थे।

"कपूर साहब," जग्गी डाक्टर थोडा गम्भीर होते हुए बोला, "फर्ज करो, आपका हैदराबाद वाला छोटा लडका आकर जम जाए और कहे मैं तो साथ लिये बिना जाऊँगा नही, फिर आप क्या करोगे ?"

"इस छडी से तेरी खोपडी तोडूगा और साथ मे तेरी और लडके की ऐसी-तैसी करूँगा।" कपूर साहब फिर भडक उठे—"अरे मैंने सारी उमर पजाब म काट दी। अब आखिरी समय कहाँ परदेस मे भटकता फिरूँ ? हैदराबाद तो जनाब मैं मर-कर भी न जाऊँ। पजाब जैसी जगह कोई और है दुनिया के कोने म ? भप्प की मम्मी को मैं बनारस, इलाहाबाद, त्रिवेंद्रम और उधर द्वारकापुरी तक घुमा लाया हूँ। पजाब जैसा खाना, पहरावा, लोग—कही नही मिलते जनाब !"

"नही, फर्ज करो छोटा लडका "

"लडका जाए भाड म ! और तुम्ह अब मैं क्या कहूँ और भाभी हमारी को मैं वसे भी कुछ कहने योग्य नही—एक तो उसका लगता ही जेठ हूँ, दूसर वह गठिए की मरीज ह बेचारी।"

कपूर साहब खुलकर हमे तो बाकी के सभी लोगो ने भी हँसना शुरू कर दिया। बस जग्गी डॉक्टर ही ढग से न हँस सका। (एस मौका पर मास्टर गोयल यही कहता था—"निकाल दी स्टीम बडे बाऊ न डॉक्टर की !")

उस रात भप्प की मम्मी ने थोडा चिन्तित होते हुए कहा, "अब नरेश बार-बार कह रहा है, पर आपने जिद पकड रखी है। कल को अगर लडके चुप लगा गए, फिर कसे काट लोगे अकेल आखिरी दिन ? मैं तो पता नही साल हूँ कि छह महीने—मेरा क्या भरोसा ?"

"तू चुप करती है कि नही ? चली है मुझे मरने का डर दिखान ! काई गोली नही लग रही तुझे। सैंकडा बार तुमसे कहा है कि मर सामन बेकार, मनहूस बाते मत किया कर ! मेरा ब्लड प्रेशर पहले ही ठीक नही रहता और शुरू हो जाती है उल्टा सीधा बोलन।"

इस डाट के बाद वह तो चुप होकर मुह सिर लपेटकर सो गई, परन्तु कपूर साहब खुद न सो सके। जस सचमुच डर गए हो। किराए के छोटे-से चौबारे की पुरानी छत की कडियो की ओर निहारते, ध्यान बार-बार पत्नी के खर्राटों की ओर चला जाता। और जब वे बन्द हो जात, तो वे चाक उठत। दो बार तो उठ कर बठ भी गए। तीसरी बार इतनी बेचनी महसूस हुई कि दरवाजा खोलकर बाहर आ गए। वापस आए तो भप्प की मम्मी जाग पडी थी।

"आप इस तरह कहाँ घूम रहे है ?"

'वसे ही बाथरूम गया था।"

"कोई तकलीफ है तो सौंफ डालकर चाय बना दूँ?"

"नहीं　कोई खास बात नहीं। तू सो जा!"

फिर लगभग पंद्रह दिन के बाद ही सारे दोस्त यह सुनकर अवाक् रह गए कि कपूर साहब ने चण्डीगढ़ वाले लड़के को चिट्ठी लिखकर रजामंदी दे दी है।

जग्गी डाक्टर ने कहा "कपूर साहब, फर्ज करो, वहाँ जाकर　"

"मैं मर जाता हूँ' कपूर साहब ने उसकी बात पूरी होने से पहले ही काट दी।

"तू मर मरने की कितनी ही मनौती मना ले, मैंने नहीं अभी मरना। पर फर्ज करो मैं मर जाता हूँ, तुझे यही तकलीफ है न कि पचास सौ खर्च करके वहाँ अफसोस के लिए जाना पड़ेगा? पर भले आदमी, तेरे आने पर भी मैं वापस लौटूंगा तो नहीं! इसलिए तुम बिलकुल तकलीफ न करना। समझे? बिलकुल तकलीफ न करना, हाँ।"

'पर क्या पता हम आपसे पहले ही चल बसें?" जन कानूनगो बोला।

उसकी इस बात से सारा वातावरण ही जैसे बोझिल हो गया। कुछ समय तक न कोई हँसा न बोला।

दिसम्बर की छुट्टियों में लड़के ने आकर ले जाने के लिए कपूर साहब को चिट्ठी लिखी हुई थी। आते ही उसने ट्रक किराए पर लिया और अगले ही दिन सामान लदवा लिया। भप्पे की मम्मी जब निम्मो की भाभी सत्तू की माँ और मनजीती की बीबी को बारी-बारी गले लगाकर मिली तो उन सभी का मन भर गया। भप्पे की मम्मी भी रो पड़ी। परन्तु कपूर साहब के चेहरे पर जैसे कोई भी हावभाव नहीं था। लम्बा-तगड़ा शरीर और भरा चेहरा होने के कारण, या उनके स्वभाव की वजह से, उनके चेहरे पर अंतर्मन के भाव अधिक स्पष्ट नहीं उभर पाते थे। गुस्सा, खुशी, गम या प्यार प्रकट करने के लिए वे अधिकतर अपनी आवाज तथा आँखों से ही काम लेते। और अगर वे कुछ बोलें ही नहीं तो कैसे पता चले कि वे खुश हैं या नाराज अथवा उदास?

जग्गी डाक्टर के साथ सभी दोस्त उनका सामान ठीक-ठाक चढ़ाने में व्यस्त थे। सामान रखने के बाद जब त्रिपाल कस दी गई तो कपूर साहब सबके गले मिलते हुए एक ही बात दोहरा रहे थे "कोई गुस्ताखी हो गई हो तो माफ कर देना नासमझ जान के।'

जब वे भप्पे की मम्मी के साथ ट्रक में जा बैठे, तब जग्गी डॉक्टर ने पास आकर कहा 'फर्ज करो कभी इधर आने का मौका लगे तो जरूर मिलकर जाना!'

मास्टर गोपल बोला, 'यह भी कोई कहने की बात है? अगर हमारी दोस्ती

में दम हुआ तो यह पास से होकर ऐसे कैसे चले जाएँगे ?—खुद ही मिलने आ जाएँगे। आखिर हमारा भी कोई हक है।'

कपूर साहब ने गोयल की बात सुनकर जब चारा मित्रा की ओर देखा तो पहले मुस्कराए, फिर सर हिलाकर दोना हाथो मे पकडी छडी ऊँची कर माथे को लगात उन्हान आँखें बन्द कर ली। कुछ बोल न सके। फिर जब ट्रक चला तो उन्होंने भप्प की मम्मी से आँख बचाकर आँसू पोछ लिये।

कपूर साहब यहाँ परदेसी थे। जब लाहौर से आए थे तो फिरोजपुर नौकरी लगी। सारी उमर छोटे-बडे रेलवे स्टेशना के क्वाटरो म बीती और रिटायर होने के तीन चार साल पहले यहाँ—जिस स्टेशन का नाम अब गगसर जैतो है—आ गए। और न ही किसी शहर म मकान बनाया और न कभी सोचा ही। रिटायर होन पर यही रहने लग। दो लडकियाँ कॉलेज मे पढती थी। उनका विवाह करना था। दो की शादी हो चुकी थी। दो लडका का बहुत अच्छी शिक्षा दिलवाई थी। विवाहित थे। अब एक लडका चण्डीगढ यूनिवर्सिटी म पढाता था, दूसरा हैदराबाद मे इजीनियर लगा हुआ था। दोना बडे अच्छे स्वभाव के थ। बेटो की मदद से, रिटायर होन के दो वर्षों के भीतर ही दोना छोटी लडकिया की भी अच्छे घरो म शादी हो गई थी। और उसके बाद कपूर साहब और भप्प की मम्मी अकेले ही यहा रह रहे थे।

रिटायर होत ही कपूर साहब न यहाँ एक छोटी सी लोहे की फैक्टरी मे नौकरी कर ली थी। नौकरी के बारे म वे अक्सर यही कहते, "साथ म शुगल बना रहता है और कुछ पैस भी मिल जाते हैं। खर्चा क्या कम है आजकल ? और आदमी खाली क्यो बैठे जब काम हो तो ? बेकार आदमी भला किस काम का ? जिन्दगी भी बेकार हो जाती है। वसे भी जिस आदमी को सारी उमर कोल्हू मे जुत रहने की आदत पड जाए, वह आदत भी उस आराम से कहा बैठने देती है।"

इसलिए अब भी उन्होंने अपना एक 'रुटीन' बनाया हुआ था। सुबह ही पहल थैला लेकर सब्जी मडी चले जाते। वहा बलवत, खजाने, मेवे और भाई जी से हँसी-मजाक कर आते और सब्जी भी खरीद लाते। (ये सभी लोग कभी उनस अक्सर रोज ही सब्जी की बोरिया और फला के क्रेटो की बिल्टिया छुडान आते थे। तब वे सब्जी घर भी दे जाया करते, परन्तु अब तो केवल हँसी मजाक की ही साझेदारी रह गई थी। ठीक है, समय समय की बात है।) फिर दस से पाँच बजे तक व फैक्टरी म रहत और शाम को जग्गी डॉक्टर क क्लीनिक के आगे पडे खाली बच पर आ बैठते। पूरे पाँच, सवा पाच तक सारे दोस्त इकट्ठे होकर गपशप मे व्यस्त हो जाते।

डाक्टर के पास शाम को कोई मरीज नहीं आता था। उसे बहुत जरूरत भी नहीं थी। जिस डॉक्टर के पास वह तीस साल पहले कंपाउंडर था, उसके मरीजों में से कुछ उसके पास आने लगे थे। बाकी अधिकतर तो क्वालीफाइड डॉक्टरों के बताए टीके लगवाने आते या फिर पट्टी कराने वाले आ जाते। सुबह-सुबह उसके पास कुछ भीड़ रहती, परन्तु दोपहर के बाद वह खाली ही रहता। इसलिए समय काटने के लिए पुराने यार-दोस्त उसके पास आ बैठते। परन्तु पाँच के बाद उसके बेंच पर केवल 'चार यारों' में 'मेंबर' ही होते थे—मास्टर गोयल, जग्गे कानूनगो, मास्टर महावीर त्यागी और कपूर साहब। खुद वह पुरानी टीन की कुर्सी पर उनके सामने बैठ जाता। दो एक घंटे खूब हँसी मजाक चलता।

इनकी दोस्ती के बड़े कारण दो थे। पहला रिटायरमेंट और दूसरा उर्दू अखबार। जब वे सारे बैठकर फिक्र तौंसवी के 'प्याज के छिलके' उतारते या उर्दू के नए कातिबों की गलतियों पर नुक्ताचीनी करने लगते, तब ये 'उर्दूदाँ' ही बन बैठते। (सारी मंडी में अब इन जैसे चंद उर्दूदाँ ही तो रह गए थे, और यह भी कोई मामूली बात नहीं थी)।

परन्तु कभी-कभी जग्गे कानूनगो मौत का विषय इस बुरी तरह छेड़ देता कि सभी को अखरने लगता। और इस मौके पर कपूर साहब ही उसको 'ब्रेक' लगाते—

'छोड़ यार, क्या बक-बक लगा रखी है! मौत का तो एक ही दिन मुअइयन है न! और वह तेरे बापू से भी नहीं टलना। फिर यह काहे की बक-बक?'

अभी कपूर साहब को गए महीना भी नहीं हुआ था कि महफिल ही सूनी लगने लगी।

"यार, कपूर साहब तो जैसे रौनक ही साथ ले गए।" मास्टर त्यागी दूसरे तीसरे दिन यह फिकरा दोहरा देता।

'हाँ!' सारे उसकी बात की हामी भरते।

एक दिन तो वे कपूर साहब के लिए इतने भावुक हो गए कि चण्डीगढ़ जाकर मिलने की बात सोचने लगे। परन्तु बातों तक ही सीमित रह गए। जा कोई न सका। बिना काम के जाना सभी को फिजूल सी बात लगी।

"वैसे है तो यह अजीब बात!" जग्गे बोला, "फर्ज करो हममें से किसी को बीमार होकर पीजीआई चण्डीगढ़ में दाखिल होना पड़े। फिर कब फुरसत मिल जाएगी? और बीमार होना भी कोई काम है? पर सारे काम छोड़कर जाएंगे दोस्त को मिलने नहीं जा सकते। जब हम नहीं होंगे तो हमारे काम कौन करेगा?—सच्ची बड़ी वाहियात बात है।

सभी 'हाँ-हाँ' तो करते रहे लेकिन जग्गे डॉक्टर के मसत गया फिर भी

बाई नही। वैसे भी इस अवस्था मे बने किसी दोस्त को मिलने के लिए जाने की बात करना सभी को अच्छा लगता था, परन्तु उठकर चल पडना बहुत ही फजूल लगता था। ऐसे कोई जाता है आजकल ? ज़माना कैसा चल रहा है ? किसके पास समय है कि केवल मिलने मिलाने के लिए घूमता फिरे ?

फिर अचानक ही एक दिन जब मास्टर गोयल को किसी रिश्तेदार के काम से चण्डीगढ जाना पडा तो सभी लोग चाव से भर गए। ताकीद तो सभी को करनी थी, पर अगर वह न भी बताता तो भी गोयल का कपूर साहब से मिलकर ही आना था। सो वह मिल आया।

जिस दिन वह वापस आया, महफिल मे फिर से जान आ गई। वह कपूर साहब की बाते सुनाता रहा, बाकी सुनते रहे। परन्तु फिर हँसी रोककर गम्भीर होते हुए उसने कहा, "कपूर साहब वहाँ रहकर खुश नही है।"

'क्यो ?' सभी एक साथ बोले, जैसे बहुत हैरानी हुई हो (पर मन मे उन्होने गहरी तसल्ली महसूस की, सपने जैसा आभास भी हुआ कि शायद कपूर साहब फिर महफिल मे लौट आएँगे।)

"क्या क्या ," कहकर गोयल रुक गया। फिर सोचकर सर खुजलाते हुए बोला, "पहली बात तो यह है कि लडका और बहू दोनो प्रोफेसर है। दोनो पढाने चले जाते है। दो बच्चे है, वे स्कूल चले जाते है। कपूर साहब और भप्पे की मम्मी फिर अकेले के अकेले। दूसरे वे कही बाहर नही जाते। मैंने उनसे पूछा तो बोले, 'जाऊँ कहाँ ? यहा कोई जानकार ही नही। रिटायर लोग भी यहा या तो घरो मे घुसे रहते है या पार्को मे चले जाते है। मुझे पार्क मे जाने की आदत नही। सारी उमर तो गाडियो की विसल सुनते, राते जागकर काटते रहे, पार्को का शौक कहाँ से होता ?' मैंने कहा और कही न जाओ, मन्दिर गुरुद्वारे ही हो आया करो ! बोले, भप्पे की मम्मी तो मन्दिर हो आती है पर मैं नही कभी गया। अब तो ऐसा लगता है कि भगवान की लोग पूजा नही करते, उसे बेचते हैं। ऐसी धार्मिक जगहो पर क्या जाए आदमी ! मन नही मानता। जब सरकार खुद ही धर्म का बेचन पर लगी है तो लोगो ने भी भगवान का यही कुछ करना है। देखो न, कैसे सैकुलरइज्म का लबादा ओढकर फिरकापरस्ती फलाने पर लगे हुए है ! फिर लोगो का भी क्या कसूर ? लोग तो अंधे होकर इधर-उधर हाथ मारते फिरते है, और कहाँ जाएँ ?"

"ऐसी बातें करते है कपूर साहब ? कमाल है !" जग्गी डाक्टर हैरान होकर गोयल के मुह की ओर देखने लगा।

"बात क्या, वे तो अब फिलासफर ही बन गए लगते है। कहते हैं मैंने सारी उमर कोई किताब नही पढी थी। यहाँ लडके की किताबे उठाकर पढ लेता हूँ। समझ तो नही आती, पर जो समझ मे आता है और अब जब मैं उस बारे मे सोचता हूँ तब ऐसा लगता है कि यह दुनिया अब डूबने वाली है। यह भी कोई जीने की जगह

है जहां आदमी को आदमी मार रहा है, राक्षसों की तरह खा रहा है? किस बात के लिए लोग लड़ रहे हैं? मह तेरा रब्ब! तू मेरे रब्ब को हाथ लगाएगा कैसे? उसकी तरफ झांकेगा कैसे? तौबा, तौबा! मैं उनकी बातों पर ही हैरान होता जा रहा था।'

सभी के मुह खुले रह गए। गोयल भी उनकी उत्सुकता देखकर बोला, "मुझे यूँ लगा जैसे अब व साधू बन जाएँगे या फिर अगले जहान चले जाएँगे। मैंने कहा आप बच्चों से मोह रखो, उनको कुछ कहानियाँ सुना दिया करो। बोले, 'मोह क्या रखूं? उनके पास समय ही नहीं! स्कूल से आते ही होम-वर्क, फिर कामिक्स, और उसके बाद टी०वी०। हमारी 'राजे की सात बेटियां' वाली कहानियाँ उनको समझ ही नहीं आती। साथ में उनकी बोली ही कुछ और है, न पंजाबी, न हिन्दी न अंग्रेजी। हमारी तो बात ही नहीं समझते। क्या सुनें, क्या सुनाएँ!' बस उनकी इन्हीं बातों से मुझे लगा कि वे वहाँ खुश नहीं हैं।"

समय तो रुकता नहीं। गुजरता रहा फिर न कोई चण्डीगढ़ गया न आया। धीरे धीरे कपूर साहब की याद भी धूमिल पड़ गई। परन्तु कभी-कभार बात छिड़ती तो सभी उनके बारे में कुछ चिन्तित हो जाते। सोचते, उनका क्या हाल होगा अब? क्या करते होंगे? क्या सोचते होंगे?

"हो सकता है वे " एक दिन कानूनगो कहता कहता रुक गया। सभी उदास हो गए।

जग्गी डॉक्टर बोला, 'फर्ज करो वे जिंदा भी हों, पर काहे का जीना! और फर्ज करो वे चल बसे हों तो फिर भी हम क्या कर सकते हैं! कर सकते हैं कुछ?"

गोयल को गुस्सा आ गया। वह मोटी मोटी आँखें फाड़कर बोला, 'फर्ज करो तू यहां कुर्सी पर बैठा-बैठा ही चल बसे तो फिर हम तेरी क्या टांग तोड़ लेंगे? क्या पूछ पाड़ लेंगे? बता?"

सभी हँस पड़े।

परन्तु अगले ही क्षण उनके चेहरे ही बदल गए। कुछ उदास भी लगने लगे, गम्भीर भी।

और उस दिन के बाद सभी दोस्तों ने एक बड़ी तब्दीली यह महसूस की कि जग्गी डाक्टर ने सारी उमर का सम्भाला हुआ अपना तकिया कलाम 'फर्ज करो' बोलना छोड़ दिया। अगर मुह से कभी निकल भी जाता तो 'फर कहता कहता ही रुक जाता।

—अनुवाद अमरजीतसिंह

रोटी

—गुरदेव सिंह रुपाणा

पाँच वर्षों के बाद बख्तावर ने कसम तोड़कर पीनी शुरू कर दी। पाँच साल उसने शराब को हाथ नहीं लगाया। यारों ने यारी के वास्ते दिए, पर उसने मुह को ही नही लगाई। किसी विशेष मेहमान को भी नहीं लाकर दी। कुछ नाराज हुए, कुछेक ने कहा बख्तावर कजूस हो गया है।

पर अब दिन-रात वह आख नही खोलता। पीता रहता है, पिलाता रहता है। सभी हैरान थे, उसे हो क्या गया? कोई दुख नही, कोई सदमा नही। आज्ञाकारी सतान, उसका कहा मानने वाली। अच्छी फसल होती आई थी। बडे बेटे मक्खन का विवाह कर दिया। किसी प्रकार की तगी नही। चार पैसे भी जुड गए थे और मक्खन ट्रैक्टर खरीदने की सोच रहा था कि अचानक बख्तावर ने पीनी शुरू कर दी।

जिस दिन से कसम तोडी, घर म नही घुसा। खेत वाले कोठे मे डेरा जमा लिया। झीवरो का लडका दुना टहल सेवा के लिए रख लिया। पाच-चार खाऊ यार सदैव उसके पास बठे रहते। उसके पीने के ढग की प्रशसा कर-कर के उसे आसमान पर चढाए जाते। उसकी हाँ म हाँ मिलाए जाते। बडे कमरे जितना उसने मुर्गियो का खुडडा बना लिया। दुने ने मुर्गे ला छोडे। जितने रोज खाए जाते, दुने को आदेश था, उतने और लाकर छोड दे। घर वाले कहते थे बख्तावर ने घर की तबाही शुरू कर दी है।

घरवाले चिन्ता करते है—यह उसने सुना तो हाथ और भी खुला कर दिया। तरह-तरह के महँगे कपडे सिलवा लिये—कोट, पैंट, अचकनें, जो उसके बाप-दादा ने कभी देखे भी नही थे, और जो बख्तावर को पहनने भी नहीं आते थे। नये फैशन बताने वाले जुड गए। पटियाले शाही वाली पगडिया बाधना सिखाने वाले आ गए। बख्तावर को सलाह दी जाने लगी, जिनके परिणामस्वरूप बख्तावर ने काले भूरे बूट खरीद लिये, गुरगाबिया ले लीं। भात-भांत की तिल्लेदार जूतियां खरीद लाया—कसूरी खुस्से, मुक्तसरी गोल पजा वाली, फाजिल्का की कमर-कटी।

किसी ने खुशबूदार तेल का जिक्र कर दिया। फिर क्या था! जो शीशी दुकान पर दखी, खरीद ली—क्रीम, पाउडर, शैम्पू। बख्तावर पूरे नवाबी ठाठ से रहने

लगा। उसका रूमाल ठेके पर जाता तो बोतलें चली आती। कुछ पी ली जाती, कुछ लोग छिपाकर ले जाते। यही हाल उसके दूसरे सामान का था। जिन लोगों ने नहाने वाला साबुन कभी सूंघकर भी नहीं देखा था, वे तीन-तीन बार मलते। मूंछों को खुशबूदार तेल से चुपड़ते। बख्तावर के कपड़े पहनकर ले जाते।

इन खाऊ यारों ने अफवाह फैला दी कि बख्तावर को मक्खन जीवित नहीं छोड़ेगा, अपने दोस्तों के साथ सलाह करते, उन्होंने उसे अपने कानों से सुना है।

हमदर्द दोस्तों ने समझाने के यत्न किए। रिश्तेदार आए। बड़ी बहन ने याचना की। साले ने पैरों में पगड़ी रखी। पर, बख्तावर ने किसी की न मानी। हर एक को एक ही उत्तर देता रहा—"मैंने भी बहुत समझाया था, मेरे कहने पर तो कोई भी न समझा।'

"कौण न समझा?' उससे पूछा जाता।

"अपने-आप आएगा, अपने आप! जिसे समझ आएगी, अपने आप आएगा अपने-आप!" वह कहता और बात करनेवाले को और बोलने से रोकने के लिए जोर से कहता—"चो प्प!"

महीने भर के अन्दर-अन्दर ही ट्रैक्टर के लिए रखी हुई रकम वह पी गया। फिर उसने एलान कर दिया, वह अपनी पक्की नहर वाली ज़मीन बेचने के लिए तैयार है—कोई ग्राहक हो तो उसके अड्डे पर आ जाए।

सुनकर घरवालों के तो होश उड़ गए। मक्खन खाना छोड़कर बैठ गया। उसे समझ न आए कि बापू को आखिर हो क्या गया है? पहले भी पीता रहता था, पर जमीन बेच खाने की बात तक नहीं सोची थी और न ही ऐसे नवाबों वाले तौर-तरीके अपनाए थे। क्या किया जाए? जब भी वह उससे मिलने के लिए गया, दूर से देखते ही बख्तावर ने शोर मचाना शुरू कर दिया था—'आ गया! मक्खन मुझे मारने के लिए आ गया!' मक्खन बिना बात किए ही लौट आता।

और फिर अगले दिन और खबर सुनी तो सारा परिवार जैसे धरती में ही गड़ गया हो। बख्तावर ने गांव के चौकीदार रलिया की विधवा रोशनी रख ली थी। घर में जवान बेटी थी। घर में नयी नयी बहू आई हुई थी। यह क्या हो गया था उसे? मक्खन ने सोचा अब इस घर की खैर नहीं। कुछ बेचकर पी जाएगा और कुछ चमारिन के नाम करवा देगा और वे रह जाएंगे लोगों के सांझी लगने लायक। शर्म के मारे उनका घर से निकलना मुश्किल हो गया था।

'अपने आप आएगा, अपने-आप!' मक्खन ने बाप की बात याद की—'कौण आएगा? और अब चमारिन ले आया है। हो न हो झगड़ा जरूर अम्मा के साथ ही है। उसने सोचा।

मक्खन और बख्तावर दोनों खेत में इकट्ठे काम किया करते थे। भाइयों जैसे लगते थे और दोस्तों की तरह रहते थे।

काम बन्द करने से पहले बख्तावर ने चुप्पी साध ली और चुपचाप 'गवाची गाँ' (गुमशुदा गौ) की तरह फिरता रहता। एक दिन वह चादर तानकर लेट गया। सारा दिन खेत न गया, और अगले दिन पता लगा, उसने पीनी शुरू कर दी।—मक्खन न याद किया।

यह उन दिनों की बात है जब मक्खन की वहू गौने के बाद पहली बार आई हुई थी। सारा परिवार खुश था। सब एक-दूसरे से बहुत प्यार और सत्कार के साथ पेश आते। छोटे बच्चे भाभी के चाव में सारे काम हँसते-हँसते कर लेते। स्कूल जाने समय न बिचलते। एक-दूसरे से झगड़ा भी न करते। बख्तावर बहुत ध्यान के साथ चलती फिरती वहू को देखता। उन दिनों वह मक्खन की मा को नये साफ कपड़े पहनने के लिए कहता सुना गया—'तू भी कभी ढंग के लत्ते पहन लिया कर!' सुबह-सवेर वह सभी के लिए दातूनें लाता और मक्खन की माँ से भी दातून करने के लिए कहता।

उन्हीं दिनों एक और परिवर्तन घर में हुआ था। खेत से आकर बख्तावर बैठक में बैठ जाता। उसके नहाने के लिए पानी पहुँच जाता। धुले हुए कपड़े दिए जाते। नहाकर, कपड़े बदलकर वह लेटा-लेटा खाने की प्रतीक्षा करता। सभी का परोसकर मक्खन की माँ बख्तावर को खाना खिलाने जाया करती थी। वह खाता रहता और वह पास बैठी छोटी छोटी बातें करती रहती। गाव के समाचार बताती रहती। घर गृहस्थी की योजनाएँ भी इसी समय बनती।

एक शाम मक्खन की मा खाना खिलाने न गई। उसने मक्खन से छोटे 'बीरू' से कहा—"जा बीरू, अपने बापू की रोटी दे आ।"

दूध गर्म हुआ तो लुटिया भरकर मक्खन की मा ने बीरू के हाथों भिजवा दिया।

"तेरी मा आज राजी नहीं?" बख्तावर ने पूछा।

"राजी है।'

वह चुप रहा।

मक्खन को याद था, पहले दूध भी उसकी मा ही देने जाया करती थी और काफी देर लगाकर लौटा करती थी। आकर, बिना किसी के पूछे ही बताया करती थी, 'मैंने कहा लुटिया लेकर ही जाऊँ—रात को कुत्ते घसीटी फिरेंगे, दूध से लिबड़ी हुई को।

इसके बाद हर रोज कभी कोई, कभी कोई बख्तावर के लिए खाना व दूध लेकर जाता। उनकी माँ स्वयं न जाती।

एक रात बख्तावर ने दूध पीने से इनकार कर दिया। मक्खन की मा ने स्वयं जाकर दूध पीने के लिए नहीं मनाया। अगली रात भी—और फिर हर रोज़ वह दूध लौटा देता। और चुप्पी साध के फिरता रहता—'गवाची गाँ' की तरह।

इन्हीं दिनों मक्खन ने माँ-बाप को दो-तीन बार घुसर-फुसर करते भी सुना था। उसे देखकर वे चुप हो जाते। जैसे कोई भेद-भरी बात पर बहस कर रहे हों। पर अब जहाँ बख्तावर अकेला होता, वहाँ वह जान से कतराती।

दो-एक हफ्ते चुप्पी साधकर बख्तावर ने कसम तोड़कर पीनी शुरू कर दी। दिन रात पीता रहता। पिलाता रहता। झीवरों का जो लड़का टहल-सेवा के लिए रखा था, वही उसके सारे काम करता—रोटी बनाता, कपड़े धोता और दारू लाकर देता। जरूरत पड़ने पर गाकर भी सुनाता।

अब जब वह दलिया चौकीदार की विधवा ले आया तो मक्खन को घर की बरबादी दीखने लगी। ट्रैक्टर के लिए जोड़ी रकम खत्म हो गई तो जमीन बेचने पर उतर आया।

"माँ, मेरी उम्र कितनी है ?" एक दिन मक्खन ने अचानक पूछा।

"आते भादों को बीस का हो जाएगा।"

'बीस और बीस चालीस।' मक्खन ने माँ को सुनकर सोचा, 'चालीस या एक-आध साल फालतू होगा।'

'अम्माँ, तुझे आए कितने साल हो गए ?' मक्खन ने दूसरा प्रश्न किया।

"मैं कोई जन्त्री खोलकर बैठी हूँ ? जाकर पूछ ले जो लेकर आया था।' माँ ने चिढ़कर कहा।

"जन्त्रियाँ भी अब खोलनी पड़ेंगी एक और लिये बैठा है वह !"

"एक की जगह दस ले आए, मरी जूती से !" गुस्से में वह कह तो गई, पर साथ ही वह सिसकियाँ भी भरने लगी।

"तेरी जूती से क्या ? मैं पूछता हूँ तेरी जूती से क्या ?" मक्खन ने चिढ़कर कहा।

"मैंने कहा था उस लान के लिए ?" रुककर बोली "मेरा दिल जानता है या भगवान, जो मेरा कलेजा जलाया है इस आदमी ने। कहीं बाहर मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा इसने !'

मक्खन कुछ कहता-कहता चुप हो गया।

रात को मक्खन ने अपनी पत्नी के साथ बात की। उससे पता चला कि माँ अभी कपड़े धो रही है। वह डरती है। बापू जी की जगह माँ जी को समझाने की ज्यादा जरूरत है। पर वह खुद अभी कल आई है। सास को कैसे समझाए ? उधर माँ-बेटे का रिश्ता ही ऐसा है कि बेटा बेशर्म कैसे बने !

सिर से पानी निकलता देखकर चौथे दिन मक्खन ने कुछ रिश्तेदार इकट्ठे कर लिये—कुछ बाप के नजदीकी, कुछ माँ के।

अब समस्या हुई कि बख्तावर को सबके सामने पेश कैसे किया जाए ? हर समय वह नशे मे धुत पडा रहता है। उसके साथ अक्ल की बात कैसे की जा सकती है ? मक्खन ने इसका उपाय सोच लिया।

आधी रात को मक्खन का मामा, फूफा और छोटा वीरू मक्खन के साथ खेत पहुँचे। बख्तावर बेहोश पडा था। मक्खन ने चौकीदारनी की छाती पर एक लात धर दी। वह भाग निकली। दुना मौके की नज़ाक्त समझता साँस खीचकर पडा रहा। चारो ने बख्तावर की खाट उठाई और घर की कोठरी मे ला रखा।

काफी धूप निकल आई थी, जब बख्तावर की आँख खुली। आसपास देखकर उसने रजाई फेंक मारी और छलाग लगाकर फर्श पर खडा हो गया। जुडे लोगो को देखकर वह डर गया। 'आज नही छोडेंगे —यह सोचकर वह काप रहा था।

"बठ जा बेटा !' मक्खन की नानी ने उसका सिर पलोसते हुए कहा। फिर बाहर आवाज़ दी, "लाओ नी कुडियो, चाय बख्तावर सिंह के लिए।"

चाय और पानी के गिलास आ गए। बख्तावर ने पीने से इनकार कर दिया। ढग से ख़त्म करना चाहते है—उसने सोचा।

"ले, मेरे कहने से पी ले।" नानी ने कहा, "मुझे तो तू बेटो से प्यारा है। बिटिया देकर बेटा बनाया है तुझे।" नानी का गला भर आया।

"बनाया होगा—वह बैठी है तेरी बिटिया, ले जा।" बख्तावर ने दिल सख्त करके कहा।

मक्खन ने नानी की ओर देखकर उसे और बात करने से रोक दिया।

"लाओ, मुझे पकडाओ दोना गिलास।" मक्खन ने दोनो गिलास पकड लिये। आधा पानी पीकर और आधी चाय पीकर बोला—"ले बापू, अब तो पी ले ! अगर इसमे कुछ डाला हुआ होगा तो दोनो ही मरेंगे।" मक्खन की आवाज़ भारी हो गई—"अब जीकर करना भी क्या है !"

"मरें तुम्हारे दुश्मन ! कैसी चदरी बातें मुह से निकालता है ?" नानी ने कहा। फिर बख्तावर से कहने लगी—"ले बेटा, पी ले वे चदरया ! तेरा अपना लहू तेरी जान लेगा ? तेरी चिता मे तो लडके ने कितने दिना से एक टुकडा भी नही खाया !"

सारे चुप हो गए। बख्तावर बठ गया। पहले पानी और फिर चाय पीने लगा।

मक्खन न आसपास देखा, उसकी अम्मा नही दीखी। "अब वहा क्या जाकर बैठी हो अम्मा ? अब अन्दर क्यो नही आती ?" मक्खन ने इस तरह कहा जैसे सारी समस्या उसकी माँ क आने से ही सुलझनी हो।

"ले, आ गई।" मक्खन की माँ ने दरवाज़े में से गर्दन अन्दर करके कहा, "बता क्या करना है मेरा? क्या आवाज़ें लगा रहा है?" मक्खन की माँ ने यूं कहा जैसे उसे पता ही न हो, झगड़ा क्या है।

"तुझे नहीं मालूम क्या करना है तेरा?" मक्खन ने कहा—"तेरा ही तो सारा रोना डाला हुआ है—कहती है क्या करना है मेरा।' मक्खन ने शुरू से ही बाप का पक्ष लेना शुरू कर दिया, जैसे उसे बता रहा हो, जो कुछ उसने इस हालत में किया है, ठीक ही किया है। ट्रैक्टर की रकम की अपेक्षा उसे जमीन की अधिक चिंता थी।

"चुप करके बैठा रह!" माँ बोली—"डाला है मेरा रोना!'

"इन्हें चुप करके बैठने के लिए इकट्ठा किया है? मक्खन ने सबकी ओर इशारा करके कहा।

"अच्छा, मचाओ शोर! न कर चुप पीटो ढोल छत पर चढ़कर।"

'ढोल पीटने में क्या कोई कसर रह गई है? अभी और पीटने को कह रही है।' मक्खन ने कहा।

"तू पिता के साथ बात कर मक्खन! इस बेचारी पर क्या कूद कूदकर पड़ता है?" मक्खन के मामे ने अपनी बहन का अपमान होते देखकर कहा।

"दोनों से ही करनी पड़ेगी और अम्माँ के साथ ज़्यादा।" मक्खन ने दृढ़ता से कहा।

'कर बेटा, कर!' नानी ने ताईद की—'तू अब, भगवान की कृपा से सियाना हो गया है—दोनों को समझाने लायक।' फिर रुककर बोली—"यह तो ठण्डे दूध को फूंक फूंककर पीते हैं। ऐसा नेक तुम्हारा बेटा निकला है जिसने पैदा होते ही सारी जिम्मेदारी सँभाल ली है। और तुम्हें खाली छोड़ दिया लड़ने के लिए! माँ बाप तो औलाद को समझाते देखे थे यहाँ उलटा ही रवैया चल पड़ा!"

एक बार फिर चुप्पी छा गई।

"क्या झगड़ा है तुम्हारा?' मक्खन के फूफे ने चुप्पी तोड़ी।

"क्या होना था भय्या! यूं ही फालतू में टुकड़ा नहीं हज़म होता।" मक्खन की माँ बोली।

'अम्माँ, बात सुन सियानी बनकर।' मक्खन को सूझ नहीं रहा था, बड़ी उमर के लोगों के बीच कैसे बात करे—'तू हम लोगों के साझी लग देखना चाहती है या सरदारी करते ?'

'यह भी क्या कोई पूछने वाली बात है? माँ डायन होगी, तो भी अपनी औलाद के लिए नहीं।" माँ ने कहा।

"फिर तू बापू को रोटी क्यों नहीं देती? क्या चलते काम में रुकावट डालती

हो ? ' मक्खन ने जो बात बहुत मुश्किल सोची थी, वह बडी आसानी से कही गई।

"मैंने डाली है चलते काम म रुकावट ?" मक्खन की माँ ने हठ करने की भाति कहा।

"तून ही सारा काम खराब किया है।" मक्खन न गम होकर कहा—"ले वीरू, बाप को रोटी दे आ ले छिंदे, बाप को दूध दे आ।" मक्खन न मा का स्वाग किया और अपनी बात का प्रभाव देखने के लिए सभी के चेहरा की ओर दखा—"तुमसे नही पकडाई जाती रोटी अब कहे बहू आ गई है ! मैं पूछता हूँ, बहू के आ जाने स यह (बख्तावर) एक दिन मे बूढा हो गया ? छिपती फिरती है जैसे कजक हो !" मक्खन गरजा।

मक्खन की मा के आसू बहने लगे। सारे चुप हो गए। फिर नानी बोली, "बेटी, लडका सही कलप रहा है। भत्ता बनाकर किसी डोल घूमती रहना। कोई बात पूछनवाला नही होगा। मद के सिर पर औरत राज भोगती है और मद कर दिया दूर तूने—यू कस बात बनेगी ?"

मक्खन की मा उठकर बाहर जाने लगी तो मक्खन न रोक लिया—"अब बात एक किनारे लगाकर बाहर जाना तुझे कुछ समझ आई या नही ? तुझे कोई एतराज हो तो अभी बता द।' मक्खन न नम होकर कहा।

' इसे क्या ऐतराज होगा ?" नानी ने बेटी की ओर से विश्वास दिलाया, ' इसका डर मैं दूर कर दूगी। इसका डर भी सच्चा है पर बेटी, अपना घर सँभालो, जगहँसाई मत करवाओ ! बख्तावर सिंह की उम्र के तो अभी कुआरे ही फिरते ह।"

पर यह बोलती क्या नही ?" मक्खन ने गुस्सा दबाकर कहा।

"बोलू क्या ? तू तो बेशम हो गया है, मेर स तेरी तरह जुबान नही चलाई जाती।' मक्खन की मा न असहमत होकर सहमति प्रकट कर दी—"मैं जिनका भला सोचती थी, वही आखें दिखात हैं !"

एक बार फिर सारे चुप हो गए। शायद यह सोचने के लिए कि मक्खन की मा कस भला सोचती थी।

मक्खन को अपनी मा पर तरस आ गया। फिर वह पिता पर बरस पडा—"अच्छा साहब पिताजी !' मक्खा न तीखा नश्तर चुभोया—" 'मेरा यार बेटा ! मेरा भाइया जसा बेटा ! कहत मुह नही थकता था तुम्हारा। मैं पूछता हूँ यार बटे के साथ एक बार भा बात न की गई ? मोल की औरत लाकर लोगो को दूल्हा बन बनकर दिखाते हो अपनी बीवी से खाना न लिया गया ?" मक्खन उबलत तारकोल की भाति बुलबुले छोडने लगा—"अगर बहुत ही परेशान है तो दूसरा ब्याह करवा देत है तुम्हारा—सीधी तरह से घर मे लाकर रख ! साथ ही इस (मा) भी अक्ल आ जाए !"

बख्तावर रजाई लेकर लेट गया।

चुप्पी बहुत गहरी हो गई। मक्खन की नानी ने मक्खन को नम होने के लिए संकेत किया। तनाव कम करने के लिए मक्खन ने छोटे भाई से कहा, "जा वीरे, खेत से साहब के कोट पतलून उठा ला। सन्दूक में सँभालकर रख दे। अम्माँ ने रोटी न पकड़ाई तो फिर काम आएँगे।"

सारे हँस पड़े। नानी भी हँस पड़ी। बख्तावर की रजाई हिली। रसोई में से मक्खन की बहू की हँसी सुनाई दी।

"कैसे बातें आती हैं बेशर्म को!" मक्खन की माँ का मुँह लाल हो गया—"बहुत ही सियाना बनने लगा है!" वह मुस्करा पड़ी।

बख्तावर रजाई लिये पड़ा रहा।

"ला पकड़ो!" मक्खन की माँ बाहर से रोटी वाला थाल लाकर बोली, "ले, खा ले, अगर मेरे हाथ से बहुत मीठा लगता है तो मैं खिला दिया करूँगी।"

बख्तावर उठकर बैठ गया। थाली पकड़कर तिपाई पर रख दी।

"मुँह में कौर तो खुद डाल लोगे या वह भी अम्माँ ही डाले?" मक्खन ने व्यंग किया।

सबने हँसते हँसते बख्तावर की ओर देखा तो चुप हो गए।

वह रो रहा था।

दीये की तरह जलती आँख

—गुरबचन सिंह भुल्लर

उनके आगन मे जुडता-जुडता काफी बडा जमावडा जुड गया था। गाँव के कुछ पच और अगुआ लोग उन्होने खद बुलाये थे। रोज-रोज के झगडे-झझट से बचने के लिए फैसला उनके सामने होना ही ठीक था। जिन लोगा के साथ उनकी काम धधे की, हलगाडी की, जोताई गोडाई की साझेदारी थी, उन्हे तो बुलवाना ही हुआ। ऐस लोग पचायतो मे न खुलने वाली गाठें भी सभी भाइयो पर प्रभाव होन के कारण, सहज ही खोल देत है। खडपच किस्म के लोग बिन बुलाये आप ही आ गये थे। उन्हे तो कही चार आदमी जुटन की, कोई झगडा या झगडे की सभावना होन की भनक कान पडनी चाहिए, फिर उनको बुलवाने की आवश्यकता नही पडती। अपनी चौधराहट दिखाने के लिए वो सबसे पहले आ हाजिर होत हैं। उनके पीछे पीछे आ गए थे कुछ तमाशबीन, खुडा पर बैठे निठल्ले लोग, अधिक समय घरो स बाहर व्यतीत करने वाले बूढे और अमली। इनका "न काहु से दोस्ती न काहु स बैर' वाला हिसाब होता है। किसी को घाटा हो, किसी को फायदा, उन्हान ता बस बीच विचवई का चसका लेना होता है। और पीछे-पीछे गली-मुहल्ले के कुछ छोटे-बडे बच्चे भी आ गए थे। कही कुछ खराब घटित हो रहा हो या अच्छा, बात खुशी की हो या गमी की, वो आँखो म आश्चय और दिलो मे उत्सुकता भर दब कदमा पहुँच जाते है। पहले झिझककर एक तरफ खडे रहते हैं, फिर हौले हौले निकट, और निकट होत जाते हैं और अन्त म भीड मे जुडे लोगो की टाँगा के बीच स अनदखे ही गुजरकर आगे जा खडे होना अपना अधिकार समझते है।

आँगन म काफी बडा जमावडा तो जुड गया था, परन्तु अभी असली बात नही चली थी। सब अपनी अपनी हाँक रहे थे। कौआ रोर-सा मचा हुआ था, जिसम स कभी-कभी किसी के मुह स किसी बात का कोई टुकडा सुनाई दे जाता— 'ओय मया भइया मैंने कहा मेरी मान भी ओय भाई यह तो जगत-वतीरा है— तफाव (इत्तिफाक) का जवाब नही ले तू मरी सुन मानी बात, मगर कोई तफाक कर भी जमाना कौन-सा है भाई !"

पच-खडपच चारपाइया पर बठ गए थे। कुछ लोग चरनिया पर और आँगन मे पडे एक खुढ पर बठ गए थे। बाकी इधर-उधर खडे थे। तीना मे म बडा भाई

दयाला और छोटा पाला दो अलग अलग खाटों पर और लोगों के बीच बैठे थे। चार चुफेरे कुछ न-कुछ बोल रहे लोगों के बीच चुप थे। कोई उनमें से किसी को सीधा कुछ कहता तो वह हूँ-हाँ में संक्षिप्त उत्तर देकर चुप हो जाता।

उधर चूल्हे चौके की कच्ची कधोली के पास पास पडोस के घरों की पांच-सात औरतें बैठी खडी थी। दूर-पास कहीं भी घटित हो रही हर अच्छी बुरी घटना में शामिल होने की, उसे आंखों से देखने की और अगर संभव हो, पंचायती छाँटने की लालसा तो आखिर उनको भी होती ही है। अगर पंचायत गुरुद्वारे, धर्मशाला या सरपंच के घर में जुटे तो उनको बेबस होकर घर में रहना पड़ता है। मगर जब इकट्ठ किसी के घर में हो तो भी एक एक करके इकट्ठियाँ होती रहती है और पुरुषों की पंचायत में अलग अपनी पंचायत जोड़कर बैठ जाती है। और औरतों की इस पंचायत में दयाले की घरवाली गुरनामो और पाले की घरवाली महिन्द्रो भी थी।

'मंगलसिंह कहाँ है?" सरपंच ने पूछा—"बुलाओ भाई उसे अब, बात किसी किनारे लगे। अब तो सब स्याने बन्दे आ गए।"

'यहीं घर में ही था, अन्दर, सनात में," दयाला बोला और फिर उसने पाले को कहा "बुला तो उसे भीतर से! क्या करता है अब अन्दर वो?'

पाला सनात में से मंगल को लिवाने चला गया। पंच गुरबख्श सिंह ने सोहन अमली को, जो सरपंच वाली खाट पर उसके बराबर डटकर बैठा था, कहा, 'सोहना सिंया, कान पड़ी बात नहीं सुनने देते, भगा दे इस सारी छोकरा-मंडली को यहाँ से! इनका यहाँ क्या काम!'

सोहने अमली ने कन्धे पर रखा अँगोछा चिड़िया उड़ाने वालों की तरह घुमाते हुए धरती पर पैरों का खटका किया, 'चलो ओय बच्चो, भागो यहाँ से!' और फिर उसने बड़े आदमियों में छिपते जाते एक लड़के को बाहर खींचकर कहा "छुपता किधर है? दौड़ बाहर! तेरी दादी को मेल ले जाऊँ!

'देखो तो! भरी पंचायत में शुभ वचन बोलते संकोच नहीं होता!" कधोली के पास से नामी बूढ़ी तीखी आवाज में बोली।

सोहना अमली एक बार तो ठिठककर कच्चा-सा हो गया। उसे क्या पता था कि लड़के की दादी भी पास ही बैठी हुई है। लेकिन पंचायत में आने से पहले वह अफीम का कुछ ज्यादा मावा अन्दर डालकर आया था और अब पूरे तरारे में था। वह हँसकर बोला, 'क्या नई लम्बरदारनियें, वैसे तो जो कोई कुछ कहे कहती रहती है—ऊँचा सुनता है ऊँचा सुनता है। मेले जाने की बात झट सुन गई तुझे!'

सारे आंगन में खिड खिड हँसी बिखर गई। औरतें भी हँस हँसकर दोहरी हो गई। कच्ची-सी होकर नामी ने कोई जवाब तो दिया, लेकिन अब उसकी कौन

हुआ था ! वो ओलकर जल्दी-जल्दी हाथ हिला... लेकिन दाजी तो सहना पहले मार चुका था।

इतने में अन्दर से आकर मंगल भी एक खाट की बांही पर ... गया। सरपंच ने सबको चुप करवा के अपनी बात चलानी चाही। जिस काम के खातिर वो सब इकट्ठे हुए थे, वो तो अभी शुरू ही नहीं किया गया था। लेकिन मोहने अमली ने सरपंच को बात बीच में ही रोककर ध्यान किया, "मंगल किसी मांगने वालों की तरह बांही पर क्यों बैठा है ? ठीक होकर बैठ भैया ! भाइयों के बराबर का भाई है। बराबर की ढेरी का मालिक ! '

बराबरी में कोई झूठ तो नहीं बाबाजी ! उसी मां के पेट से जन्मा है, जिसके पेट में दूसरे दोनों जन्मे थे," कधोली के पास जुटी औरतों की मंडली में से नाक आन हुए महिन्द्रो बोली। उसने अपना छोटा लड़का गुरजंट नहला-धुलाकर और क्लिपवाला जूड़ा करके गोद में उठाया हुआ था। घूंघट में ढके हुए उसके चेहरे में नंगी उसकी बाईं आंख दीये की तरह जल रही थी।

मोहने अमली को इस उलट जवाब की बिलकुल उम्मीद नहीं थी। इस भरी दरबार में नामी बूढ़ी वाली बात के कारण बनी उसकी हाजिर-जवाबी की सारी पैठ जाती रही। वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन कह न सका। कुछ सूझा ही नहीं। आखिर कोई और आदमी उसकी मदद के लिए आगे आया। पंचायत में से किसी ने कहा ' आप बूढ़ियां चुप करो भाई ! आदमियों को बात करने दो ।"

"तू बीच में जाकर क्यों मगजाली मारती है ? बड़ी पंचायतवाली, इधर आ जा चुप करके " मैली चादर का लटकता सा घूंघट निकाले बैठी उसकी जेठानी गुरनामो वाली— 'पंचायत में परमेश्वर होते है, जो फैसला पंच करेंगे, दूध का दूध पानी निथारकर ही करेंगे ।"

"अरी तू पुरुषों में क्यों बोलती है ?' कई और बूढ़ियों ने भी एक साथ महिन्द्रो को अक्ल दी।

"न मैं किसलिए बोलती," महिन्द्रो एक कदम पीछे हट गई, "यह तो अमली बूढ़ा काटती बात करता था छोटे भाईजी की बराबरी से इनकार कौन करता है ? बराबरों से भी अधिक है इस घर में यह !"

हां, आज तो मंगल ठीक ही बराबर से भी अधिक और भारी लगता था। दादे लहंदी बीरा सिरले जमीन पर तीन भाइयों का बराबर का हक था। बड़ा दयाला और छोटा पाला बाल-बच्चों वाले थे, लेकिन बीचवाला मंगल छड़ा रह गया था। जब आंगन में जुटे लोग मन-ही मन में तीनों भाइयों को तोलते, कई-कई बच्चों की तरफ देखते हुए दयाला और पाला जायदाद की दृष्टि से हीन-हीन लगते, लेकिन बराबर की ढेरी का मालिक मंगल अकेला जान होने के कारण भारी भारी लगता। आखिर जाट का अपना भार तो कोई होता ही नहीं

भी कोई जाट को तोलता है, उसको तराजू के उसके वाले पलड़े मे उसके साथ ही उसकी जमीन को रखकर तोला जाता है। जमीन के बिना जाट का क्या वज़न ! जमीन के बिना जाट का क्या अस्तित्व !

दयारा का तो बिना किसी भाग दौड़ के विवाह हो गया था। उन दिनो म मस्तान सिंह की वाही बढ़िया चलती थी। सुदर-सुडौल नगौरी बल उसके हल के आगे जुतते थे। तीन लड़के काम मे उसके साथ हाथ बँटान लग गए थे। किसान के अपन घर के चार आदमी खेत जान वाले हो, तो किससे लिया जाता है ! आदमी भी वो नेक नाम था। लेकिन इन सब कुछ के बावजूद बात मगल पर आकर अड़ गई थी।

मगल के दुबले-पतले चेहरे पर चेचक के दाग किसी बेटी वाले का मन टिकने न दत। बाकी की कसर उसकी पगडी का 'ठकडला लड' पूरी कर देता, जिसे बिना टाग ही वह सारी पगडी के ऊपर से ले जाकर कधा पर फला देता था। कुरूप होने के साथ साथ वह कुछ जब्भल सा भी लगता। बिचौलिया का लाया अगर कोई मगल को देखन आता भी, तो चलते हुए कान म फूक मार जाता, ' छोटे के लिए तो रुपया चाह अभी पकड लो यह लडका तो "

कई साल मस्तान सिंह और किशनो मगल का ब्याहन के लिए हाथ-पैर मारत रहे। मस्तान सिंह माक शरीके वाला को कहता और मित्रा-परिचितो पर जोर डालता। किशनो गाव की रिश्ते करवाने के लिए प्रसिद्ध औरता के घरा के चक्कर लगाती। वह बिचोलगीरी के लिए भारी अगूठिया बन्त्यिा सूटो और मोट पसा का लालच देती। वह अपने कद से आधी की होकर, मिन्नत करनेवालिया की तरह कहती, ' बहना मैं तेरा एहसान सारी उम्र नही भूलूगी। एक बार लडके की रोटी पक्ती हो जाए एक बार बहू घर आ जाए उठती-बैठती तेरे गुण गाऊँगी कच्चे धागे से पानी भरूँगी तेरा !' लेकिन ईश्वर जाने, मस्तान सिंह और किशनो की किस्मत मे कोई फक था या मगल की किस्मत मे, कही भी कोई चारा न चला। आखिर यह सोचकर कि इसका ब्याहत ब्याहते कही छोटा भी रह न जाए, उन्होने पाले के लिए रुपया पकड लिया।

छोटे भाई के ब्याहे जाने के बाद बड़े को कौन पूछता है ! और लोगो की इस शका का आधार भी तो होता है कि बडा अनब्याहा छोडकर छोटा ब्याहा गया, उसमे कोई कसर कोई कमी कोई खराबी तो होगी ही ! ऐसे ही तो नही कुआरा रह गया। इस तरह मगल रहता रहता रह ही गया। अब वो कुआँरा नही छडा था।

मस्तान सिंह की मौत के बाद अकेली किशनो मिन्नत-खुशामद करती रही। अब तो वह जाट की अकडफ को एक तरफ छोडकर बहुत नीचे उतर आई थी। अब तो वह सोचती कही से कोई मोल की औरत की ही बात बन जाए ! लेकिन

अगर कोई बात कहीं चलती भी, पता नहीं कौन भाँजी मार आता। बात बनती-बनती रह जाती। किशनो माथे पर हाथ मारती, "मेरे भाग माड़े, नाले माड़े एम चदर दे। (मेरे नसीब खराब, साथ ही इसके)" और वह ईश्वर को उलाहना देती, "इसी कोख से पैदा करना तूने इस नसीब से हीन क्यों रखा जालिम ?"

मंगल को किशनो के इस रोज-रोज के रोदन से बड़ी ही शर्म आती। भाभियों के सामने वह अपने-आप को और भी हीना हुआ महसूस करता। कई बार वह ऊबकर और शर्मिंदा-सा होकर बोलता, "ऐसे ही न तू बेवे समय-कुसमय वैन से करती रहा कर ! मुझे नहीं जरूरत तेरी लाई ऐसी डोलिया की !" और वह उठकर घर से बाहर निकल जाता।

किशनो उसकी जाते की पीठ की ओर देखते हुए ठंडी साँस भरती, "रे निरकर्मे, सारी उमर दो निवाले रोटी की खातिर दूसर के हाथों की ओर झाँकेगा रे किसी ने नहीं पूछना रे बेटा !"

एक-दो रिश्ते महिन्द्रो भी लाई। एक बार उसका मामा अपने गाँव से किसी बेटी वाले का रिश्ता लाया। लड़का उसे पसंद था, बस उसने अपने बहनोई और साले की नजरों में से निकलवाना था। लेकिन उसने फिर कोई पता न दिया। महिन्द्रा की मौसी के बेटे की ओर से लाये गए बेटी वाले के तो कोई साला-बहनोई भी नहीं था। लड़का उसको जँच गया था, बस उसे सब-कुछ बताकर घरवाला की सहमति लेनी थी। वो भी चुप ही धार गया। महिन्द्रो के फूफा के साथ आया बेटी वाला तो कोई अच्छा दिन निकलवा के आने का इकरार तक कर गया था। लेकिन कुछ दिनों बाद उनकी हरेक रिश्तेदारी में से यही जवाब आ जाता कि लड़की वाले के पास किसी ने भाँजी मार दी। सोच-साचकर भी किसी को समझ न आती कि उनके कुनबे से इतना वैर कौन पड गया था, जो भाजी मारने के लिए हर जगह पहुँच जाता था ? महिन्द्रा बेचारी तो पूरा जोर लगा रही थी कि मंगल का चूल्हा भी तपता हो जाए, पर पता नहीं किन लोगों की भाजियों के भगाये हुए सब लोग भाग जाते।

जितनी देर किशनो बैठी रही, सांझा घर जैसे-तैसे चलता रहा। किशनो के आँखें मूँदते ही सब-कुछ बिखर बिखर गया।

गुरनामो रोज रात को दयाले के पास महिन्द्रो की ज्यादतियों की कथा ले बैठती। घर का ज्यादा काम गुरनामो को करना पड़ता। हरेक काम का भारी पहलू उसके हिस्से आता, हल्का महिन्द्रो के। महिन्द्रो घर को बुहारकर गोबर कूड़े के टोकरे भरती, गुरनामो उठाकर कचरे के ढेर पर फेंकने जाती। महिन्द्रा आटा गूँधती और हारी में उपले डालकर दाल का पतीला धरती, गुरनामो रोटियों की थब्बी पकाती। महिन्द्रा टोकरे में रोटियाँ, दाल और लस्सी रखती और प्याज के छिलके जैसा दुपट्टा, जंजीरी वाली कुरती, टखनों से सटती चिपकती सलवार और

चढाई वाली जूती पहनकर गाँव मे से अपनी जवानी का प्रदशन करती हुई सन को चली जाती, गुरनामो मारे कुनबे के कपडे धोने बैठती। गुरनामो दयाले से कहती, वह काम तो महिन्द्रो के हिस्से का भी आप कर ले, लेकिन उसमे उसकी चुस्त चालाकियाँ नही झेली जाती। वो काम कम करती थी, अच्छा पहनती थी और अच्छा खाती थी, लेकिन खराब बोलती थी और शान ज्यादा दिखाती थी।

महिन्द्रो समझती थी कि दयाले की औलाद बडी हो रही थी। कल को जेठ की लडकी की शादी करनी होगी। वो साँझे घर मे से क्या हो? उसके अपने बच्चा के जवान होकर ब्याहे जाने तक तो घर की साझेदारी निभ ही नही सकती थी। रात को वह पाले को उसके बुद्धिहीन होने का एहसास कराती रहती। वह कहती कि उसको आने वाला कल दिखायी क्यो नही दे रहा था? आदमी तो वही होता है जो अपने आने वाले कल की सोचे। काम म वो दोनो भी हड्डिया तो दयाले और गुरनामो की तरह ही तुडवा रहे थे, लेकिन परिवार पल रहा था बडो का। वह पाले को अलग हो जाने के लिए उकसाती रहती। वह समझती थी कि वो अलग होकर सरदारी भोग सकते थ।

मगल को तो मा के बाद घर म से अपना तिनका ही टूट गया लगता था। वह तो जसे अचानक फालतू होकर रह गया था। शरीको का बेगार धधा करे और दो जून टुक्कर खाए। क्या था उसका इस घर म अब, जिसकी खातिर वह जान तोड कर महनत करे? उसका काम मे दिल न लगता। वह खेत जान स कतराता।

क्लेश सबके दिलो मे अन्दर ही अन्दर बढता ही जाता था।

मगल कभी किसी भतीज भतीजी को गोद म उठाकर या उँगली पकडकर घर स बाहर निकलता तो लोग व्यग्य ताने मारते, "एस ही कमर तुडवाता है कि भाभिया रोटी टुकडा भी अच्छे ढग से देती हैं?"

मगल का थूक एसे मौके पर गले मे अटक जाता। उसे कोई जवाब न सूझता।

गुरनामो के सामने तो, बडी होने की वजह स, मगल पहले दिन स नजर झुका कर रखता था। वह दयाले से कई साल छोटा था। बीच म दो लडकिया हुई थी और एक बच्चा गिर गया था। जब गुरनामो ब्याहकर आई थी मगल अभी कम सिन ही था। तब म बस ऐसे ही एक झिझक सी बन गई थी और वो बनी ही रही थी।

गुरनामो की जवानी भी पहले वर्षो मे ही सयुक्त घर म जान तोड के काम करते ढल गई थी। वस भी उसका रग पक्का और शरीर ढीला सा और फुलावा मुख था। अब तो कई बार पीठ पीछे मे वह मगल की बेबे जसी लगती थी।

छोटी महिन्द्रो मगल को लोमडी की तरह पूछ पर नचाती थी, लेकिन पकड मे नही आती थी। उसका मक्का की रोटी जसा रग और कसा हुआ शरीर मगल के दिल म कुछ ऐसा पैदा कर देता कि वह तरमोहा सा हो जाता। जब वह घर म

काम करती हुई अन्दर-बाहर चलती, उसके पैरों की धमक नगाड़े की तरह पड़ती। घूंघट में से नंगी रहती उसकी बाईं आँख दीवट पर पड़े, तेल से भरे हुए दीये की तरह लट-लट जलती। उस समय में मंगल को लगता जैसे उसकी अपनी काया सूखे घास फूस की बनी हुई हो।

एक दिन इत्तिफाक से दोनों जेठ-भाभी ही घर में थे। मंगल कितनी देर चलती फिरती महिन्द्रो को देखता रहा। उसके अन्दर कोई चिनगारी फूट पड़ी थी। महिन्द्रा भी आधे निकाले घूंघट में से चोर आँख से मंगल को ताड़ रही थी। छोटे-मोटे काम करते इधर उधर घूमती महिन्द्रो के दुपट्टे का पल्लू जैसे मंगल की चिनगारी को हवा देकर भड़का रहा था। मंगल ने एक दो ऊलजलूल-सी फब्तियाँ भी कसी और फिर उसने सबात में कुछ उठाने गई महिन्द्रो के पीछे जाकर उसकी बाँह पकड़ ली।

'ओह सीतो आ गई," महिन्द्रो ने बाहर के दरवाजे की ओर दूसरा हाथ कर के कहा।

जवान हो रही बड़ी भतीजी का आ जाना सुनकर मंगल के हाथ झूठे पड़ गए और उनमें में महिन्द्रो की कलाई अपने आप फिसल गई। वह हिरनी की तरह छलाँग लगाकर सबात से बाहर जा खड़ी हुई। सीतो कहीं नहीं थी। मंगल ठगा गया था। उसको कच्चा सा होकर सबात में से बाहर निकलते को महिन्द्रो ने समझाया, "भाई जी, सौदाई हो गया है? अभी कोई बाहर से आ जाता तो क्या बनता?'

बात मंगल को भी ठीक लगी। इतने बड़े परिवार में से कोई कभी भी बाहर से घर आ सकता था। महिन्द्रा की प्यार भरी झिड़की ने मंगल को यह तसल्ली करवा दी कि उसने बुरा नहीं माना था। बल्कि मंगल की आगा-पीछा सोचे बिना की गई मूर्खता घर में झमेला खड़ा कर सकती थी। महिन्द्रो स्यानापन बरतकर बात को सँभाल गई थी। चलो, बात किसी सिरे तो लगी थी। महिन्द्रो ने इकरार तो कर लिया था।

बाहर को जाते मंगल को महिन्द्रो ने पिसवाने के लिए बरामदे में रखी ढाई मन की कनक की बोरी की ओर हाथ करके कहा, "भाई जी, यह एक तरफ करवा जाना।

मंगल ने बोरी घसीटकर एक तरफ करनी चाही, मगर उससे हिली नहीं। कुछ तो बोरी ही भारी थी, कुछ मंगल का शरीर ढीला हुआ पड़ा था। पास खड़ी महिन्द्रो बोली, "ठहर भाई जी, मैं लगती हूँ तेरे साथ।"

उन दोनों ने पहले बोरी खड़ी की। फिर महिन्द्रो ने मंगल की बाईं कलाई अपने दाएँ हाथ में पकड़कर कहा, "लो भाई जी, बोरी बाहों के सहारे उठाई जाएगी।'

जब मगल ने बोरी बाहा पर फेंकी, महिन्द्रो ने झटके से मगल की सारी बाँह बोरी के नीचे खीचते हुए बोरी उसके ऊपर छोड दी। आप वह एक तरफ होकर हँस पडी, "तेरा भाई आएगा तो पूछेगा, यह ऐसे किसलिए बैठा है ? आप ही बता देना सारी बात !"

मगल भय से काँप उठा। काम पर लगने से पहले महिन्द्रो ने तेल निकलवाने के लिए रखी हुई सरसो का गट्ठा भी मगल की बाँह पर पडी कनक की बोरी के ऊपर रख दिया। मगल ने बडा जोर लगाया, लेकिन वह अपनी दबी हुई बाँह नही निकाल सका। दम टूटने पर भिनभिनाने लग पडा।

अगर पाला सचमुच अभी ही आ गया तो मगल उसे क्या जवाब दे सकेगा ? अगर परिवार का कोई भी आदमी आ गया, तो वह कही का न रहेगा। वह तिनके से हल्का और पानी मे पतला हुआ बैठा था। बोरी के नीचे दबा हुआ उसका बायाँ बाजू तो सो ही गया था, बाहर रहे दाएँ हाथ से भी, उसके चेहरे पर से मक्खी तक नही उडाई जा रही थी। महिन्द्रो कितनी ही देर अठखेलियाँ करती अपने काम धधे मे लगी हुई उसके आस पास मारनी की तरह चक्कर काटती रही। आखिर मगल ने खुले हाथ से उसके पैर पकडे तो उसने बोरी के नीचे से उसकी बाँह निकाल-कर उसकी जान खलासी की।

उसके बाद मगल कभी महिन्द्रो को आख मे डालने पर भी नही किरकिराया था। जब कोई उसे टकोर मारता, "भाभियाँ रोटी-टुकडा भी अच्छे ढग से देती है कि नही" तो उसका थूक गले मे अटक जाता। लेकिन अपने-आपको तीन-तेरह म दिखाने के लिए वह खखारकर गला साफ करता और कच्ची-सी हँसी हँसकर कहता, "रोटी-टुकडे को क्या बेचारिया भागी हुई है ?

तो उसके साथी मजा लेकर कहते, "वाह ओय सरदार मगल सियाँ, खुश कर दिया !"

'क्या भाई लडको किसी तरह तुम्हारा एका बना नही रह सकता ? ' सर पच ने छडी से धरती पर लकीरें खीचते हुए पूछा। उसने उतना विश्वास या निश्चय के साथ नही जितना सरपच और बुजुर्ग होने के नाते एक रस्मी फर्ज के तौर पर तीनो भाइयो को एक बार फिर यह याद दिलाना उचित समझा कि एकता म बहुत बरकत होती है, इत्तिहाद मे बहुत शक्ति होती है।

तीनो भाई नजरें झुकाए चुप बैठे थे। मामला जहाँ पहुँच चुका था, वहाँ एकता बनाए रखने की बात करना वैसे तो बेतुकी और बेमौका थी, लेकिन सवाल यह था कि अलग-अलग होने के लिए अपने मुह से पहले कौन कहे ? सो तीनो की चुप ही उनकी ओर से ठीक उत्तर था। उनके जवाब के इतजार म और सब भी चुप हो गए। सारे आगन मे ही चुप छा गयी।

एक पल पहले एकदम पीछे हटी महिन्द्रो इस चुप को चीरती हुई दो कदम

आग आकर बोली, "तफाक (इत्तिफाक) नही रहता अब बाबा जी! जब दूध फट जाए, कभी फिर दूध बना है? आप खुद स्याने ह!'

"क्या भकाई मारती है औरतो वाली?" पाला कच्चा-सा होकर बोला। तीना भाइया के चुप बैठे हुए होने और गुरनामो के भी कुछ न बोलने की सूरत मे महिन्द्रो का इस तरह बोलना उसे बहुत खटका। पचायत के सामने महिन्द्रा का बार-बार बोलना यह प्रभाव उत्पन्न कर सकता था कि उसकी चतुराई और पाले की उसके साथ मूक सहमति ही असल झगडे की जड थी। परेशान होकर उस-ने घुड़का, "जा चुप करके औरता मे बैठ जाकर चैन से!'

"चल ठीक है, मैं तो नही बोलती। लेकिन तेरी चुप ने ही सारे बखेडे डाले हैं!' महिन्द्रो की आँख मे दीये की बत्ती जसे और तीखी हो गई थी।

'आ जा री आ जा पगली!" कघाली के पास बैठी कुछ औरतें बोली।

"न, मेरी अक्ल मे यह बात नही आती, अलहदा होने का कोई उलाहना है? काई जग से न्यारी बात ता हमारे परिवार म होने नही लगी। सारी दुनिया ही अलहदा होती आई है। अगर सुख से, भाई हाने, वो अलहदा तो होगे ही। जो काई किस्मत का मारा अकेला होगा, अलहदा नही हागा। फिर इन समझौता की क्या जरूरत?" महिन्द्रो के बोल मे पहले वाला तरारा कायम था।

"री तू दो घडी सबर कर! अलहदा हाकर उतार लेना चाव!" गुरनामो न अपन स्वभाव के उलट व्यग किया।

"हमे न तो कोई चाव है, बहना, और न कोई अफसोस है। जग जहान अलहदा होता है, अपने होते है तो क्या हुआ?' महिन्द्रो बात समाप्त कर देना चाहती थी।

जसे-जैसे अलहदा होने की बात आग बढती थी, आगन मे एक खिचाव सा तनता जा रहा था। कई स्याने लोग अभी भी एका करवान के पक्ष म थ। वा कहत थे, साधारण मे इस घर मे दो दीवारें निकालकर तीना भाइया के घर तो वैस ही गुच्छियाँ-से बन जान थे। वो दलीलें देत थे, तीनो भाई मिलकर काम करें तो बरकत रहे। जाट के बेटे को तो सिर पर गट्ठर उठाने के लिए भी दूसर आदमी की जरूरत होती है। अकेले अकेले क्या करेंगे? सीरियो नौकरा के बस पडेंग।

बँटवारा करन की बात पक्की हो गई देखकर सरपच ने फिर कहा—"क्या भाई लडको, अगर किसी हीले भी एका नही रहता, तो फिर करें बाँट-बँटवारा?'

अब तो चुप रहना भी अखरता था। बिना बोले कितनी देर चल सकता था? इसलिए तीना भाइया ने मिली जीभ से हामी भर दी।

'क्या मगल सियाँ, तरी क्या राय है?' पचायत न पूछा।

और यही सारी बात की चूल थी—मगल की राय। अगर वह भी ब्याहा

होता, उसकी राय अलग से पूछने की जरूरत ही न पड़ती। लेकिन अब तो उसकी बात ही और थी।

अगर मंगल दोनों भाइयों में से किसी एक भाई के साथ हो जाता, उसके हिस्से की जमीन अंत में उसी भाई की हो रहनी थी। मंगल के जीते-जी तो उसकी जमीन उस भाई ने खानी ही थी, लेकिन दूसरे घर का आधा तो उसके मरने के बाद भी नहीं मिलना था। जमीन के एक एक टुकड़े की खातिर जाट सौ-सौ पापड़ बेलते हैं और मंगल जैसा के अँगूठे तो रोटी देनेवाले भतीजे पहले ही वहीं पर अपने नाम लिखत करवा के लगवा लेते हैं। किसी एक भाई के साथ मंगल के रहने में दो हिस्सों का इकट्ठा घर भी अच्छा खुला रहना था। तंग घर में तो जाट के हल-पंजाली ही नहीं टिकने और जट्टी का दरियाँ बुनने का अड्डा ही नहीं गाड़ा जाता।

और अगर मंगल दोनों भाइयों से अलग हो जाता, उसे लूट-लूटकर लोगों ने ही माँज देना था। नशों और व्यसनों में फँसाकर जमीन क्या, लोगों ने उसका बखार कोठार भी खा जाना था। मंगलसिंह तो बेचारा जिन्दगी में कभी कुछ बना ही नहीं था, फिर तो उसने मंगल से भी मंगल अमली बनकर रह जाना था। जीते-जी ही उसने घर-जमीन गले से नीचे उतार छोड़ने थे और दोनों भाइयों के परिवारों के लिए केवल शर्मिन्दगी पीछे छोड़ जानी थी।

अगर मंगल नशों के रास्ते न भी पड़ता, वह किसी मोल की औरत का बन्दो-बस्त कर सकता था। घर-जमीन तो हाथ से जाते ही जाते, बराबर की शरीकनी छाती पर पीपल लग जानी थी। आज उसने मोल की औरत लानी थी और कल उसके बच्चे हो जाने थे—उसकी ढेरी के वारिस!

'मेरी काहे की राय है! जैसे पंचायत फैसला करेगी, ठीक है," मंगल ने पगड़ी के फिसलते पल्ले को ठीक करते हुए कहा।

"फिर भी, तू अपनी राय तो बता! तेरे दिल में जो कुछ है, कह दे! पंचायत ईश्वर होती है पगले, पंचायत में झिझक या सकोच कैसा?' पंचायत के कुछ और आदमी बोले।

सोहना अमली फिर रौ में आ गया था। अब जब बात ठीक शिखर पर पहुँच चुकी थी वह चुप कैसे रह सकता था! उसने अँगोछा बाएँ कंधे से दाएँ कंधे पर बदलते हुए कहा—'क्या बड़ी पंचायतें, भोली बातें क्यों करते हो? बातें करो तरीके-दस्तूर की। ढेरियाँ करो तीन। फिर आप मंगल सिंह जो मरजी करे!"

इकट्ठ में से कुछ और लोगों ने हामी भरी, "बात तो बड़ी सोहना सिंह ने। लाख रुपये की है। निआरा करके रख दिया कह तो। राय पूछने का अपना क्या काम! तीन भाई हैं, तीन हिस्से करो। यही पंचायती तरीका है। आप पीछे मंगल जैसा चाहे करे!"

"ओय हा भाई, हम इससे खडे पैर फसला क्यो मागें? दिल करेगा तो अपने दो मन्ने आप सेक लिया करेगा। अगर कही से बेचारे को दो रोटिया आदर-मान के साथ तरीके की मिलेंगी, आप उधर हो जाएगा। जैसा वक्त होगा, विचार लेगा। जिस तरह की हवा होगी, उसी तरह की ओट कर लेगा। एक बार हम तो दूसरे भाइयो के बराबर का करे।" कुछ और लोगा ने राय दी।

"ओय भाई, हमने तो कभी लल्लो चप्पो की नही, न कभी सच कहने से डरे हू," सोहना अमली बहुत लोगो को अपने पक्ष मे बोलते सुनकर शेर हो गया था—"पचायत का धम है, सबको एक आख से देखना। कोई भाई तगडा हो, कोई कमजोर, कोई ब्याहा हो, कोई छडा, अपने लिए तो सब एक है," वह पूरा पचायती बना खडा था।

एक बार फिर आगन मे तनाव भरी चुप्पी छा गई। गुरजट को गोद मे उठाए एक हाथ से घूघट को कसकर पकडे महिन्द्रो कुछ और आगे बढी। आँगन मे जुटे मब लोगा ने जसे यह देखने के लिए सास तक रोक ली कि अब वह ताश का कौन सा पत्ता फेकती है। जैसे-जैसे वह आगे पैर रख रही थी, उसकी आख के लट-लट जलते दीये की लौ और भी ऊँची उठ रही थी।

"मेरी भी एक बात सुन ले पचायते!" उसकी आवाज की तीखी नोक से चुप का शीशा किरच किरच होकर बिखर गया—"पचायत मा-बाप होती है। आप मेरे मा बाप! छोटे-बडे का लिहाज है लेकिन सच की शम कैसी शरह मे शम नही "

सबकी आखे महिन्द्रो की ओर मुड गइ, लेकिन बोला कोई कुछ नही। किसी से कुछ बोला ही नही जा रहा था। सबकी जीभें जैसे ब द कर दी गई थी। पाले ने दात पीसे। उसका दिल किया, वह महिन्द्रो को गले से जा पकडे या ललकार मारकर पीछे हटा दे। लेकिन उस पर भी जसे कोई टोना हो गया था। उसने काट खाने वाली आँखो से महिन्द्रो को देखा तो सही, मगर बोल वह भी कुछ न सका।

'मगल की जमीन जाएगी मगल की औलाद को!" महिन्द्रो ने दो टूक फैसला दे दिया।

"मगल की औलाद?" सारे लोगा के मुह खुले के खुले रह गए।

"यह देवत हो बडे महाराज का झण्डा?" महिन्द्रो ने दीवार के ऊपर से दिखाई दे रहे गुरद्वारे के ऊँचे निशान साहब की ओर हाथ किया, जो धीमी चाल चलती पवन मे झूल रहा था—"उसे हाजिर-नाजिर जानकर मगल उठे। अगर तो यह बच्चा इसका है, तो इसको उठा ले गोद मे, नही तो "

और महिन्द्रो ने यह कहते हुए हक्का-बक्का हुए गुरजट को गोद से उतारकर पचायत के बीच जा बैठाया।

आँगन मे जोर की खुसर-पुसर हुई। सबके मुह से अपन आप ही कुछ-न-कुछ

निकल रहा था। अजीब भिनभिनाहट हो रही थी, जसे किसी ने मधुमक्खियो क छत्ते म पत्थर मार दिया हो।

मगल ने नजर उठाकर लोगो की ओर देखा—कुछ पचायती नजरें झुकाए बैठे धरती पर लकीरें खीच रहे थे, कुछ हैरान होकर कभी मगल की ओर तो कभी महिन्द्रो की ओर देख रहे थे, सोहने अमली जैसे मखौलिए हँस रहे थे और एक तरफ खडे मगल के हाणी (साथी) मूछो को मरोडते यही कह रहे थे, "वाह री मद की बच्ची शेरनी का दूध पिया है वई भाभी ने, शेरनी का वाह ओय मित्रा मगलसिआं हम तो ऐसे ही गप्पू समझते रहे, सच पुतर निकला वई सूरमा वडी नर औरत है वई महिन्द्रो—चडा जोडा है वई मगलसिआ ! '

महिन्द्रो की तीखी आवाज से चुप फिर छा गई। मगल को उलझा सा देख वह ललकारकर बोली, "मगला ! जाल ऊँचे झण्डेवाले बडे महाराज को हाजिर-नाजिर ! सच बोल भरी पचायत मे ! सच स कैसा डरना !"

मगल ने महिन्द्रो की ओर देखा तो उसे लगा जैसे घूघट म से नगी बाई आख के दीये की लौ उसकी सूखे घास फूस की बनी हुई काया के साथ छू गई हो। और पगडी के ढीले होकर फिसल गए पल्ले को झपकते हुए उसन भीड म घबराकर रो रहे गुरजट को छाती से लगा लिया।

अनुवाद यश सरोज

सम्बन्ध

—गुलजार सिंह संधू

वह दफ्तर जाने के लिए दाढ़ी बना रहा था कि सामने वाले मकान में रोना-पीटना शुरू हो गया। शायद किसी की मौत हो गई थी। बस्ती में से आ रही भिन्न भिन्न प्रकार की बाकी सभी आवाजें बन्द हो गईं। केवल एक ही हूक थी जो पहले ऊँची होती और फिर मद्धिम हो जाती। इस्तरी करने वाले की रेढ़ी, डबल-रोटी बेचने वाले की साइकिल और मिट्टी का तेल बेचने वाले की ट्राइसाइकिल उस घर के आगे रुकती रुकती आगे निकल गई। अण्डे-डबलरोटीवाले ने तो आधी आवाज लगाने के बाद बाकी की आवाज बड़ी मुश्किल से रोकी थी। उस घर में भी हर रोज अण्डा और डबलरोटी की माँग होती थी, लेकिन आज के दिन तो वहाँ खड़ा होने में भी घाटा था। 'अण्डा की टोकरी उतारकर वहाँ तक सदेशा ही दे आ साइकिल पर,' कोई कह सकता था। और मौत के मामले में किसी को ना भी नहीं की जा सकती थी।

वह अटोक अपने चेहरे पर क्रीम लगाता और उस्तरा चलाता रहा। बरामदे में पालथी मारकर बैठे होने पर भी, ऊपर की मंजिल होने के सबब गली में हो रही घटना साफ दिखाई दे रही थी और सामने की निचली मंजिल के ठीक सामने वाले मकान में से आ रही रोने की आवाज भी उसी तरह सुनाई दे रही थी। आवाज किसी स्त्री की थी। उसने सोचा कि शायद किसी बच्चे को कुछ हो गया है। वह हर रोज इस घर में से दो-तीन बच्चे स्कूल की बस में चढ़ते देखता था। उसे याद नहीं आ रहा था कि आज सारे बच्चे जा चुके थे या कोई पीछे रह गया था। याद भी कैसे आ सकता था! उसको क्या पता था कि उस घर में कितने बच्चे थे। बच्चे-वालों को ही दूसरे बच्चों की होश खबर होती है। उसके अपने घर कोई बच्चा न होने के कारण, न कोई बच्चा उसके घर खेलने आता था और न ही उसके घर से कोई किसी के घर खेलने जाता था। कैसे पता लग सकता था कि किसके कितने बच्चे थे?

अचानक ही उसको खयाल आया कि अगर बच्चे को कुछ हुआ होता तो अब तक उसका पिता भी बाहर के बरामदे में आकर किसी और को दौड़ धूप करने के लिए आवाज देता। ऐसा नहीं हुआ था। हो सकता है पिता घर ही न हो। उसने कौन-सी पिता की शक्ल देखी थी कभी! या भी या नहीं। सुबह-सुबह दो-तीन

अधेड़ आयु के व्यक्ति इस जगह से स्कूटर स्टार्ट करते थे, आवाज़ वाले क्वार्टर का मालिक पता नहीं उनमें से कौन था। शायद उनमें से कोई इस घर में बच्चों का पिता भी था। शायद इस घर में बच्चे थे भी या नहीं।

रोने की आवाज़ और भी ऊँची हो गई। इस बार औरत की हूक इतने ज़ोर से निकली कि उसे बरामदे में बैठे-बैठे झुरझुरी लग गई। शेव करने के बाद चेहरा देखने के लिए पकड़ा शीशा हाथ में ही रह गया। इस औरत का आदमी मर गया है—पता नहीं किस उम्र का होगी, और पता नहीं इसका मर्द कितनी उम्र का था। लेकिन दुःख बड़ा ज़ोरदार था। कौन बाँट सकता था! औरत मर जाती तो आदमी दूसरा ब्याह करवा सकता था। आदमी मर गया तो औरत किसके आसरे ज़िन्दा रहेगी? बच्चों को उठाये उठाये डालती फिरेगी सगे-सम्बन्धियों के घर-घर। वह और-और की तरह सोचने लगा।

लेकिन उसको पति-पत्नी के दुःख या पति-पत्नी की साझेदारी की क्या खबर थी। जिस जीवन का अनुभव ही न हो, उस बारे में क्या सोचा जा सकता था! उसने तो पति पत्नी के रूप में या अपने माँ-बाप देखे थे या एक-दो रिश्तेदार। सदा लड़ते ही रहते थे, एक-दूसरे को काट खाने को दौड़ते थे। अगर किसी के आने पर हँस-हँसकर बातें करते भी थे तो दूसरों को दिखाने के लिए। वह यह भली प्रकार जानता था। शायद इसीलिए उसने शादी नहीं की थी। अब पचास का हो गया था, अब ब्याह की क्या उम्र थी?

उसने अपना चेहरा अच्छी तरह शीशे में देखा। झुर्रियाँ तो कम थीं, लेकिन मांस ज़रा ढीला हो गया था—एकदम लिपड़ी-सा। यह मुँह और मसूर की दाल! "अरे ठालू" उसने बाहर से आए नौकर को आवाज़ दी—"पानी गरम रख नहाने के लिए, और फिर मेरा सूट प्रेस करा ला, स्लेटी।" उसने इस तरह कहा जैसे प्रेस किया हुआ सूट पहनने से उसके चेहरे की मांस-पेशियाँ कस जाएँगी—"और हाँ, इधर री कौन रहा है? कौन मर गया?"

"वो साहब, सामने वाले साहब का कुछ हो गया है। पता नहीं मौत ही हो गई है। मेम साहब रो रही है। रोये ही जा रही है।

"बच्चे?"

"बच्चे भी घर में ही हैं। स्कूल जाने लगे हो थे कि साहब को दिल का दौरा पड़ गया।"

"अच्छा पानी गरम कर जल्दी,' उसने नौकर को काम में लगा दिया और आप दिल के दौरे के बारे में सोचने लग पड़ा। उसको भी दौरा पड़ सकता था। नौकर ने बताया था गुसलखाने में से निकलते ही गिर पड़ा था बेचारा। यह दिल भी बड़ी नाज़ुक चीज़ है। उसने अपने बारे में सोचना शुरू कर दिया। बचपन में एक बार झूला झूलने लगा था तो उसका दिल घबराने लगा था। प्रेमिका का

विवाह किसी और के साथ हुआ था तो तब भी कुछ इसी तरह की घबराहट हुई थी। उन्हीं दिनों में उसने दिल्ली से ताजमहल देखने के लिए जाते हुए मथुरा रोड पर जब किसी के बराबर अपना स्कूटर दौड़ाया था तो तब भी उसने अपने पीछे-पीछे आ रहे स्कूटर को अचानक आगे निकल जाने दिया था और आप सड़क के एक तरफ खड़ा हो गया था—दम लेने के लिए। मुफ्त में मौत को दावत देने का क्या फायदा था ?

वही हल्का-हल्का दर्द आज भी जाग उठा था। वह चुप-सा हो गया। नौकर सूट प्रेस करवाने के लिए गया तो वह पानी की बाल्टी उठाकर गुसलखाने में जा घुसा। टेलीफोन भी उठाकर गुसलखाने के पास रख लिया। गुसलखाने की सिटकिनी लगाए बिना ही नहाने लग पड़ा। घर में और कोई था ही नहीं। बदन पर पानी डालते हुए उसकी निगाह टेलीफोन पर थी। टेलीफोन का उसको बड़ा आसरा था। जैसे गुसलखाने के बाहर डाक्टर बैठा हो स्टूल रख के। दिल को जरा भी कुछ होता, गुसलखाने की सिटकिनी भी नहीं खोलनी पड़नी थी। डाक्टर को फोन किया जा सकता था। कपड़े पहनने की भी जरूरत नहीं थी। वह निश्चिंत हो गया था।

उसके देखते-देखते पड़ोसियों का बिलौटा खिड़की में से कूदकर टेलीफोन के पास आ बैठा, चुपचाप।

उसने बिलौटे के सम्बन्ध में सोचना शुरू कर दिया। इसको आज भूख नहीं लगी थी। शायद मालिकों के घर से ही पेट भरकर आया था। नहीं तो सदा 'म्याऊँ म्याऊँ' करता भूखा ही इस घर में दाखिल होता था और वह कुछ न-कुछ उसको डाल भी देता था—डबलरोटी का पीस, आमलेट का टुकड़ा या कोई मीट की नली। अगर खिलाने के लिए नहीं था तो पालतू रखने की क्या जरूरत थी ? कितना शरीफ था बेचारा ! एक-आध बार खाने को मांगता था, खाकर फिर नहीं मांगता था। लेकिन आज कुछ उदास बैठा था। वो जैसे चुपचाप बैठा था, उससे उसके भरे पेट होने का पता भी नहीं चलता था। शायद सामने के घर के विलाप से डर गया था। इतना ऊँचा रोने से क्या होता है ? शायद चोट बड़ी जबरदस्त थी। लेकिन रोने से कौन-सा गई जिन्दगी ने वापस लौट आना था ? उसको बिलौटे की हालत पर तरस आ रहा था। अब उसके अपने दिल की घबराहट बन्द हो चुकी थी। ध्यान बिलौटे की उदासी की ओर था। उसे सामने वालों की समझ नहीं आ रही थी कि वो इतना ऊँचा-ऊँचा क्यों रो रहे थे ?

नौकर सूट लेकर आया तो वह नहा चुका था। उसने शीशे में देखा तो उसके चेहरे की रंगत ठीक थी और आँखों में थी चमक। ढीले पड़े मांस का क्या कहना था ! उम्र के साथ हर एक का मांस ढीला पड़ने लग जाता है। उसने सूट पहनकर फिर देखा। उसको अपने चेहरे का मांस ठीक-सा ही लगा। अच्छे कपड़ों के साथ भी आदमी जँच जाता है। पन्द्रह वर्ष पूर्व जब उसने रेडियो के दफ्तर काम करते

अधेड आयु के व्यक्ति इस जगह से स्कूटर स्टार्ट करते थे, आवाजो वाले क्वार्टर का मालिक पता नही उनमे से कौन था। शायद उनमें से कोई इस घर के बच्चो का पिता भी था। शायद इस घर मे बच्चे थे भी या नही।

रोने की आवाज और भी ऊँची हो गई। इस बार औरत की हूक इतने जोर स निकली कि उस बरामदे म बैठे-बैठे झुरझुरी लग गई। शेव करने के बाद चेहरा देखने के लिए पकडा शीशा हाथ मे ही रह गया। इस औरत का आदमी मर गया है—पता नही किस उम्र की होगी, और पता नही इसका मर्द कितनी उम्र का था। लेकिन दु ख बडा जोरदार था। कौन बाट सकता था ! औरत मर जाती तो आदमी दूसरा ब्याह करवा सकता था। आदमी मर गया तो औरत किसके आसरे जिन्दा रहेगी ? बच्चा को उठाये-उठाये डोलती फिरेगी सगे-सम्बन्धिया के घर घर। वह और और की तरह सोचें सोचने लगा।

लेकिन उसको पति-पत्नी के दु ख या पति-पत्नी की साझेदारी की क्या खबर थी। जिस जीवन का अनुभव ही न हो, उस बारे मे क्या सोचा जा सकता था ! उसने तो पति पत्नी के रूप मे या अपने मा-बाप देखे थे या एक दो रिश्तदार। सदा लडते ही रहते थे, एक-दूसरे को काट खाने को दौडते थे। अगर किसी के आने पर हँस हँसकर बातें करते भी थे तो दूसरा को दिखाने के लिए। वह यह भली प्रकार जानता था। शायद इसीलिए उसने शादी नही की थी। अब पचास का हो गया था, अब ब्याह की काई उम्र थी ?

उसने अपना चेहरा अच्छी तरह शीशे म देखा। झुर्रियाँ तो कम थी, लेकिन मास बडा ढीला हो गया था—एकदम लिपडी-सा। यह मुह और मसर की दाल ! 'अरे ठोलू '' उसने बाहर से आए नौकर को आवाज दी—"पानी गरम रख नहान के लिए, और फिर मेरा सूट प्रेस करा ला, स्लेटी।" उसन इस तरह कहा जैसे प्रेस किया हुआ सूट पहनने से उसके चेहरे की मास-पेशिया कस जाएँगी—"और हाँ, इधर रो कौन रहा है ? कौन मर गया ? '

"वा साहब, सामने वाले साहब का कुछ हो गया है। पता नही मौत ही हो गई है। मम साहब रो रही है। राय ही जा रही है।'

"बच्चे ?"

"बच्चे भी घर मे ही है। स्कूल जान लग ही थे कि साहब का दिल का दौरा पड गया। '

"अच्छा पानी गरम कर जल्दी,' उसन नौकर को काम म लगा दिया और आप दिल के दौरे क बारे म सोचने लग पडा। उसको भी दौरा पड सकता था। नौकर न बताया या गुसलखान म से निकलत ही गिर पडा था बेचारा। यह दिल भी बडी नाजुक चीज है। उसने अपने बारे म सोचना शुरू कर दिया। बचपन म एक बार झूला झूलने लगा था तो उसका दिल घबरान लगा था। प्रेमिका का

विवाह किसी और के साथ हुआ था तो तब भी कुछ इसी तरह की घबराहट हुई थी। उन्ही दिनो मे उसने दिल्ली से ताजमहल देखने के लिए जाते हुए मथुरा रोड पर जब किसी के बराबर अपना स्कूटर दौडाया था तो तब भी उसने अपने पीछे-पीछे आ रहे स्कूटर को अचानक आगे निकल जाने दिया था और आप सडक के एक तरफ खडा हो गया था—दम लेने के लिए। मुफ्त मे मौत को दावत देने का क्या फायदा था?

वही हल्का हल्का दर्द आज भी जाग उठा था। वह चुप-सा हो गया। नौकर सूट प्रेस करवाने के लिए गया तो वह पानी की बाल्टी उठाकर गुसलखाने मे जा घुसा। टेलीफोन भी उठाकर गुसलखाने के पास रख लिया। गुसलखाने की सिटकिनी लगाए बिना ही नहाने लग पडा। घर मे और कोई था ही नही। बदन पर पानी डालते हुए उसकी निगाह टेलीफोन पर थी। टेलीफोन का उसको बडा आसरा था। जैसे गुसलखाने के बाहर डाक्टर बैठा हो स्टूल रख के। दिल को जरा भी कुछ होता, गुसलखाने की सिटकिनी भी नही खोलनी पडनी थी। डाक्टर को फोन किया जा सकता था। कपडे पहनने की भी जरूरत नही थी। वह निश्चित हो गया था।

उसके देखते-देखते पडोसियो का बिलौटा खिडकी मे से कूदकर टेलीफोन के पास आ बैठा, चुपचाप।

उसने बिलौटे के सम्बन्ध म सोचना शुरू कर दिया। इसको आज भूख नही लगी थी। शायद मालिको के घर से ही पेट भरकर आया था। नही तो सदा 'म्याऊँ म्याऊँ' करता भूखा ही इस घर मे दाखिल होता था और वह कुछ न-कुछ उसको डाल भी देता था—डबलरोटी का पीस, आमलेट का टुकडा या कोई मीट की नली। अगर खिलाने के लिए नही था तो पालतू रखने की क्या जरूरत थी? कितना शरीफ था बेचारा! एक-आध बार खाने को मागता था, खाकर फिर नही मागता था। लेकिन आज कुछ उदास बैठा था। वो जैसे चुपचाप बैठा था, उससे उसके भरे पेट होने का पता भी नही चलता था। शायद सामने के घर के विलाप से डर गया था। इतना ऊँचा रोने से क्या होता है? शायद चोट बडी जबरदस्त थी। लेकिन रोने से कौन सा गई जिन्दगी ने वापस लौट आना था? उसको बिलौटे की हालत पर तरस आ रहा था। अब उसके अपने दिल की घबराहट बन्द हो चुकी थी। ध्यान बिलौटे की उदासी की ओर था। उसे सामने वालो की समझ नही आ रही थी कि वो इतना ऊँचा-ऊँचा क्या रो रहे थे?

नौकर सूट लेकर आया तो वह नहा चुका था। उसने शीशे म देखा तो उसके चेहरे की रगत ठीक थी और आखो मे थी चमक। ढीले पडे मास को क्या कहना था! उम्र के साथ हर एक का मास ढीला पडने लग जाता है। उसने सूट पहनकर फिर देखा। उसको अपने चेहरे का मास ठीक-सा ही लगा। अच्छे कपडो के साथ भी आदमी जँच जाता है। पन्द्रह वर्ष पूर्व जब उसने रेडियो के दफ्तर काम करते

यह सूट पहना था तो एक बहुत ही सकोची और लजीली लडकी से भी प्रशसा किए बिना नही रहा गया था—"आपके सूट का रग इतना साफ है और कपडा इतना मुलायम कि जी करता है कि इसकी जेबो म हाथ डाल लू" जसे कह रही हो—'जी करता है तुम्हे कसकर गले से लगा लू।'

चलो छोडो, इन बातो म अब क्या रखा था! उससे कम आयु के लोग परलोक सिधारने लगे थे। मुश्किल से चालीस साल की उम्र होगी मामने वाले की, नौकर ने बताया था। कितना बडा जुल्म था! छोटे छोटे बच्चो का क्या बनेगा? बेवा किसके घर बैठेगी? इतनी अच्छी सेहत का मालिक था कि उसने जीवन का बीमा भी नही करवाया था। बीस बरस हो गए थे नौकरी करते, लेकिन अभी पक्का भी नही हुआ था अभी तक। एक दफ्तर म रहता तो पक्का होता। तरक्की के पीछे पडा रहा, दो बरस इस दफ्तर म तो चार बरस अगले म। नौकर पता नही क्या कुछ बताता जा रहा था, मरनेवाले के बारे म।

सब ही जा रहे है, मैं भी हो ही आऊँ। उसने सोचा। लेकिन वह किसी को भी नही जानता था। बिलौट वाले पडोसी के साथ थोडी बहुत दोस्ती थी। वह सुबह की डयूटी पर रेडियो के दफ्तर गया हुआ था। वहा जाकर मिलेगा भी तो किस को? किसी को जानता ही नही था। पास खडा कोई आदमी कोई काम ही बता द तो? सौ काम थे करने का। श्मशान घाट वालो के साथ सस्कार का समय नियत करना था। एम्बुलस बुक करनी थी। अर्थी, घडा, खम्मनी, पराली, चदन की लकडी पता नही क्या-कुछ वहाँ से मिलना था। पिछले दिनो म उसके दोस्त की गैर हाजिरी म दोस्त के पिता की मौत हो गई थी तो सारे सस्कार उसने ही किए थे। एक भी कदम पडे की इजाजत के बिना नही चल सकता था। बिजली श्मशान का सुझाव दिया था तो उसके दोस्त की पत्नी ने नही माना था। उसने जिस तरह रोकर कहा था वह भी दूसरी बार नही कह सका था। लेकिन यहा तो उस-को किसी न क्या कहना था! कोई जानता ही नही था उसका। कभी-कभी लिफ्ट में या सीढियाँ चढते-उतरते कोई सिर झुका देता था तो वह भी झुका देता था। उसकी नौकरी भी कोई इस तरह की नही थी जो लोगो के काम आ सकता। किसी के साथ उसका वास्ता नही पडता था और न ही उसके साथ किसी को। आबादी भी तो साँस नही लेने देती थी। चार हजार गज जगह नही होगी—छ ब्लाक थे हर ब्लाक की सात मजिलें और हर मजिल पर दस-पद्रह फ्लैट और हर फ्लैट म पाच छ स कम जीव नही रहत थ। उस जसे कितने थ अकेली जान, बस पद्रह-बीस और। किसके साथ साझेदारी करता और किसके साथ न करता। वह कर्जन रोड पर स गुजरती मोटरें देखने लग गया।

उसन अपना ध्यान फिर से मरनवाले क परिवार की ओर देना चाहा। एक पत्नी तीन छोटे छोटे बच्चे। क्या करेंगे बेचारे! और फिर उसको अण्डे बेचने-

वाला याद आ गया जो पिछले हफ्ते इन्फ्लुएंजा से मर गया था। अब उसकी जगह अण्डे कौन बेचा करेगा, उसने सोचा था। लेकिन दो चार दिना म ही, जो बेटा दुकान पर बैठा करता था, उसने अण्डे बेचने वाली साइकिल संभाल ली थी और जो उससे छोटा था वो दुकान पर बैठ गया था। हफ्ते मे ही काम उसी प्रकार चल पडा था। लेकिन इस सरकारी नौकर के परिवार का क्या बनेगा, बेचारे का, जिस को प्रॉवीडेंट फड के चार पैसा के सिवा कुछ नही मिलना था। मारे मारे फिरेंगे रिश्तेदारो पर बोझ बनते और उनसे धक्के खाते ! नाश्ता करते हुए वह इस प्रकार की अनेक सोचें सोचता रहा। कच्ची नौकरी भी झझट है। लेकिन वह किसी का क्या कर सकता है ?

नाश्ता करके उसने आदमकद शीशे म स्वय को सिर से लेकर पैरा तक देखा। कोट के कॉलर मे गुलाब का फूल लगाया और दफ्तर जाने के बारे म सोचने लगा। वह अभी गुलाब के फूल के सम्बन्ध म ही सोच रहा था कि उसके पैरो के पास कुछ सरका। उसने देखा बिलौटा धीरे धीरे चल रहा था। सामने वाले घर की मौत से पैदा हुई चुप मे वो भी चुप हो गया था। जानवरा को कितनी समझ होती है ! उसने अपने कोट के कालर पर लगाये फूल को एक बार फिर देखा और उसका मन हुआ कि आज अपने दफ्तर जाने के बजाय रेडियो के दफ्तर मे काम करते परिचित हुइ उस लडकी से ही मिल आए जिसके चेहरे पर उसने कभी उदासी नही देखी थी। वो वसी की वैसी हँसमुख थी, ब्याह से पहले की तरह ही। उसको मिले जमे मुद्दतें ही हो गई थी। विवाह के कितनी विरुद्ध थी विवाह से पहले ! 'सरकारी नौकरी म इतना तो प्रावीडेंट फड मिल ही जाता है कि आदमी एक मकान बनवा ले। मकान के लिए किरायेदार भी मिल जाते हैं और उनके बच्चे भी होते हैं। घर का घर, परिवार का परिवार !'—वो कहा करती थी। अब कितनी खुश थी अपने पति के साथ—जैसे रब मिल गया हो। चलो उसके रब का ही पता करते है। और नही तो चार बातें ही करेगी। उसका चेहरा देखत ही उदासी दूर हो जाती है। यहाँ तो हर तरफ उदासी ही उदासी है। बिलौटा कैसे पत्ते की तरह डोलता घूमता है ! उस लडकी के बिना इतनी उदासी को कोइ दूर नही कर सकता। उसने रेडियो स्टेशन जाने का फसला कर लिया।

मौत वाले घर के बाहर जमा हुइ भीड उसको फिर अपनी जगह ले आती है। बेचारो के साथ कितना जुल्म हुआ है ! लेकिन वह भी क्या कर सकता है ! जानता भी तो नही कि कौन मर गया है। सवेरे पता चलेगा कि तीनो म से किस व्यक्ति ने स्कूटर स्टाट नही किया। शायद स्कूटर वाला ही मरा है कोई।

रेडियो स्टेशन जाने के लिए चलने लगता है तो उसके पैर पर बोझ पड जाता है, जैसे किसी ने कबल फेंक दिया हो। लेकिन यह तो बिलौटा है। कसे मुडकरी मारकर बैठा है—चुप और उदास। शायद इसको फश ठडा लगता है। और अब

तक उसके पैरो की उष्णता ने उसके बूटो के पजे का चमडा भी तत्ता कर दिया है। जानवर का कितनी समझ होती है ! कैसे ठडे फश से बचकर गरम बिछौने पर आ बैठा है !

जानवर को पनाह और उष्णता देने की अनुभूति ने उसके अपन मन मे भी एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न कर दी। उसका मन हुआ कि बिलौटे को अपनी शरण मे बठा देखता रहे। कितने मूख हैं साथ के घरवाले ! जानवर पाल लेते हैं, न खाने को पूरा दे सकत हैं और न सर्दी गर्मी से बचाव करते हैं। उसके घर किस चीज की कमी थी ! कभी भूखा नही जाने दिया बिलौट को। शीशे के सामने वाले स्टूल पर बैठकर वह उसको प्यार से सहलाने लगता है। पहले भी जब कभी बिलौटा उसके साथ प्यार करता था तो वह इसी तरह उसके प्यार का मान किया करता था। लेकिन अब उसको रेडियो के दफ्तर जाने म देर हो रही थी।

उसने ताला लगाने से पहले बिलौटे को उठाकर जब बाहर रखा तो उसम जान ही नही थी।

"साथ के घरवालो ने इसका जहर की गोलियाँ दे दी हैं। उनके घर लडका है, आठ-दस दिन का। बिलौटा उसमे खेलने लग जाता था। उन्होने सोचा कि कही नाखून ही न मार दे।' नौकर ने गुस्से और उदासी के मिले जुले भाव मे कहा।

"जाहिल कहीं के !' उसने साथ के घरवाला को गाली दी और मर हुए बिलौटे को उठाकर अन्दर ले आया। बिलौटा अभी ठडा नही हुआ था। उसके पशमीने जैसे रोआ को सहलात हुए उसकी आखा से जसे आसू वह निकल। उसने कोट के कॉलर मे से फूल निकालकर परे फेंक दिया, और आप आरामकुर्सी म ढह गया !

अब उसको रेडियो वाली लडकी भी भूल चुकी थी।

अनुवाद यश सरोज

बर्फ

—जसवन्त सिंह विरदी

उसकी कृश काया, स्वागत करती हुई मुस्कराहट और आँखों की गहराई में डूबती-उभरती ज्योति—उसका समूचा व्यक्तित्व सडक पर साकार हो गया है।

बस से उतरा हूँ और सडक पर कोई विशेष भीड नही है। मैं इच्छानुसार जिधर भी चाहूँ जा सकता हूँ। सडक की उत्तर दिशा म मेरा घर है और पूव दिशा मे वह रहती है। मैं सडक के किनारे खम्भे की भांति खडा हूँ।

अकस्मात् यह खम्भा चलने लगा है, पूव दिशा को। परन्तु सन्ध्या की धुन्ध म इसका प्रकाश उत्तर दिशा मे फल गया है।

मैं देख रहा हूँ कि मेरी पत्नी ने अँधेरे से बचने के लिए खिडकियाँ बन्द कर दी है और दीपक के प्रकाश की सहायता से बिछौने बिछा रही है। बच्चे खाना-खाकर आपस म लडने लग है, परन्तु वह उनकी ओर से विरक्त अँधेरेकी ओर देख रही है जहा मेरी परछाइ हीन आकृति नजर आती अनुभव होगी।

परन्तु खम्भा तो पूव दिशा की ओर जा रहा है।

तू किधर जा रहा है?' मैं पूछता हूँ।

'जहा तू जाना चाहता है।'

'मैं?'

'हा, तू!'

अपने प्रकाश को पीछे छोडकर खम्भा फिर आगे बढ रहा है। अभी तो सन्ध्या ही डूबी है। मिलने म क्या बुराई है? कुछ क्षण बातें करूँगा और लौट आऊँगा। परन्तु जब भी मैं मिलने के लिए जाता हूँ तो उससे मिलने की मेरे मन म कोई इच्छा नही होती। मैं उसे कुछ ऐसे अवसरा पर मिला हूँ जबकि उसका पति घर म नही होता और वह, या तो बच्चा के सग खेला करती है अथवा कुछ सोचती नजर आती है। मेरे पहुँचने पर, मुझे देखकर मुस्कराती और बैठने के लिए कहती है। उसके पति के घर न होने पर मैं रुकना नही चाहता, परन्तु लौट भी नही पाता।

'आजकल आप क्या लिख रहे है?" वह पूछती है।

"लिखने के लिए बहुत कुछ है!"

"हाँ, लिखने के लिए तो बहुत-कुछ है!" मेरी बात दुहराकर वह मेरे साथ

ही बढ जाती है। उस समय मैं सोचता हूँ कि तत्काल उसका पति भी आ सकता है तथा कोई और सम्बधी भी। हृदय धडकने लगता है। मैं कुछ विचलित हो जाता हूँ और जल्दी जल्दी म पूछता हूँ—

"तुमने क्या लिखा है?"

"कुछ नही!"

"क्यो?"

"ऐसे ही ।'

"लिखने के लिए ता बहुत कुछ है!"

"हाँ।"

"फिर?"

"लिखने योग्य सब-कुछ मर रहा है।"

उस समय लगता है जैसे वह मेरे कधे के साथ कधा लगाकर बैठ गई हो, क्योकि उसकी सासो की उष्णता तीव्रता से अनुभव होती है। परन्तु, शायद ये मेर ही साम हो और वह कधा भी मेरा ही कधा हो! मैं निणय नही कर पाता।

मैं सचमुच कोई निणय नही कर पाता और कितनी देर तक बठा इधर-उधर की बाते किया करता हूँ।

पता नही कैसे, मैं सोचता हूँ कि वह स्त्री अभी ही मरे सामने नग्न हो जाएगी और मैं म सहानुभूति के अतिरिक्त उसे कुछ भी नही द पाऊँगा। और

परतु ऐसा कुछ नही होता और बाते बीच म ही छोडकर मै चला आता हूँ। अगले दिन उसका पति मुझसे कहता है

"तुम आये और ठहरे भी नही?"

"तुम घर नही थे और '

"फिर क्या हुआ? तुम रुक जाते!'

"मैं क्या रुकता? जब भी जाता हूँ यू ही होता है। तुम बहुत देर स आते हो?"

"कभी कभी देर हो जाती है।'

"जल्दी आ जाया करो!'

बात और आगे नही बढती और मुझे कभी भी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर नही मिलता।

अब भी जब मै उसके घर की ओर जा रहा था तो अपने को दोषी समझ रहा था क्योकि उसका पति अवश्य ही घर नही होगा शायद घर मे ही हो शायद न हो

इस समय फिर मैं अनुभव करता हूँ कि वह घर म अकेली होगी और और फिर मैं उसे अपने सामने बिल्कुल नग्न रूप मे साक्षात देखता हूँ, यद्यपि मेरी ऐसी

नाई इच्छा नही है। मैंने कभी इस प्रकार नही सोचा और अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी भी स्त्री का नग्न शरीर नही देखा। मेरे मन मे इच्छा भी नही।

मैं बहुत धीरे धीरे चल रहा था। फिर भी शायद मैं उसके घर से बहुत आगे निकल गया था। या शायद उसका घर अभी बहुत दूर था। अँधेरे म कुछ भी अनुभव नही होता था अँधेरे मे कुछ भी अनुभव नही होता।

मैं एक खम्भ की भाँति खडा था। वैसे मेरा खम्भा भी मेरे सग था, परन्तु उसकी रोशनी बहुत मद्धिम थी।

आई-ओ राड पर, सामने छोटा-सा पाक था और चारो ओर लोगो ने अपनी कोठिया की चारदीवारिया म गेट लगाकर बन्द किए हुए थे। उनमे से एक कोठी का गेट खोलकर कारीडोर को पार करके पहले कमरे म पहुँचना था, जहाँ वह मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। नही, अपने पति की प्रतीक्षा कर रही होगी, या उससे सटकर बठी होगी। कवयित्री होने पर भी मैंने उसे कभी लिखते नही देखा था। मेरी मनोकामना ने नारी का काय-क्षेत्र कितना सीमित कर दिया था!

पिछली बार जब वह मुझे मिली थी तो उसने वादा किया था कि वह अवश्य लिखा करेगी, परन्तु कुछ दिन ठहरकर। उस समय वह बच्चे की माँ बनने वाली थी। अब वह दो पुत्रो की माँ बन गई थी। (उसकी सबसे बडी बेटी देहरादून मे कान्वेण्ट स्कूल म पढती थी।) दो पुत्रो की माता होने के कारण मेरी पत्नी की दृष्टि म वह आदरणीय हो गई थी। वह बेटे की इच्छुक थी और कभी-कभी मुझे व्यग्य से कहती—"वहाँ जाते तो रहते हो, उसम एक पुत्र ले आओ!"

"ले आऊगा!"

"पर अपने जसा।"

" "

मैं उसे कई बार समझा चुका था कि एसी कोई बात नही है। वह सन्देह न किया कर, मैं उसका बहुत सम्मान करता हूँ, वह बहुत बढिया कविता लिखती है और मेरा आदर करती है।

पत्नी केवल मुस्कराती और उसकी आँखो की ज्योति मे मेरा दोषी प्रतीत हो रहा चेहरा काँपता, डोलता। क्योकि मेरे मन म कोई बुरी भावना नही थी, इसलिए मैं कभी भी उसे विश्वास दिलाने का प्रयत्न नही करता था। वह भी विचलित नही होती थी।

परन्तु मैं विचलित रहता था, क्योकि हर बार मैं उसे अकेली को ही मिला था और उसके सासो की उष्णता अनुभव की थी। मेरी कल्पना यही दृश्य प्रस्तुत करती कि मेरे पहुँचने तक या तो उसका पति स्टूडियो से नही लौटा अथवा मेरे पहुँचने से पहले ही वह कही बाहर चला गया है।

उसका चित्रकार पति मेरा परम मित्र था और मेरे साथ बहुत-सी खुली बातें करता था। कई बार व्यंग्य विद्रूप की बातें भी होतीं।

मैं कहता—"तुम सन्ता के बारे में कुछ लिखो!"

"नहीं, तुम लिखो!"

"पहले तुम लिखो!"

"मैं उसके संग सोता हूँ इसलिए लिखूँ?"

"जो कुछ भी है!"

"तुम भी सोकर देख लो!"

उसकी यह बात वातावरण में बिखर जाती, न मैं ही उत्तर देता और न उसे ही उत्तर की आशा होती। दोनों ज़ोर से हँसते, जैसे किसी तीसरे व्यक्ति की बातें करके हँस रहे हों।

उसके घर में जब कलाकारों और लेखकों की महफ़िलें लगती हैं तो मैं कभी भी उनमें नहीं होता। उस अवसर पर वह अवश्य ही उन लोगों के संग खुलकर हँस रही होगी। मुस्कराकर चाय 'सर्व' कर रही होगी। शायद मैं यह सब-कुछ न देख सकूँ। अब मैं जब आईं-ला पार्क के किनारे खड़ा था, तो बिल्कुल दूसरे किनारे पर उसका घर था—कॉरीडोर को पार करके पहला कमरा। प्रकाश खिड़कियों से फूट रहा था और अक्तूबर के अंतिम दिनों की शीतल वायु से पर्दे झूल रहे थे (मैंने अनुभव किया)। नीरवता समूचे जाल-घर पर फैल गई थी।

अब वापस लौटने की कोई तुक नहीं—मैंने सोचा और मैं अल्दी में पार्क की झाड़ियों की परछाइं रौंदता दूसरे किनारे पर पहुँच गया। प्रकाश की लिपट द्वारा मेरी आँखें तत्काल अन्दर पहुँच गई।

कमरे का दरवाज़ा बन्द था, परन्तु चिटखनी नहीं लगी थी। मन दो बार आवाज़ दी। दरवाज़े पर दस्तक भी दी और यह सोचकर कि अन्दर बैठा व्यक्ति अब तक सावधान हो गया होगा, अन्दर चला गया।

अन्दर वह पलँग पर बैठी छोटे बेटे को दूध पिला रही थी। उसका गोल चेहरा चमक रहा था और आंखों की ज्योति से कमरा भरपूर प्रतीत हो रहा था। कैसा 'मूँदिया' प्रभाव था उसका।

"आ जाओ!"

मैं अन्दर तो चला ही आया था, क्षण भर में कुर्सी पर बैठ गया। उसका पति अन्दर नहीं था, नहीं तो अब तक मेरे सामने आ बैठता।

"आजकल आप दिखाई नहीं देते। बहुत-कुछ लिख रहे हो?"

'हाँ, लिखने के लिए बहुत-कुछ है। तुमने कुछ नहीं लिखा?' वह मौन रही।

"तुम्हें बहुत-कुछ लिखना चाहिए। तुमने वादा भी किया था।"

"हाँ!"

"फिर ?"

"जीवन में हलचल उत्पन्न करनेवाला कुछ भी नही !"

मैं कहना चाहता था 'हलचल तो क्षण-भर में उत्पन्न हो सकती है', परन्तु खामोश ही रहा।

पलँग के पिछली ओर मौन खड़े दर्पण में हमारी आकृतियां थिरक रही थी। मेरा चेहरा कुछ बेचैन नज़र आता था, कुछ विचलित। परन्तु कई बार दर्पण में भी प्रभाव बिखर जाता है।

बड़ा बेटा पहले ही सो रहा था। छोटे को भी उसने पालने में लिटा दिया।

"मुझे तुम्हारा यह शाहकार देखना था।"

"ऐसे शाहकार हरेक माँ के पास हैं !"

"फिर तुम और क्या चाहती हो ?"

मेरी बात अनसुनी करके वह रसोई-घर की ओर चल दी

"चाय न बनाना !" शून्य को भग करते मैंने कहा।

"क्या ?" उसने मुड़ते हुए पूछा।

"जगदेव के आने पर ही पीऊँगा।"

"वह तो पिछले सप्ताह से दिल्ली गए हुए है आपको मालूम ही है !" और उसने मुह दूसरी ओर कर लिया।

मेरे हृदय की धड़कन जैसे रुक गई ! (रुकी नही !) मुझे इतना भी स्मरण नही रहा। अब यह औरत मेरे बारे में क्या सोचेगी ? जान-बूझकर मैं इसे एकान्त में मिलने क्यो आया हूँ ?

उस समय मुझे अपने घर का प्रकाश दिखाई दिया और पत्नी की मुस्कराहट भी। परन्तु अगले क्षण सब-कुछ अँधेरे में खो गया।

मैंने अधीरता से कहा—"पिछले दिनो तुम्हारे पिता जी आए हुए थे ?'

"हां !"

"मुझसे नही मिलाया उन्हे ? '

"खयाल ही नही रहा !" उसने सहजता से कहा।

"उनकी शक्ल-सूरत तो बिल्कुल मेरे पिताजी से मिलती है और कद-काठी भी।'

वह बिल्कुल मौन थी। परन्तु मैं निरन्तर बोलता जा रहा था, जल्दी-जल्दी में, कांपती आवाज में।

(मेरा स्वयं से नियन्त्रण उठ गया था और किसी क्षण भी मेरा आत्म-विश्वास स्खलित हो सकता था !)

इकन्नी

—देवेन्द्र सत्यार्थी

"इसे रख लो। नहीं मत कहो। देखने में यह इकन्नी है, पर इसकी कीमत सचमुच इससे कहीं ज्यादा है। बस, रख भी लो इसे। मेरे पास ले-देकर यही एक इकन्नी है। चाहे यह तुम्हारी मजदूरी नहीं चुका सकती।'

यह कहकर मैंने रामू मोची की हथेली पर इकन्नी रख दी। पूरा आधा घण्टा लगाकर उसने मेरे बूटों की मरम्मत की थी। मजदूरी की बात उसने मेरे इन्साफ पर छोड़ दी थी। इकन्नी जेब में डालते समय उसने आँखें फाड़कर मेरी ओर देखा और फिर शायद खीसे में उसे मसलने लगा।

उसे क्या पता था कि इस इकन्नी से मेरी एक कहानी जुड़ी हुई है।

मुझे दिल्ली से कुण्डेश्वर जाना था। ललितपुर तक रेल का सफर था। आगे लारी जानी थी। कई दिन तो इसी खींचातानी में गुजर गए कि आज रुपया मिले, कल मिले।

दिल्ली में अखबार-नवीसों की कॉन्फ्रेंस हो रही थी। मेरा एक मित्र जो कुण्डेश्वर से निकलनेवाले 'मधुकर' में काम करता था, इस सिलसिले में दिल्ली आया। उसने मुझे अपने साथ चलने के लिए बहुत मजबूर किया। मैंने काम का बहाना लगाकर बात को टाल दिया। वह मान गया। पर लगे हाथ वह मुझे बता गया कि ललितपुर तक पाँच रुपए का टिकट लगता है। आगे कुल पन्द्रह आने लारी के लिए काफी हैं।

एक हफ्ता गुजर गया। मैं कुण्डेश्वर की तैयारी नहीं कर पाया। रुपए का इन्तजार था। ससुरा रुपया भी कभी-कभी बहुत तरसाता है। और चाहे मेरे सफर के हालात पैसे की तंगी से भरपूर हैं दिल्ली की वह तंगी मुझे सदा याद रहेगी।

जिस दिन मैं दिल्ली पहुँचा मेरे पास कुल चार-पाँच आने थे। वे छोटी छोटी जरूरतों पर खर्च हो गए। जहाँ से रुपया मिलना था, नहीं मिला। पर मैंने अपने चेहरे पर घबराहट के निशान नहीं आने दिए।

नई दिल्ली में, जहाँ मैं अपने एक मित्र के पास ठहरा हुआ था मैं अक्सर पैदल ही शहर पहुँचता और फिर पैदल ही अपने ठिकाने पर लौटता। नित्य मुझे वापस आने में देर हो जाती। मेरा मित्र हँसकर इसका कारण पूछता। मैं भी हँसकर बात आई गई कर छोड़ता। कभी कहता कि मेरी जेब खाली है।

खाली जेब की कोई खास चिन्ता मुझे कभी कभार ही होती है। अब यह इकन्नी इस मोची को देकर मेरी जेब खाली हो गई। फिर क्या हुआ ! मैं खुश हूँ।

एक दिन रात को दिल्ली में एक मित्र के घर मेरी दावत थी। इसी में दस बज गए। अब वापस नई दिल्ली लौटना था। मैं पैदल ही चल दिया। हौसला हारना मैंने सीखा ही नहीं।

पास से एक तांगा गुजरा। मैंने आवाज दी—

"तांगा !"

तांगा रुक गया। एक सवारी पहले बैठी थी। तांगेवाला बोला—

"कहां जाओगे ?"

"जहां भी ले चलो।"

"वाह ! जहां भी ले चलूं कहां ले चलूं ? मैं तो नई दिल्ली बारहखम्भा जा रहा हूं।"

"मुझे भी वहीं ले चलो।"

"तीन आने लगेंगे। रात बहुत गुजर गई है। दूसरा तांगा मिलने से रहा।"

"पर भाई, मेरे पास पैसे हैं ही नहीं।"

"हैं ही नहीं ! जी, यह मखौल न करो। यह ठीक नहीं।"

"मैं मखौल नहीं करता। मेरे पास सचमुच पैसे नहीं हैं।"

तांगेवाला कोई भला आदमी था। उसे तरस आ गया। कहने लगा—

"अच्छा, बैठ जाओ। आपके तीन आने मैं रब्ब से मांग लूंगा।"

"बहुत अच्छा।"

तांगा चला जा रहा था। मैं सोच रहा था कि जब रब्ब ने खुद मुझे ही तीन आने नहीं दिए तो वह मेरे हिसाब में से इस तांगेवाले को तीन आने कहां से देगा ?

मेरे दिल में कई तरह के ख्याल उठ-उठकर बैठते गए। रब्ब क्या बला है ? कुछ लोग कहते हैं कि रब्ब का ख्याल केवल एक भ्रम है क्या यह सचमुच एक भ्रम है ? क्या मैं रब्ब में उतना ही यकीन रखता हूं जितना यह गरीब तांगेवाला ? अगर नहीं तो मैंने यह कैसे मान लिया कि वह जरूर मेरे हिसाब में से रब्ब से तीन आने वसूल कर पाएगा ? उस समय मुझे वह घटना याद आई जब मैंने एक सवाल के जवाब में अपने एक लेखक मित्र को बताया था कि अगर रब्ब न भी हो तो केवल अपनी ओर के लिए एक फर्ज जरूर कर लेना चाहिए। फिर मैंने सोचा कि इस तांगेवाले ने जरूर मुझे कोई साधु समझ लिया है। सिर के लम्बे बाल और दाढ़ी के कारण अक्सर लोगों को घपला लग जाता है। और अगर उसे पता लग जाए कि सचमुच रब्ब पर यकीन रखने की जगह मैं केवल एक फर्जी रब्ब को मानता हूं तो वह झट से मुझे अपने तांगे से उतार देगा।

साथ का मुसाफिर कहने लगा—

"आप क्या काम करते हैं ?"

मैंने जवाब दिया—

"मैं लोकगीत इकट्ठे करता हूँ।"

"किस कम्पनी की ओर से ?"

"नहीं जी, यह मेरा अपना शौक है।"

"अपना शौक है पर यह दुनिया है जी ! पैसा कमाने के ही तो सारे धंधे हैं !"

"पर मैं तो यह काम केवल पैसे कमाने के लिए ही नहीं कर रहा !"

"घर से अमीर होंगे ?"

"घर से मैं रुपया नहीं लेता।"

"तो रोटी और सफर का खर्च कहाँ से करते हो ?"

"रिसालों और अखबारों में कुछ लेख देकर पैसा कमा लेता हूँ। और मैं सच कहता हूँ कि अगर ये पैसे मिलने बन्द भी हो जाएँ, तो भी मैं यह काम छोड़ूँगा नहीं।"

"आप जरूर कोई साधु होंगे ?"

"नहीं जी, मैं तो एक गृहस्थ हूँ। मेरी पत्नी और बच्ची जो अक्सर सफर में मेरे साथ रहती हैं, आजकल गाँव गई हुई हैं।"

"ठीक।"

"ठीक चाहे बेठीक, कुछ भी कह लो। इस समय तो मैं भी इस ताँगेवाले की तरह मजदूर हूँ। फर्क केवल इतना है कि उसे नकद मजदूरी मिलती है और इस गरीब लेखक को कभी-कभी अखबार या रिसालेवाले टाल मटोल करते चले जाते हैं। नहीं तो आज यह दशा नहीं होती कि मैं मुफ्त ताँगे की सवारी माँगूँ। यह तो इस आदमी की दया है कि इसने मेरे हिसाब के तीन आने रब्ब से ले लेने की बात कहकर मुझे एहसान के भार से भी मुक्त कर दिया है।

सड़क पर बिजली की रोशनी थी। पर उसके मुकाबले में गरीब ताँगेवाले का लैम्प बहुत मद्धिम लगता था।

ताँगेवाला हमारी बात बड़े ध्यान से सुन रहा था। उसे खुश करने के लिए मैंने कहा—

"जी, मैं समझता हूँ कि ताँगेवाले की कमाई लहू-पसीने की कमाई है। अगर मुझे फिर कभी इस दुनिया में आदमी की योनि मिले तो मैं चाहता हूँ कि किसी ताँगेवाले के घर जन्म लूँ।"

ताँगेवाले ने कहा—

"जी, इस तरह मत कहो। हम तो दिन में सौ झूठ बोलते हैं। और मैं तो

चाहता हू कि आपको नजात मिले। जन्म लेना और मर जाना जी, यह तो बहुत सख्त परीक्षा है।"

दिल्ली मे वे दो हफ्ते मैंने बडी दौड-धूप मे गुजारे। खाने-पीने की कोई तकलीफ नही थी। पर कई मील पैदल चलना और वह भी अपना वजनी बैग उठाकर, कुछ आसान काम नही था। मित्र से मिलना और गीतो की तलाश मे जगह जगह जाना जरूरी था।

कुण्डेशर से पत्र आया। लिखा था—जल्दी आ जाओ। यह चौबे जी का खत था। अब वहाँ जाना और भी जरूरी हो गया था। अपने मित्र से मैंने सात रुपए उधार लिये। पाँच रुपये पन्द्रह आने किराए के लिए और एक रुपया और एक इकन्नी ऊपर के खर्च के लिए।

आठ आने तो स्टेशन तक ताँगेवाले का देने पडे। बाकी बचे साढे छ रुपए। टिकट-घर की खिडकी पर पहुचा तो पता चला कि ललितपुर तक पाच रुपए का नही, बल्कि पाँच रुपए ग्यारह आने का टिकट लगता है। "यह भी चगी हुई!" तो क्या उस कुण्डेशरवाले मित्र ने मखौल किया था? अपनी कमजोर याददाश्त पर मैंने बडा हल्का महसूस किया, और कोई रास्ता भी तो नही था। जो होगा, देखा जाएगा। मैंने ललितपुर का टिकट ले लिया और कुली से असबाब उठवाकर गाडी मे जा बैठा।

एक इकन्नी कुली को दी।

अब जब बाकी के पैसे गिने तो कुल साढे दस आने निकले। अब यह याद आया कि डेढ आना दिन मे ताँगे पर खर्च हो गया था। साढे दस आन कुल साढे दस आने। दिल म कई उतार-चढाव आए। फिर किसी तरह दिल को दिलासा दिया। ललितपुर तो पहुँचू फिर देखा जाएगा।

रात भर रेलगाडी का सफर रहा। नीद नही आई। अगली सुबह ललितपुर आ गया। कुली असबाब बाहर ले आया। पता चला कि लारी के अड्डे तक ताँगे वाले को एक दुअन्नी देनी होगी। मेरी जेब म कुछ साढे दस आने थे। बडी मुश्किल से कुली को दो पैसे मे भुगताया और तागेवाला एक इकन्नी पर मान गया।

तागा चला जा रहा था। साथ की सीटवाले एक नौजवान से मैंने पूछा—

'क्यो भाई, कुण्डेशर का यहाँ से क्या लगेगा?"

यह सवाल मैंने ऐसे लहजे म किया था कि उसे यही महसूस हो कि मैं इस सिलसिले म बिल्कुल अनजान हूँ।

वह बोला—

"केवल पन्द्रह आने।"

"पन्द्रह आने ! पर भाई, मेरी जेब में तो केवल दस आने रह गए हैं और इनमें से एक इकन्नी इस ताँगेवाले की हुई समझो। और मेरे पास रह गए केवल नौ आने।"

"नौ आने? तो बाकी के छह आने कहाँ से लाओगे?"

"यही तो चिन्ता है, कोई उपाय हो तो बताओ!"

"अब मैं क्या जानू, भई? मैं तो अभी विद्यार्थी हूँ। सच जानो, मेरे पास होते तो मैं टिकट ले देता। और मुश्किल तो यह है कि मैं बाहर से पढ़ने आया हूँ। कोई मुझे उधार देगा नहीं।"

मैं चुप हो गया। और सच मानो, यहाँ पर पहुँचकर ऐसे एकदम चुप हो जाने के कारण ही मैं उस विद्यार्थी पर रौब नहीं डाल पाया।

वह भी कुछ मिनट तक चुप बैठा रहा। ताँगा चला जा रहा था और मैंने ताँगेवाले से कहा—

"भाई अगर तुम अपनी इकन्नी मुझसे नहीं लो तो मेरी मुश्किल कम होकर छ आने से पाँच आने ही रह जाती है।"

वह बोला—

"ना जी, मैं अपनी इकन्नी जरूर लूगा। ऐसे इकन्नियाँ छोड़ने लगा तो मेरा घोड़ा भूखा मर जाएगा। और घर जाकर औरत की गालियाँ अलग खाऊँगा।"

उसे यह शक हो गया कि मैं अड्डे पर पहुँचकर इकन्नी देने से इन्कार कर दूगा। उसने ताँगा रोक लिया। बोला—

"अड्डा अब दूर नहीं। इकन्नी दे दो।" मैंने इकन्नी उसके हाथ पर रखी, तब वह कहीं आगे चला।

उस विद्यार्थी ने पूछा—

"क्या काम करते हो?"

"मैं हर भाषा के लोकगीत इकट्ठे करता हूँ।"

"ठीक-ठीक, 'विश्वमित्र' में मैंने गीतों पर एक लेख पढ़ा था। आपका ही होगा।"

मैंने 'हाँ' में सिर हिलाया। काम बनता देखकर मैंने उसे बिगाड़ना ठीक नहीं समझा। नहीं तो मैं पूछता किस माह के 'विश्वमित्र' की बात और लेखक का नाम क्या था?

वह पूछने लगा—

"आपका नाम?"

मैंने अपना नाम बताया और वह बोला—

"वह लेख मैंने बड़े शौक से पढ़ा था। वह ज़रूर आपका ही होगा। यह बहुत बड़ा काम है जी!"

इस प्रशंसा ने मुझे और भी शर्मिन्दा कर दिया कि यह बहुत बड़ा काम है। अगर यह बहुत बड़ा काम है तो मेरी माली हालत इतनी खराब क्या है? लॉरी का टिकट लगता है पन्द्रह आने का और मेरे पास है केवल नौ आने।

वह बोला—

"अब आप चिन्ता न करें। मैं आपका बन्दोवस्त अपने जिम्मे लेता हूँ। आप किसी से यह नहीं कहना कि आपके पास पैसे थोड़े हैं। लॉरी में बैठ जाना। अभी लारी दो घण्टे तक चलेगी, तब तक मैं देख लूंगा।"

अड्डे पर पहुँचकर उसने मुझे आराम से लारी में बिठा दिया। वह खुद टिकट-कण्डक्टर से जाकर मिला। क्या पता, उसने उससे क्या-क्या सच झूठ बोला। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वह उसे साथ लेकर मेरे पास आया और कहने लगा—

"वे नौ आने इन्हें दे दो। ये आपको कुण्डेशर का टिकट देते हैं।'

मैंने बटुआ खोला। नौ के नौ आने बड़े गौर से देखे, लेकिन बाहर केवल आठ आने निकले। ये उसे पकड़ाते हुए मैंने कहा—

"आप आज्ञा दें तो मैं इकन्नी रख लेता हूँ। कुण्डेशर में जरूरत पड़ेगी। सड़क से चौबेजी के मकान तक असबाब ले जाने वाले कुली को दे दूंगा। वहाँ पहुँचते ही यह तो मैं जाहिर करने से रहा कि मेरी जेब में एक इकन्नी भी नहीं है।"

"हाँ-हाँ, इकन्नी आप खुशी से रख लें।"

कुण्डेशर पहुँचा तो सड़क पर चौबेजी का एक मित्र मौजूद था। उसने असबाब घर पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया।

वह इकन्नी मेरे पास बच रही। इसे मैंने सँभालकर जेब में रख लिया।

जब कभी चौबेजी को पान की जरूरत पड़ती, मैं झट अपनी जेब में से निकाल कर दिखाता और कहता—

"पैसे मैं दूंगा।"

चौबेजी नहीं-नहीं कहते हुए उसे वापस कर देते। जब मैंने रामू से बूट मरम्मत करा के उसे इकन्नी देते हुए कहा—

"इसे रख लो। नहीं मत कहो। देखने में यह इकन्नी है, पर इसकी कीमत सचमुच इससे कहीं ज्यादा है।' मेरी आँखें तर हो गईं। मैंने देखा कि रामू की आँखें भी तर थीं। उसे सारे दिन में उस इकन्नी के अलावा और कुछ नहीं मिला था। उसने सोचा होगा कि उसने एक अन्तर्यामी साधु का बूट मरम्मत किया है। नहीं तो वह कैसे जानता है कि घर में उसकी भूखी औरत और बच्चे इसी इकन्नी की राह देख रहे हैं!

अनुवाद—राम सरूप अणखी

दिल की जगह ताला

—नवतेज सिंह

सुखजिन्दर अकेली लेटी दद से कराह रही थी। उसकी बाई दाढ बहुत दिनो से दद कर रही थी। आज वकील साहब के कचहरी से लौटने पर उसे दाँतो वाले डाक्टर के पास जाना था। वे अभी किसी वक्त भी आने वाले थे। लेकिन दद था कि हल्का होने का नाम ही नही ले रहा था।

सब दरवाजे बन्द थे, और भीतर सुखजिन्दर अकेली थी। आस-पडोस स उसका हाल पूछने के लिए भी कोई नही आ सकता था, बाहर वाले हर दरवाजे पर तरह-तरह के ताले जो जडे थे, और चाबियाँ वकील साहब के पास थी। रोज उन्ही के पास रहती थी।

रोज़ कचहरी जाते वक्त, या छुट्टी के दिन किसी और जगह जाते वक्त वे बडी एहतियात स बाहर वाले तीनो दरवाजो को ताला मार जाते थे, सारी खिडकियो मे तो सलाखें लगी ही हुई थी—और सुखजिन्दर भीतर अकेली रह जाती थी।

शादी के बाद जब सुखजिन्दर नई नई इस घर मे आई थी तो उसे अपने पति का यह रिवाज बडा अजीब लगा था। पहले तो वह समझी कि वह मज़ाक कर रहा है। फिर वह रूठ गई। फिर वह लडी। फिर उसने खाना-पीना बन्द कर दिया। लेकिन वकील साहब की गरहाजिरी म दरवाजे उसी तरह बन्द रहे, उसी तरह भारी भारी ताले, और चाबियाँ वकील साहब की जेब म।

ताले जडे दरवाजो वाले आँगन म, जो ऊँची दीवारो से घिरा था, शुरू-शुरू म सुखजिन्दर का दम घुटता रहता था। वह रो रोकर हल्कान हो जाती थी, लेकिन ताला को आँसुओ की क्या परवाह थी। फिर एक दिन ऐसा आया जब उसके आँसू भीतर ही भीतर भाप बन गए, लेकिन ताले इस भाप से भी न पिघले। फिर एक बार उसने अपना चाँद-सा माथा ताला-लगे दरवाजे पर दे मारा। उसकी अम्मी और उसकी सहेलियाँ कहा करती थी कि उसका माथा चाँद जसा है। उनक अलावा इस चाँद की चाँदनी का मान देनवाला और कोई उसकी जिन्दगी म नही आया था। हमशा के लिए उसके माथे पर दाग पड गया, लेकिन ताले ज्यो के त्यो रहे।

सारे दरवाजे बन्द रहते थे और भीतर सुखजिन्दर अकेली रहती थी। उनक घर म कोई नौकर भी नही था। वकील साहब घर के लिए नौकर को जरूरी नही

समझते थे। दो आदमियों का काम ही कितना होता है ? और मद जात को नौकर रखने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता—चाहे वह छोटी उम्र का छोकरा ही क्या न हो। कहीं से कोई बुढ़िया नौकरानी मिल जाए तो दूसरी बात है। जवान औरतो का भी क्या भरोसा है ! इन शहरी औरतो ने न जाने कितने घाटो का पानी पिया होता है ! क्या पता कौन सी लुच्ची औरत घर मे आ घुसे और सुखजिन्दर को कोइ न कोई ऐब लगा जाए ! वकील साहब ने सुन रखा था कि इसी तरह कई घर बर्बाद हो चुके थे।

अगर आँगन म बच्चे खेलते हो तब भी मन बहला रहता है। उन लोगा का घर बसे हुए पडोस म था। आसपास ढेरो बच्चे थे, लेकिन सुखजिन्दर के घर मे कभी कोई नही आया था। ताले बच्चो का रास्ता भी तो बन्द कर देते हैं ! वकील साहब के आने पर जब ताले खुलते, उस वक्त भी पडोस के बच्चो को भीतर आने की मनाही थी। बच्चो के पैरो से मिट्टी भीतर आ जाती है। कमरे का कालीन खराब हो सकता है। बच्चे कार्निस से कोई चीज नीचे गिरा सकते हैं। और इस किस्म की बेतरतीबी से वकील साहब को बहुत चिढ थी। उनका घर कितना साफ और सलीकेदार था ! जसे घर न होकर कोई शानदार विलायती अस्पताल हो और कभी कोई बच्चा उनके घर खेलने के लिए नही आया था।

सुखजिन्दर की गोद भी सूनी थी। मुद्दत से उसकी तमन्ना थी—उसका एक बच्चा हो, गुलाबी प्याजी पैर, बोस्की की तरह नम रेशमी पट, बच्चे के नन्हे आठ उसकी छाती का स्पर्श करें और उसके जिस्म मे से एक बार मातृत्व-भरे प्यार स महके दूध की खुशबू उठे ! लेकिन यह तमन्ना अब उसकी जिन्दगी की तख्ती पर से गलत अक्षर की तरह मिट चुकी थी। अकेली बैठी वह हँस देती थी। अम्मडी और बापल (मा-बाप) न नाम रखा था सुखजिन्दर ! कैसे सुख ही सुख मेरे आगे-पीछे घूम रहे ह !

अपना मन बहलाने के लिए पिछले बरस उसने अपनी दीवारो से घिरे आगन म फूल उगाए थे। दीवारो और तालो को लाँघकर रग बिरगी तितलियाँ सुख जिन्दर के उगाए फूलो पर आ बठती थी, और न जाने उन सुन्दर फूलो, और नाजुक तितलियो म भ्रम डालने की इतनी असीम शक्ति थी कि क्षण-भर के लिए उसे महसूस होता कि दीवारें गायब हो गई ह, ताले पिघल गए ह और तितलियो के अनेक रग उसकी सोच मे चमक रहे हैं।

लेकिन अब बहुत अरसे मे उसके आँगन म कभी कोई फूल नही खिला था। कुछ तो वकील साहब की त्योरियो का पाला मार गया था, कुछ अपनी रौ म भी सच्चे चाव की कमी थी—बहुत दिनो से उसके आँगन मे कभी कोई फूल नहीं खिला था।

अब पहले की तरह सुखजिन्दर का दम नही घुटता था (या फिर उसे दम घुटन

की आदत पड चुकी थी) और अब उसके लिए बन्द ताला के भीतर जीना कोई अजब बात नहीं रही थी। लोगो के घरो मे बाहर की तरफ फूल खिलते थे, उनके घर म ताले ! तीनो बाहर वाले दरवाजा पर एक एक ताला जडा रहता था

बाहर ताला खुलने की आवाज़ सुनाई दी।

वकील साहब आ गए थे।

लेकिन राज से भी ज्यादा गुस्से मे

कचहरी से लौटने से कुछ देर पहले जब वे बार-रूम की लाइब्रेरी म बैठे एक मुस्टण्डे द्वारा किसी नाबालिग लडकी की इज्जत पर किए गए हमले का हाल पढ रहे थे, तभी एक नौजवान लडका और लडकी उनके पास आए। वकील साहब को लगा—वे दोना इस तरह चहक रहे थे जैसे उनकी आँख लड गई हो।

वे लोग एक टिकट बेचना चाहते थे। नौजवाना के मेले के सिलसिले म परसा शाम एक कल्चरल प्रोग्राम हो रहा था। नौजवान लडका उस प्रोग्राम के बारे म कुछ बताने की कोशिश कर रहा था।

लेकिन वकील साहब को कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। वे टकटकी लगाकर लडकी की तरफ देखते जा रहे थे—लडकी बहुत जवान थी, साडी और चोली पहने थी गोरी गोरी कमर सारी नगी थी। 'आजकल लुच्चपना कितना बढ गया है !' लडकी के ओठो पर लिपस्टिक लगी थी—'कजरियो और शरीफजादियो की पोशाक और सिगार मे कोई फर्क नहीं रहा। वसे भी आजकल कौन-सा बडा फर्क है ?'

लम्बी खामोशी के बाद वकील साहब एकदम बोले, 'माफ कीजिए, कल्चरल प्रोग्राम मैं ऐसे लुच्चपन की टिकट को चिमटे से भी नहीं छूना चाहता। लडके-लडकिया इकट्ठे कर लो, टाँगें कमरें नगी कर लो, बन गया कल्चरल प्रोग्राम !" गुस्से से उनके मुह मे झाग-सी आ गई थी।

नौजवान जोडा चला गया, लेकिन वकील साहब का गुस्सा फौरन दूर होने वाला नहीं था।

घर लौटते वक्त रास्ते भर वे यह सोचकर कुढते रहे कि 'जमाने को क्या हो गया है ? और तो और, आजकल तो मन्दिरो, गुरुद्वारो मे भी नौजवान लडके-लडकिया आख सेंकने ही जाते है, और वहाँ तग नुक्कडो मे खडे इस ताक म रहते है कि कोई जवान जिस्म उनसे टकराए हीर राझा, सस्सी पुन्नू के किस्सो को ये अपनी कल्चर समझते है ! कसा अधेर है ! बडे-बडे लेखक इन मर चुके किस्सो को नये सिरे से लिखकर जिन्दा कर रहे हैं ! बोलिया गिद्धे गाँवा की लडकिया अब स्टेज पर, रेडियो पर लाई जा रही है !'

आजकल तो अनोखी जवानी चढती है। आखिर वकील साहब भी तो कभी

जवान थे। कॉलेज मे पढते थे, सो भी लाहौर जैसे शहर मे जिसे हिन्दुस्तान का परिस कहा जाता था। लेकिन क्या मजाल कि कभी इस किस्म के किसी शोहदेपन म शरीक हुए हो। कोस की कहानिया और कविताएँ तो उन्ह मजबूरन पढनी ही पडती थी, लेकिन इसके अलावा उन्होंने न कभी कोई किस्सा-कहानी पढी थी, न ही कभी कोई फिल्म देखी थी। अरविन्द घोष और भाई वीरसिह (पजाबी के कवि) के अलावा उन्होन किसी दूसरे की कविता छुई तक नही थी, और आजकल के के जवान। उफ। औत्तर जाए ऐसी कौम—आजादी न मिलती तो अच्छा होता।

कॉलेज के दिनो मे जब वे होस्टल मे रहते थे, तो कितनी कठिन मर्यादा का पालन करते थे। उनके कमरे मे रहनेवाले दो और लडका को शे'रो-शायरी का बहुत शौक था। लेकिन क्या मजाल कि वकील साहब के सामने वे कोई ऐसा-वैसा शे र या गीत सुना जाएँ। रात के आठ बजे के बाद तो वे अपने कमरे मे एक 'कर्फ्यू'-सा लगा देते थे। आठ बजे के बाद अगर वे कोई ऐसी-वैसी चीज सुन लेते तो रात के वक्त उन्ह गन्दे-गन्दे सपने आने का खतरा पैदा हो जाता था। आज-कल की तरह उन दिना भी वे नरम बिस्तर पर नही सोते थे—भरसक तख्त पर ही सोते थे।

उनके कमरे के दोना लडके तो आम तौर पर उनकी पारसाई के रौब तले आकर उनका कहना मान लेते थे, लेकिन एक बार इम्तहानो के बाद, मीठी मीठी बहार के दिन थे, वे दोना लडके उमगो से मचल उठे थे। उन्होंने उस दिन आठ बजे के 'कर्फ्यू' की परवाह न की। एक ने जवानी के बारे मे शे'र पढा। इस वक्त वह शे'र वकील साहब को याद तो नही आ रहा था, लेकिन उसका मतलब कुछ इस किस्म का था—"मुझ पर जवानी आ गई है, शबाब का मौसम है, मेरी जिंदगी म किसी बन्दे के खुदा होने का वक्त आ पहुँचा है।" उफ, बस कैसे शे'र। सारी रात खराब होने का सशय उठा। लेकिन सिर्फ इतना ही नही, दूसरे लडके ने कहा, "यह शे र तो किसी बडे आदमी ने लिखा होगा, लो मैं तुम्ह किसी के जवान होने के बारे मे एक ग्रामीण बोली सुनाऊँ। देखो, गेहू उगानेवाले लोग किस किस्म की कविता बनाते है

"कच्चा दुद्ध पीन वालीये।
तेरी हिक त मलाइयाँ आइयाँ।'

उफ, यह बोली तो निरी आफत थी, इतनी गदी। वकील साहब उन दोना लडको से खूब नाराज हुए थे और उन्होंने वार्डन से शिकायत भी की थी।

लेकिन उन दोनो लडको ने भी उसी रात ही कसरें निकाल ली थी। वकील साहब पढते-पढते सो गए थे। बत्ती अभी तक जल रही थी। आदत के मुताबिक वे मुह बाए सो रहे थ। उन शैतानो को क्या सूझी, उन्होंने खुले मुह मे टूथपेस्ट डाल

दिया। वकील साहब की सारी रात खराब हो गई। रात भर अनजान-सी शक्ल उन्हें दिखाई देती रही, जो उन्हें दिखा दिखाकर बच्चे दूध की ओक लगा-लगाकर पी रही थी। रात भर टूथपेस्ट उन्हें मलाई मालूम होता रहा था।

आज कल्चरल प्रोग्राम की टिकट बेचनेवाली उस लड़की को देखकर न जाने क्यों वकील साहब को कॉलिज के दिनों की एक भूली बिसरी 'बोली' याद आ गई थी, इसीलिए वे रोज से भी ज्यादा गुस्से में भरकर घर लौटे थे।

"अब दर्द का क्या हाल है?" सुखजिन्दर के कमरे में जाकर वकील साहब ने पूछा।

"सुबह के मुकाबले में तो दर्द कुछ कम है," सुखजिन्दर ने कहा।

"आज दाँत साफ किए थे—ब्रश-पेस्ट से?"

"जी हाँ।"

"नमक के गरारे?"

"जी हाँ—नहीं, भूल गई।"

"बस, यही तो मुसीबत है! पता नहीं तुम कौन से भंगियों के घर में पली हो? कभी दातुन भूल जाती हो, कभी गरारे। दरअसल बचपन में तुम्हें किसी ने कोई तरबियत नहीं दी। वैसे आम तौर पर वकील साहब बहुत निर्मल थे (धर्म-ग्रन्थ में ऐसा ही आदेश है) लेकिन उन्हें अपनी सफाई पर उतना ही मान था जितना कि अपनी पारसाई पर—"सब रोगों की जड़ गन्दगी है। इसीलिए तुम्हारे दाँत दुखते रहते हैं।"

बाहर घंटी बजी, वकील साहब का बुलवाया हुआ ताँगा आ पहुँचा था। दाँतों के डाक्टर के पास जाने का वक्त हो चुका था।

सुखजिन्दर को ताँगे में बैठने का आदेश देकर वे दरवाजों पर ताले लगाने लगे और फिर जल्दी ही ताँगे में आ बैठे।

वे सुखजिन्दर को साथ लेकर शायद ही कभी बाहर निकले थे। अगर कभी गए भी थे तो अपनी आदत के मुताबिक रास्ते में बीवी से ज्यादा बात नहीं करते थे।

'शुक्र है, कचहरी से लौटकर इन्होंने एक ही ताला खोला था, उसे बन्द करने में देर नहीं लगी', सुखजिन्दर सोच रही थी। तीन-चार बार ऐसा भी हुआ था कि इन तालों की कतार को कितनी बार बन्द करने और यह शक दूर करने में कि शायद कोई खुला न रह गया हो, वकील साहब को गाड़ी पकड़ने में देरी हो गई थी। तालों की ही बात नहीं, वे तो कलम में स्याही भरने में ही पूरे पन्द्रह मिनट लगा देते थे। कितनी बार स्याही भरकर फिर निकाल देते थे, यह जानने के लिए कि कहीं कलम खाली तो नहीं रह गया। उन्हें इस बात का सख्त वहम था कि कभी ऐसा न हो कि जरूरत पड़ने पर उनके कलम में स्याही ही न हो। इसी तरह के सपने में से वे रात को कई बार बर्राकर जाग उठते थे।

खामोश बैठी सुखजिन्दर ने तांगे के सामने जुते घोड़े की तरफ देखा। बहुत सुडौल था। चमकदार जिस्म, ठुमकती कलगी। तांगेवाला बहुत शौकीन मालूम होता था। तांगेवाले की उसे सिर्फ एक पलक-भर दिखाई दी थी, लेकिन सुखजिंदर ने सहज भाव से अपना चेहरा परे हटा लिया।

शादी के बाद जिस दिन से वह वकील साहब के घर आई थी, उसे अपने पति के सिवा बाकी सारे मर्द परछाइयां-से ही नज़र आने शुरू हो गए थे। भरसक वह किसी मर्द की तरफ नज़र भरकर नहीं देखती थी, न ही ऐसे ज़्यादा मौके वकील साहब उसे देते थे

दांतोवाले डॉक्टर की दूकान आ गई थी। ज़िन्दगी में पहली बार वह किसी दांतों के डॉक्टर के यहां जा रही थी। उसे एक अचेत-सा डर महसूस हुआ।

नर्स ने उन दोनों को बड़े आदर से सोफे पर बिठाया। सामने तिपाई पर तस्वीरों वाली बहुत-सी पत्रिकाएं पड़ी थीं, नर्स ने पत्रिकाएं उनकी तरफ बढ़ाईं। सुखजिन्दर ने पहले तो बिना सोचे-समझे हाथ आगे बढ़ाया, फिर फौरन पीछे खींच लिया—वकील साहब आजकल की आम पत्रिकाओं को अपनी बीवी के लिए ठीक नहीं समझते थे।

नर्स ने मुस्कराकर सुखजिन्दर को बताया, "माफ कीजिए, आपको सिर्फ पांच मिनट और इन्तज़ार करना पड़ेगा।"

वकील साहब ने गौर से नर्स की तरफ देखा।

नर्स ने मुस्कराकर पूछा, "आपको या बहनजी को प्यास लगी होगी?"

"नहीं-नहीं!" वकील साहब को बहुत बुरा लगा—एकदम शर्म-हया छोड़कर कैसे मुस्कराती है! हर आदमी के सामने इसी तरह मुस्कराती होगी। जूठन! कितनी अकेली जगह है! बाहर शीशे पर पर्दे लगे हैं। यह जवान है! जब मरीज़ नहीं होते, तब डाक्टर और नर्स यहां अकेले रहते होंगे।' बाईं तरफ लकड़ी के पार्टिशन के पीछे से उन्हें एक बिस्तर बिछा दिखाई दिया—'नर्स कितनी जवान है! बहुत बार डॉक्टर और नर्स अकेले आग के नज़दीक घी रखो पिघलेगा ही'

नर्स मुस्कराकर सुखजिन्दर से कह रही थी, "बीवीजी, आइए अब आपकी बारी है।'

नर्स को बड़ी हैरानी हुई, जब उसने देखा कि पहले वकील साहब उठकर भीतर डाक्टर के कमरे में गए, और बीवीजी उनके पीछे-पीछे थीं।

डाक्टर ने खास कुर्सी पर सुखजिन्दर को बड़े आदर से बैठाया। इस कुर्सी में कोई कल लगी थी और डाक्टर उसे दबा रहा था।

वकील साहब ने देखा, जिस कुर्सी पर सुखजिन्दर बैठी थी, वह ऊंची होती जा रही थी, और ऊंची। सुखजिन्दर का सर डाक्टर के मुंह के काफी करीब पहुंचने

वाला था वकील साहब आगे होकर कुर्सी को रोक लेना चाहते थे।

डाक्टर ने सुखजिंदर के दोनों गाल थामकर उसका मुंह खुलवाया हुआ था।

'बदमाश ' वकील साहब के दांतों में 'किरच किरच' करता यह शब्द दांतों की सीमा पार करना चाहता था।

डाक्टर ने वकील साहब की बेचैनी देखकर कहा, "अभी काफी देर लगेगी। आप अगर बाहर सोफे पर आराम करना चाहें "

"नहीं "

"नर्स, इनके लिए यहीं एक कुर्सी ला दो।"

सामने शीशे में से वकील साहब को दिखाई दिया, डॉक्टर सुखजिंदर के होठों पर अपनी उँगलियां फेर रहा था और डाक्टर का एक हाथ बड़ी कोमलता से सुखजिंदर के गले के पास जा टिका था।

डाक्टर मुस्कराकर सुखजिंदर से कह रहा था, "आपके दांत तो बड़े सुंदर हैं। न जाने बाईं दाढ़ '

अपने जिस्म के किसी अंग की तारीफ सुने सुखजिंदर को एक ज़माना बीत गया था। शादी से पहले वह हँसमुख लड़की के रूप में मशहूर थी और उस की सबसे प्यारी सहेली शीला कभी-कभी उसे कहा करती थी, 'मरजानी! बहुत न हँसा कर मोतियों की लड़ियां झड़ जाएँगी ।'

वकील साहब को सामने वाले शीशे में दिखाई दिया सुखजिंदर मुस्करा रही थी! 'अब दर्द कहां गायब हो गया सेखनहारी का?' शीशे में सुखजिंदर उस नटनी नर्स की तरह मुस्करा रही थी, और डॉक्टर किस बेशर्मी से उसके गालों पर हाथ रखे हुए था!

"बदमाश—डाक्टर है कि " वकील साहब चीखकर पागलों की तरह डाक्टर की तरफ बढ़े।

डॉक्टर की समझ में कुछ न आया।

सुखजिंदर ने बीच में पड़कर अपने पति को रोकना चाहा।

है? तू मेरे सामने ही ऐसा रास रचा रही है, लुच्ची? तभी तो तेरा यार कहता था, 'आप बाहर सोफे पर आराम करें। और तुझे ?' और वकील साहब ने सुखजिंदर को कुर्सी से धकेलकर नीचे गिरा दिया।

डाक्टर के हाथ-पैर फूल गए। उसका चेहरा लाल हो गया था और मुट्ठियां भिंची जा रही थीं। वह क्या करे! नर्स न जाने कहाँ चली गई थी! वह तो औरत है वही शायद कुछ कर सके! डाक्टर भागकर नर्स की तलाश में चला गया।

वकील साहब के होठों के कोने झाग से भरे थे, वे ज़मीन पर पटकी

सुखजिन्दर को पीटे जा रहे थे, थप्पडो और बूटो से। उनका दम फूल रहा था। वे सुखजिन्दर के कपड़े फाड रहे थे—

"लुच्ची, बदमाश, गश्ती !"

जब डॉक्टर नर्स को साथ लेकर लौटा, उस वक्त वकील साहब एक तरफ खड़े हाँफ रहे थे, और सुखजिन्दर फर्श पर अधनगी हालत में पड़ी हुई थी—उस की बाईं छाती एकदम नंगी थी। कभी उसके दिल में तमन्ना थी, "किसी बच्चे के होंठ इसे छुएँ।"

सुखजिन्दर की पीठ पर मार के निशान थे, लेकिन उसकी आंखो में एक भी आँसू नही था। किसके सामने आँसू बर्बाद करती ? उसके पति के सीने में तो दिल की बजाय एक ताला पडा था।

डेड लाइन

—प्रेमप्रकाश

सतपाल, एस० पी० आनन्द, सत्ती या पाली—मरनेवाले के ही नाम थे। जब मैं इस घर में ब्याहकर आई थी तो सामाजिक सम्बन्ध में वह मेरा देवर था—आगन में गेंद से खेलनेवाला, छोटी छोटी बात पर रूठनेवाला, और जो भी सब्जी बनती, न खानेवाला, लेकिन भावनात्मक सम्बन्ध से वह मेरा बेटा था, भाई और प्रेमी भी।

बी० ए० करके एक साल की बेकारी के बाद सत्ती को नौकरी मिली और मुँहमाँगी हुए अभी पूरा साल भी नहीं बीता था कि गले में हो रही खारिश का नाम कैंसर बन गया, जिसकी रिपोर्ट देते हुए रिश्तेदारी में मामा लगते डा० पुरी की पूरी चाद पर पसीने की बूँदें चमकने लगी थी। उन्होंने मेरे और आनन्द साहब के कन्धे पर हाथ रखकर कहा था "बेटा, छह महीने बाद यह अपना नहीं रहेगा। इलाज का कोई लाभ नहीं। यदि पैसे खचना ही चाहते हो तो कहीं धर्माथ लगा दो। मान नाम के लिए दवा मैं देता रहूँगा।" लेकिन डॉक्टर पुरी को क्या मालूम कि बिना कोई चारा किये जीना कितना मुश्किल होता है! शाम के समय मैंने सत्रह हजार रुपये वाली साझे खाते की पासबुक उसके वीर (भाई) के आगे रखकर कहा, 'यह पैसा हम किसके लिए बचायेंगे?"

सत्ती की रिपोर्ट लाकर हम पिताजी के कमरे में दरवाजे के पास खड़े थे, कागज थामे। वह हमें इस तरह देख रहे थे, मानो हम शापिंग करके लौटे हों और उनके लिए फल लाए हों। हम उनकी यह नजर सहन नहीं कर सके। जल्दी ही अपने कमरे में चले गए।

सत्ती अभी दफ्तर से लौटा नहीं था। उसे कैसे बताएँगे? यह सवाल आनन्द साहब ने मुझसे किया और फिर खुद ही आखों पर हाथ धरकर रो दिए। मेरे भी आसू निकल आए, लेकिन मैंने जल्दी ही आखें पोंछकर पति को दिलासा दिया कि यह काम मैं करूँगी। मुझे लगा कि सास के बाद यह जिम्मेदारी मेरी ही है। मैं इस घर की मा हूँ। सोचा यदि मैं भी रो पड़ी तो फिर सत्ती रोएगा, पिताजी रोएँगे यह घर कैसे चलेगा?

रात आनन्द साहब सैर करने चले गए। पिताजी खा-पीकर सो गए तो मैं सत्ती के साथ कसर की बातें करने लगी। हम रोगियों की पहेलियां सी बूझते रहे।

आखिर हम उस जगह पहुँच गए, जहाँ रोगी बाकी बचे जीवन को सुखी बनाने के लिए संघर्ष करते हैं और बिना दुःख के ही मौत कबूल कर लेते हैं। और फिर मैंने डॉक्टर पुरी का फैसला शका बनाकर कह डाला।

सुनकर वह डरा नहीं, लेकिन उसके चेहरे की मुस्कान लुप्त हो गई। बोला, "मैं खुद ही डाक्टर पुरी से पूछूँगा।" मैंने रिपोर्ट उसके आगे रख दी। उसपर कैंसर तो नहीं लिखा हुआ था, डॉक्टर की भाषा में कुछ और ही था। उसने एक बार देखकर रिपोर्ट उसी तरह तह करके टिका दी। एक बार खाँसा और उठकर अपने कमरे में चला गया।

मैं खड़ी देखती रही। वह दो-तीन मिनट अपनी मेज पर सामान इधर-उधर करता रहा और फिर बाहर आकर रुक गया। सामने गेट के पास क्यारी में लगे फूलों की तरफ देखता रहा। मुझे लगा कि लो, यह मौत का चक्कर शुरू हो गया!

जब मैं इस घर में ब्याहकर आई थी तो वह गोद में खेलता बच्चा था। अम्बालावाली मौसी ने इसे पकड़कर मेरी गोद में डाल दिया था। यह कोई परम्परा थी या प्रार्थना कि परमात्मा इस गोद में लड़के बिठाए, लेकिन मुझे लगा था कि जैसे याद दिलाया गया हो कि तुम इसकी माँ भी हो।

अपने घर में अपने छोटे भाई सुभाष को स्कूल भेजने के लिए मैं ही तैयार किया करती थी, यहाँ आकर सत्ती को करने लगी।

मेरी हमेशा कोशिश होती कि सत्ती अकेला नहीं रहे। हम ताश, कैरम व अन्य खेल खेलते या फिल्म देखने चले पड़ते। ताश वह अँगूठे और उँगली को थूक लगाकर बाँटता था। रोटी खाता तो मेरी कटोरी में से बुर्की लगा देता। शर्त लगाता तो मेरे हाथ पर हाथ मारता। मैं डर जाती।

एक दिन डॉक्टर पुरी के पास गई। वे बोले, "कैंसर छूत का रोग नहीं है, लेकिन परहेज में क्या हर्ज है!"

मैं ऊपर से हँस देती, लेकिन अन्दर से डरती, पर कभी-कभी मेरा प्यार इतना जोर मारता कि मैं सब कुछ भूल जाती।

एक दिन हम इंग्लिश मूवी देखकर आए। चौबारे की सीढ़ियाँ चढ़ते सत्ती ने फिल्मी स्टाइल में सहारे के लिए अपना हाथ पेश कर दिया। मैंने भी फिल्मी अन्दाज़ में सहारा लेकर अंतिम स्टेप पर जाकर उसका हाथ चूम लिया। वह अजीब-सी नज़रों से मुझे देखने लगा। मैं बेपरवाह सी कुर्सी पर बैठकर अलमारी के शीशे में उसके चेहरे के बदलते रंग देखती रही। वह सुर्ख होकर पीला पड़ने लगा था।

"क्या बात है, उदास क्यों हो?" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर प्यार से पूछा तो वह मेरी गोदी में सिर देकर रो पड़ा। मैंने उसके सिर और पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे दोनों बाहों में कस लिया, "तुम तो मेरी जान हो प्यारी-प्यारी।" उसने निःश्वास छोड़कर अंग्रेजी में कहा, "मैं जिन्दगी खो चुका हूँ।"

उसकी इतनी बात से मेरी जान निकल गई। मौत के बारे मे यह पहली बात थी, जो उसने कही थी, खुद अपन मुह से। मैंने उसका माथा चूमते हुए अग्रेजी म ही कहा, "हमारा सवस्व तुम्हे अर्पित है !"

डर के कारण सत्ती की नीद उड गई। वह कितनी ही रात देर तक जागता रहा। यही बात हमारी नीद उडाने के लिए काफी थी।

एक रात डेढेक बजे आवाज आई, जसे सत्ती ने पानी माँगा हो। मैंन जल्दी म बीच का दरवाजा खोलकर दखा। सत्तो तकिये म मुह दिए औधा पडा था। उसके शरीर का ज्यादा हिस्सा रजाई से बाहर था। इतनी ठड म भी प्यास लग सकती है? न जाने अन्दर क्या तूफान मच रहा होगा! यही सोचकर मैं उसके पास पहुँची। सामने बैठकर सिर सहलाते हुए पूछा, "क्या बात है, नीद नही आती?"

"नही, दो घटे से जाग रहा हूँ।"

मैंने उस काम्पोज दी, जो अब आनन्द साहब को, और कभी-कभार मुझे भी खाने की आदत पड गई थी।

"भाभीजी, मेरा शराब पीने को दिल करता है।" उसन नजरें उठाए बिना ही धीमे से इस तरह कहा कि कही वीरजी न सुन लें।

"अच्छा, डाक्टर से पूछेंगे। अब तू सो जा।" कहकर मैं उस रजाइ से ढककर अपने बिस्तर पर करवटें बदलने लगी

सुबह काम से फारिग होकर डॉक्टर पुरी के यहा गई। उन्होंने फौरन कह दिया, "वह जो कुछ मागता है, दो। उसकी आत्मा तप्त रखा, और समझो कि यही नियति-क्रम है। चिन्ता ताकी कीजिए

एक शाम सत्ती पीकर आया। लडखडाते कदमा से अपने कमरे म जाता हुआ वह दहलीज पर गिर पडा। मैंने सहारा देकर उठाया। उसन मेरे गल म बाँह डाल ली और बिस्तर पर गिरते हुए मेरी चुन्नी खीचकर अपन मुह पर लपेट ली। आधी चुन्नी मेरे कधे पर थी और आधी उसके मुह पर। वह रो रहा था—मौत क डर मे शायद। मौत से पहले आदमी अपनी असफल कामनाओ के बारे म क्या सोचता है, मैंने सोचा और डर गई।

डेढेक घट बाद उसका वीर उसे देखने गया तो वह उल्टियाँ कर रहा था। उसम खून के धब्बे थे, जो मैंने आनन्द साहब की नजर बचाकर जल्दी हा पोछ दिए।

अगले दिन इतवार था। हमशा की तरह हवन करन बठे तो सत्ती का मन नही टिक रहा था। पहल वह श्रद्धापूवक बठा करता था। शाम के समय सध्या भी करता था। आचमन करता था। उसका वीर और मैं बडे दिल से मन्त्रोच्चार करत—जीवेम शरद शतम। पिताजी पिलर के सहारे बैठे सिफ सुनत थे।

सत्ती न अनमन भाव से हवनकुड म अग्नि प्रज्वलित की और हर मन्त्र के

वाद स्वाहा कहकर आहुति डालता डालता अचानक रुक गया, पीछे हटकर दीवार का सहारा लेकर बैठ गया और आँखें बन्द कर ली।

शाम को वह फिल्म देखकर आया। थोडी देर बैठकर दवा खाई और बाहर जाने लगा। मैंने रोक लिया। अलमारी मे से अंग्रेजी शराब का क्वाटर निकालकर मेज पर टिका दिया। वह मुस्करा दिया। मैंने कहा, "पी ले घर बैठकर। तायाजी के यहाँ मत जाना ! न जाने वहा क्या-क्या खा आता है।"

मैंने उठकर अलमारी खोल ली। वह मेरे साथ आ खडा हुआ। उसकी सास तेज हो रही थी। मैंने उसे वह भी दे दी, जो क्वाटर मे से निकालकर रखी हुई थी। उसने शीशी पकडकर मेरे कधे चूमकर रस्मी सा धन्यवाद किया। शायद कुछ और भी कहा था, लेकिन मैंने वह सुना नही। मेरे शरीर मे से लहर-सी कापती निकल गई थी।

मैं सामने कुर्सी पर बैठ गई। उसे देखती रही। उसने दूसरा गिलास पास रखकर उसमें भी उडेल दी। न जाने उसे मेरे दिल की बात कसे मालूम हुई ! आदमी ज्यो-ज्यो मौत के पास होता जाता है, उसकी छठी ज्ञानेन्द्रिय तेज होती जाती है शायद।

मेरे न-न करते भी उसने मुझे बाहो मे कसकर दवा की तरह वह तीखी कडवी चीज पिला दी। जीवन मे दो बार पहले भी मैंने यह पी थी। एक बार क्वारी थी मैं, तब—सहेली के घर। तब तो कुछ पता ही नही चला था। और दूसरी बार आनन्द साहब के साथ मिलकर काफी पी ली थी। अच्छी खासी चढ गई थी। बहुत कडवे-मीठे अनुभव हुए थे, लेकिन सुबह उठकर मेरी तबीयत इतनी खराब रही थी कि फिर कभी मुह लगाने से मैं डरती ही रही। लेकिन उस दिन प्यारे सत्ती का कहना न ठुकरा सकी। यू लगता था कि मैं उसकी कोई भी बात ठुकराने योग्य नही रही। वह कहकर तो देखे !

मैं रोटी परोसकर लाई तो उसके हाथ बुर्की ताडकर मुह मे डालते गलतिया कर रहे थे। दरअसल बुर्की तोडते हुए सब्जी लगाते भी, उसकी नजर मुझ पर रहती थी। उसने खाना बन्द कर दिया। चीखती आवाज मे 'भाभीजी' कहकर मेज पर बाहा मे मुह टिकाकर बैठ गया।

मैंने प्यार से कहा, "सत्ती, उठ ! चल, लेट जा सो जा।'

उसने चेहरा ऊपर उठाया तो लाल सुख हो रहा था। आँखें भी लाल थी। मैं समझ गई कि वह क्या चाहता था। मेरा दिमाग सुन्न होता जाता था। मैं सोच रही थी कि हिन्दू धर्म उस आत्मा के लिए क्या कहता है, जो नारी प्रेम के लिए भटकती शरीर छोड जाए ?

मैं उसे सहारा देकर उसको चारपाई तक ले गई। मुझे लगा मेरे पैर भी ठीक से नही टिक रहे थे।

रजाई उस पर ठीक करने मैं हटने लगी तो उसने मेरी साड़ी पकड़ ली। बोला, "भाभीजी, मुझे एक बार निमल से मिला दो।"

मेरे अन्दर से हूक निकल गई—"मैं कहाँ से लाऊँ मेरे अज़ीज तेरे लिए निमल! वह तो एक बार तुझे देखने भी नहीं आई।

विवश दिल पर बोझ लेकर मैं उसी की चारपाई पर बैठ गई। उसे चूमा और प्यार से उसका सिर उठाकर अपनी गोद में ले लिया। उसने बेबसी में बाहें फैलाई और मुझे बाहों की सख्त पकड़ में ले लिया, जैसे डरा बच्चा अपनी माँ से चिपट जाता है।

एक बार तो मैं जड़ हो गई। फिर न उसे एहसास रहा, न मुझे कि हम कौन थे। मैं उसकी भाभी थी, बहिन थी, माँ थी या पत्नी।

मेरे सामने उसका चमकता माथा, घनी भवों और पतले होंठोंवाला चेहरा था, या चेहरा भी नहीं, केवल शरीर था, अग्नि में तप लाल लोहे-सा, या केवल आत्मा थी, निश्छल, निर्विकार और न जाने क्या-क्या, जिस पर कोई आवरण नहीं था। आत्माएँ नंगी थीं, कपड़े तो शरीरों पर थे। बस, हवन हो रहा था। आहुति पड़ रही थी। हर आहुति पर अग्नि प्रचण्ड होती थी। स्वाहा-स्वाहा की ध्वनि हो रही थी।

शांतिपाठ हुआ तो वह थक के चूर-सा सोने लगा। मैं उसके साथ लेटी उसके मासूम चेहरे की ओर देखती रही। मुझे तब याद आया, उसके नक्श उस लड़के से मिलते-जुलते थे, जिसे एक बार देखने के लिए मैं कितनी देर मुँडेर पर खड़ी रहती थी। मैंने उठकर उसे भवों के बीच चूमा और रजाई देकर अपनी चारपाई पर आ पड़ी। सोचती रही, हमने क्या किया है? क्या हम धर्म की राह से पथभ्रष्ट हो गए हैं? नरक के भागी बन गए हैं? मुझे लगा कि धर्मग्रन्थों में जो कुछ पढ़ा वह झूठ है। सच वही है, जो परिस्थितियाँ हमें देती हैं, जिसमें ब्रह्म-हत्या भी पाप नहीं हो सकती।

सुबह इतवार था। आनन्द साहब सात बजे ही आ गए। शायद वे हर इतवार के हवन करने के नियम को भंग नहीं करना चाहते थे। इसके साथ उनका कोई वहम जुड़ा होगा। मैंने सत्ती को जगाया कि उठकर नहा ले।

हवनकुण्ड के इर्द गिर्द आनन्द साहब मेरे बाएँ बैठे थे, सत्ती दाएँ, सामने पिताजी बैठे थे—पिलर का सहारा लेकर। हवनकुण्ड के इर्द गिर्द चारों दिशाओं में पानी डालकर शरीर के सभी अंगों के लिए शक्ति की प्रार्थना करके मैंने अँजुरी में से पानी के कतरे ऊपर फेंकने के साथ-साथ सत्ती पर भी फेंक दिए। तभी मुझे लगा—हम इतनी उम्मीदें बाँधते हैं शारीरिक अंगों की शक्ति के लिए, सौ साल

जीने के लिए। सत्ती के तो अब तीस दिन भी बाकी नहीं रह।

दूसर कमरे मे जाकर मैंने आनन्द साहब से पूछा, "कुरुक्षेत्रवाले वैद्य ने क्या बताया?"

"बताना क्या था! बोला, बीमारी पक चुकी है। दवा लेनी हो तो ले जाओ, वरना न सही। मैं पन्द्रह दिन के लिए ले आया हूँ।"

बरामद म हवनकुण्ड मे स ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी। पिताजी पिलर के सहारे बैठे थे। उनकी नजर कभी सत्ती की ओर उठती, कभी अग्नि की ओर तो कभी आसमान की तरफ।

मेरी गहरी साँस उभरी तो आनन्द साहब ने पूछा, "क्या न पी० जी० आई० चण्डीगढ ले चलें? एक नया इलाज होन लगा है वहाँ रान पर लकीरें डालकर दवाई पेट म कर देत हैं, सप्ताह भर उसका असर देखते हैं। कितने रुपये बचे हैं?"

"बहुत हैं जसी आपकी इच्छा।" कहकर मैं रसोई मे जाकर सोचती रही—मालूम नही किसे कहा-कहाँ की दवा खाकर कहाँ, किस बिस्तर पर मरना है! चण्डीगढ क्या बनेगा? चलो, यहा ही क्या है?

शाम के समय सत्ती दिनभर घूम के आया तो उसका शरीर टिकता नही था। वह सकेत करके मुझे चौबारे म ले गया। हर-फेरकर बात करने लगा। मैं समझ गई, उसका दिल पीने को कर रहा था, लेकिन वीरजी का डर था। मैं उसे सब कुछ वही पकडा आई।

आनन्द साहब साबूदाना लेन बाजार तक गए तो सत्ती भी नीचे उतर आया। रसोई म मेरे पीछे खडा हो गया। उसकी सास बहुत तेज चल रही थी। मैंने लौट-कर दखा, उसकी आँखें भी सुर्ख थी। उसने अग्रेजी म कहा, "प्लीज किस मी !"

मैंन उसके माथे से बाल हटाये और कसते हुए उसे चूम लिया, और कुछ देर उसे उसी तरह सीने से सटाकर खडी रही। तभी मुझे महसूस हुआ कि यही से पाप शुरू होता है, जब मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कुछ करता है। मैं एकदम पीछे हट गई। लेकिन सत्ती जिद कर रहा था। मैंने समझाया, उसे आनन्द साहब का डर दिया तो वह बरामदे मे जाकर बठ गया। इसी कारण मैंने सफाई और बतना के लिए काम करने आती लडकी हटा दी थी। इसी से मैं उस ताया की बहू सन्तोष के पास नही जाने देती थी।

खाना खाकर आनन्द साहब सैर करने निकले तो सत्ती फिर बच्चो की तरह जिद करने लगा। मेरे रोकत रोकत उसने बेडरूम की बत्ती बुझा दी।

वह शात होकर सुस्ताने लगा तो मुझे लगा, मानो मेरा मरने वाला बच्चा मर साथ लटा है। मैं उछलत दूधवाली छाती उसके मुह मे देती हूँ, लेकिन उसम चूसने की शक्ति नही मुझे होश आया तो मैं उसी तरह सत्ती को लिये लेटी थी, जसे मा अपन दूध पीते बच्चे को दूध पिलाती सो चली हो और फिर बच्चा भी।

उठकर मैं तेजी से बाथरूम गई। ब्रश लेकर कुल्ला किया। मेरे अन्दर डर बैठ गया। शुरू-शुरू में मैं अपने होंठ बचाने के लिए मुंह पर कपड़ा रखती थी, लेकिन कुछ उसके जोर डालने पर व कुछ अपनी बेबसी में मैं यह भूल ही बैठी कि वह कैंसर का रोगी था।

दोपहर में जल्दी ही डॉक्टर पुरी के पास गई। उन्हें नई आई नौकरानी के साथ सत्ती की बात जोड़कर बताई तो वे बोले, "कोई बात नहीं। नो इन्फेक्शन।" लेकिन मेरा वहम दूर नहीं हुआ।

चण्डीगढ़ में हमारे कई सम्बन्धी हैं, लेकिन हम किसी के यहां नहीं गए। रोगी के साथ जाना क्या भला लगता? अस्पताल के पास पन्द्रह सेक्टर में एक कमरा-रसोई किराए पर लेकर रहने लगे। अस्पताल से फारिग होकर हम देवर-भाभी पकाते, खाते, ताश खेलते, शाम को मन के लिए निकल जाते, या शॉपिंग सेन्टरों में लोगों की भीड़ में सत्ती का मन लगता था। वह जो भी पसन्द करता, मैं खरीद देती। कई कास्मेटिक्स वह मेरे लिए भी पसन्द करता, मैं वह भी खरीद लेती। एक दिन उसने एक स्कार्फ पसन्द किया। इतने गहरे लाल, नीले पीले रंगों का वह स्कार्फ मुझे क्या अच्छा लगता भला! लेकिन सत्ती की ख्वाहिश थी या जिद, मुझे दूकान से वही बांधकर उसके साथ चलते हुए घर तक आना पड़ा। उसी को बांधकर बिस्तर पर लेटना पड़ा।

सर्दी आ चुकी थी तो भी वह चाहता था कि रात को दरवाजे खिड़कियां बन्द रहें। नारी को देखने की उसकी भूख मिटती नहीं थी। कभी-कभार वह मुझे देखता, सोचता और मेरी छातियों में नाक घुसाकर रोने लग जाता।

अस्पताल में मुझसे कोई पूछता, "क्यों बीबी, यह तेरा भाई है?" मैं हां कह देती। यदि कोई पूछता, 'तेरा बेटा है?' मैं तब भी हां कह देती। यदि कोई पूछती, "यह तेरा क्या लगता है?' मैं चुप ही रहती। क्या बताती! चण्डीगढ़ में वह मेरा पति बनकर रह रहा था, मेरे शरीर का स्वामी।

अब औरत उसके लिए कोई भेद, कोई रहस्य नहीं—एक स्टील बन गई थी। उसका अपना शरीर दिनोदिन कमजोर होने लगा था—बिजली के इलाज के कारण, या उसकी मानसिक अवस्था के कारण, कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। उसकी जिद व मांग भी कम होने लगी थी। खाने पहनने से भी उसका जी उचाट होने लगा था। वह कभी शराब पीता, कभी समाधियां लगाता तो कभी गीता के श्लोक उच्च स्वर में पढ़ता रहता—नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि। मैं सोचती कि बार-बार उसका यह श्लोक-पाठ किसी को कैसे सहारा दे सकता है? आत्मा के अमर अजर होने से उसे क्या फर्क पड़ता है!

पी० जी० आई० का कोर्स पूरा करके हम घर लौटे तो उसके लिए दलिया खाना भी मुहाल हो गया था। कभी-कभी हालत एकदम बिगड़ जाती। सांस लेना

मुश्किल हो जाता। वह सुबह से शाम तक बरामदे में अपनी खाट पर लेटा गेट की ओर देखता रहता। कभी-कभी अचानक डर जाता। उसकी बांह, टांग या सारा शरीर कांप जाता, जैसे बच्चे सपना देखकर डरते हैं।

शाम को चाय के समय पिताजी ने सत्ती को बुलाया। वह सामने कुर्सी पर आ बैठा। पिताजी देखते रहे। फिर कुछ फुसफुसाकर हाथ जोड़कर उन्होंने आंखें मीच लीं। मैंने सत्ती को इशारा करके उठा दिया।

एक दिन बरामदे में सत्ती को सिगरेट पीते हुए छोड़कर मैं रसोई में गई तो चीख सुनाई दी। मैं दौड़कर आई। वह आरामकुर्सी से गिर पड़ा था। सिगरेट फर्श पर पड़ी सुलग रही थी। तनिक सहारे से वह उठ बैठा, बोला, "भाभीजी, मेरी सांस रुकने लगी थी।'

मैं उसके गले पर देसी घी मलती रही।

आखिर डेड लाइन भी आ गई। वह आखिरी रात थी। मुझे नींद नहीं आ रही थी। आनन्द साहब गायत्री पाठ कर रहे थे, लेकिन सत्ती सो रहा था। मैं इसी दौरान दो बार उसे देख चुकी थी।

अचानक उसकी कठिन सांसों की आवाज़ रुक गई। कुछ क्षण मैं सांस रोक-कर लेटी रही। फिर उठकर उसके कमरे में गई। धीमे से चादर का पल्लू उठाकर देखा—उसकी सांस चल रही थी, लेकिन उसका चेहरा पीला हो गया था। झुक-कर मैं उसके चेहरे को निहारती रही, चेहरा जो कभी लाल गुलाब था।

वह रात निकल गई—डाक्टर पुरी की डेड लाइन।

सुबह उठकर आनन्द साहब ने फिर हवन किया। पिताजी के हुक्म के अनुसार कितना सारा अनाज व वस्त्र सत्ती के हाथ से दान करवाया। तीसरे पहर सत्ती आरामकुर्सी पर बैठा-बैठा गिर पड़ा। आनन्द साहब घर पर ही थे। हम जल्दी में उसे उठाकर डॉक्टर पुरी के क्लीनिक में ले गए। उन्होंने न जाने कैसे क्या किया कि सांस ठीक हो गई।

फिर दस ही दिन में सेहतमन्द होकर उसने डाक्टर पुरी को भी हैरान कर दिया। वह घोड़े जैसा तगड़ा हो गया। सब-कुछ खाता-पीता और आवारागर्दी करता। फिर वह वही सब काम करने लगा, जो मुझे पसन्द नहीं था, जिसके कारण मुझे उस पर और खुद पर शर्म आती। अक्सर वह सन्तोष के पास उसके चौबारे में बैठा रहता। तायाजी के लफंगे लड़कों के साथ पीता व लचर-सी हरकतें करता। कभी मेरे पर्स में से पैसे निकालकर ले जाता। यहां तक कि कभी मैं उसे प्यार करती तो उसकी नज़र में वह प्यार ही न दिखाई देता। लगता, जैसे कोई बदमाश देखता हो। जैसे मुझे पकड़ना उसका अधिकार हो। जब किसी से भी कोई चीज़ उधार ले लेना या मांग लेना उसका हक बन गया। वह दूसरों के सिर पर पलन-

वाला बदमाश बन गया था, जिसकी बदमाशी का कारण शक्ति नही, कैंसर था। कैंसर उसे मार रहा था और कैंसर द्वारा वह हमे मार रहा था।

डेढेक माह बाद उसकी तबीयत फिर बिगडने लगी। थूक म खून जैसा कुछ निकलता तो वह दहल जाता। आनन्द साहब घबरा जाते। मैंने फिर दवाइयो पर जोर दिया।

एक शाम थके-हारे आनन्द साहब सोचते हुए बोले, "न जाने और कितनी दर यह नरक ?"

"परमात्मा का नाम लो, सब दुख कट जाएँगे।" उनकी बात का उत्तर मैंन दे तो दिया, लेकिन यह मेरी समय मे नही आ रहा था कि वह किसके नरक की बात करते थे—सत्ती के, पिताजी के या अपने ? मन मे आया कि कह दू, जो कुछ तुम भोग रहे हो, वह नरक है तो जो मैं भोग रही हूँ, वह क्या है ?

सत्ती दिन म न जान कहाँ घूमता रहता, लेकिन अँधेरा घिरते ही घर लौट आता। वह डरा सा होता और रात को चारपाई पर पडा धमग्रथ पढता रहता। उसका चेहरा सदा गेट की ओर रहता था। कभी-कभी उसके चेहरे पर इतनी शांति होती कि भक्तो के चेहरे पर क्या होती होगी, लेकिन कभी इतनी व्याकुलता होती कि लगता, जसे वह बहुत जल्दी म है। मानो वह किसी की प्रतीक्षा म हो। माना कोई प्लेटफॉम पर बैठा गाडी के इन्तजार म हो, या माना गाडी निकल गई हो और प्लेटफाम सूना पडा हो।

मरन से एक रात पहले न जाने कैसे उसे मालूम हो गया था। उसन सकेत स मुझे अपने पलँग पर बुलाया। बीचवाले दरवाजे की बोल्ट लगाकर मैं उसके पास बठ गई। फिर उसके आग्रह पर साथ लेट गई। वह मेरी ओर देखता रहा, देखता ही रहा। फिर उसकी बुझी-सी आँखो मे आसू आ गए। एकाएक मैंने उसका चेहरा अपनी छाती से लगा लिया, "क्या बात है मेरे बच्चे ?"

उसने आँखें मीच ली माना ध्यान मे चला गया हो।

दूसरी सुबह उसने बेड-टी नही पी। नहाकर अगरबत्ती जलाई और पाठ करने बठ गया। अभी प्रारम्भिक मन्त्र ही पढा होगा कि उसके हाथ स पुस्तक गिर गई और वह फश पर टढा हो गया।

मैंने रसोई म स भागत हुए जाकर उस सँभाला तो मरी चीख निकल गई। आनन्द साहब कॉपत भाग आए लेकिन वह घटित हो चुका था जिसकी प्रतीक्षा सत्ती को थी, आनन्द साहब को और मुझे भी।

आज इस घटना को हुए कोई एक साल बीत गया, लेकिन मुझे इस सवाल का जवाब नही मिल रहा कि वह मरा कौन था ? —अनुवाद फूलचन्द मानव

डॉगर वोली

—मुहम्मद मनशा याद

वे मेरे ऊपर फतवा लगाना चाहते है।

उन्हे शक है कि मैंने अपना अकीदा बदल लिया है। पर यह झूठ है। मैंने सिर्फ मास खाना छोडा है।

दुनिया मे कितने ही लोग वैजिटेरियन है, मास नही खाते। उनकी मास न खाने की मजहबी, नजरियाती, बीमारी और मनोवैज्ञानिक कई वजह हो सकती है। मेरा एक सहपाठी गोश्तखोरी को इन्सान के जगली जमाने के वहशीपन से जोडता है। एक और दोस्त है, उसका बचपन मे जुकाम बिगड गया था। उसे जबरन यखनी पिला दी, जिसमे उसे बहुत बदबू महसूस हुई और फिर उसे उल्टी आ गई। भले ही वह बदबू उसके अपने अ दर ही पैदा हो गई थी, पर उस दिन से उसका मन गोश्त से चिढ गया।

मेरा मसला सबसे अलग है। मैं बचपन से ही गोश्त का बहुत शौकीन था और भुना हुआ गोश्त तो मुझे बहुत ही पसन्द था। हालाकि कई बार डाक्टरो ने खून मे यूरिक एसिड की मात्रा अधिक होने से मुझे गोश्तखोरी से रोका था, पर मैं उनकी हिदायतो पर कभी अमल न कर सका। और अब, कुछ दिनो से गोश्त खाना बिलकुल छोड दिया है। पर इसकी वजह अकीदे की तब्दीली नही। मैं सोचता हूँ—अब मैं असली और राज की बात बता ही दू। ऐसा न हो कि सचमुच ही कही कोई फतवा लग जाए।

मुझे बचपन से ही नई-नई बोलियाँ सीखने का बडा शौक था और मैंने कई बोलियाँ सीखी भी, पर सच बात तो यह है—मेरा चौपाया, और यह भी भेड-बकरियो की जुबान सीखने का कोई इरादा नही था। पर यह जुबान, सुन सुनकर मुझे खुद-ब-खुद आ गई। हुआ इस तरह कि उन दिनो हम गाव मे रहते थे। रात को खुली छत पर सोते थे। चारो तरफ से भेडो और बकरियो की आवाजें आती रहती। उनका एक बाडा बिलकुल हमारे पडोस मे ही था। मैं रात को देर तक स्कूल का काम करता और जागता रहता। गर्मियो की अँधेरी रातो मे बाडा के चारो ओर भेडिये चक्कर काटते रहते। एक-दो बार भेडिया बाडे मे आ घुसा और भेड को उठाकर ले गया। भेडिया के डर से भेड-बकरियाँ और उनके मेमने भी हर वक्त डरे-डरे और सहमे-सहमे रहते। रात जितनी ही अँधेरी होती, वे डर से उतने ही

ज्यादा मिमियाते। मैं लम्प बुझाकर सोने की कोशिश करता, पर उनकी आवाजें सोने न देतीं। फिर न जाने किस तरह उनकी जुबान खुद-ब-खुद मेरी समझ में आने लगी। सारी रात मेमने इस तरह की बातें करते—

—मां, मुझे डर लगता है

—मां, मुझे भूख लगी है

—मां, दिन कब निकलेगा?

—हाय मां, मुझे पाला लगता है

और हर मां की तरह उनकी माएँ भी झूठी-सच्ची तसल्ली देती रहतीं।

एक बार अब्बा के न जाने कौन-सी बीमारी पीछे पड गई। हकीम ने उन्हें गोलियां दीं और चालीस दिन बकरी के दूध के साथ खाने की हिदायत की। कुछ दिन तो अब्बाजान पड़ोसियों से दूध मांगकर काम चलाते रहे, फिर उन्होंने एक दुधारू बकरी खुद खरीद ली। उसके साथ दो छोटे-छोटे मेमने भी थे—एक काला, दूसरा चितकबरा। मेरी उनके साथ जल्दी ही गहरी दोस्ती हो गई और मुझे बकरा बोली सीखने का अच्छा अवसर मिल गया। मैं स्कूल से आकर उनके साथ काफी देर तक खेलता रहता। उन्हें अपनी स्कूली किताबों और पोथियों से कहानियां और कविताएँ सुनाता। शाम के वक्त उन्हें अपने साथ खेतों में ले जाता। उनके लिए पेडों की टहनियां तोडता। वे टहनियों के पत्ते खाते रहते और मैं पहाडे याद करता रहता। पत्ते खाते, घास चरते और पहाडे याद करते हम आपस में बातें भी करते रहते। रात को वे अपनी मां को दिन भर की कारगुजारी बताते। वे एक दूसरे के साथ बजिद होकर भागने दौडने, छलांग लगाने नाले और गड्डे फांदने, ऊँचे टीलों और पेड पौधों पर चढने में, एक-दूसरे से बाजी ले जाने की डींग हांकते—'मैं बडा हो गया हूँ' एक कहता "मैं इससे तगडा हूँ' दूसरा कहता। बकरी उनके बडे और तगडे होने की बातें सुनकर उदास हो जाती और कहती, "खुदा करे तुम छोटे ही रहो, कभी बडे न हो!"

उनकी समझ में न आता कि मां ऐसा क्या सोचती और कहती थी? वे रूठ जाते और बहुत देर तक रूठे रहते। मुझे भी यह बताना अच्छा न लगता कि उनके बडे होने से किस तरह के हालात पैदा हो सकते हैं।

फिर एक दिन चितकबरा खो गया। हमने बहुत ढूंढा, पर उसका कोई अता-पता न मिला। बकरी कितने ही दिन उसे याद करके मिमियाती रही। मैं और काला भी उसे याद करते रहे। फिर आखिर हौले-हौले भूल गए।

काला अब और बडा हो गया था। उसके सींग भी ऊँचे और तीखे हो गए थे। उसमें बडे बकरा-जैसी व्ह आन लग गई। बूढे-अधेड बन्दे उसका मुंह खोलकर उसके दांत गिनने और उसके पुट्ठों पर हाथ रखकर मांस का गुमान देखते। मेरी उम्र के लडके—भले ही वह किसी को कुछ नहीं कहता था—उससे डरते, कपकंपा

जात। मैं स्कूल से आकर, उसे साथ लेकर घूमता रहता। हम एक-दूसरे की सिर्फ बोली ही नहीं, इशारे भी समझते थे। उसे जहाँ बुलाता, दौड़ता आता। जिस बात से मना करता, वह मान जाता। मैं जिधर भी जाता, वह मेरे पीछे-पीछे आ जाता, मुझे दूर से पहचान लेता। मगर एक बार वह धोखा खा गया।

शंकू नाई की माँ हमारे घर उलाहना लेकर आई कि तुम्हारे बकरे ने मारने के लिए मेरे लड़के का दूर तक पीछा किया है। शंकू की माँ गुस्सा गिला करके चली गई और मैंने अपने बकरे से पूछा। उससे यह सुनकर मुझे अपनी हँसी रोकनी मुश्किल हो गई कि उस दिन शंकू नाई ने भी उसी रंग की चादर की गिलती मारी हुई थी, जिस रंग की मेरी चादर थी। और काला यह समझकर शंकू नाई के पीछे लगा रहा कि वह मेरे पीछे दौड़ रहा है।

बकरे ने भी इस बात पर हँसने की कोशिश की, पर वह हँस न सका। और इस बात पर बड़ी देर तक उदास रहा कि उसे हँसना नहीं आता था। दूसरे दिन यह सुनकर कि उसकी माँ सेम वाले नाले के पुल से गिरकर जख्मी हो गई है और उसे हलाल किया जा रहा है, हम दोनों बेचैन हो गए। मैं उसे तसल्ली देता रहा, और उसका दिल बहलाने की कोशिश करता रहा। दूसरे दिन जब उसे पता चला कि मैंने भी उसकी माँ का मांस खाया है, तो वह मुझसे भी संत्रस्त होने लगा। कितने ही दिन मेरे पास आने से झिझकता रहा। मैं आगे बढ़कर उसे प्यार करने लगता, तो वह समझता—मैं दाँतों से उसकी बोटी काटने वाला हूँ।

मैंने उसे समझाने की कोशिश की—मैं बन्दा हूँ, भेड़िया नहीं। आदमी जीवित पशु-पक्षियों को नहीं खाता। खाने से पहले हम उसे मार लेते हैं, कच्चा ही नहीं चबा जाते। चबाने से पहले आग पर भून लेते हैं। फिर धीरे धीरे कुछ समय बाद उसका भय दूर हुआ और वह पहले की तरह मुझ पर एतबार करने लगा।

मैं मिडल का इम्तिहान पास करके शहर के हाई स्कूल में दाखिल हो गया और वह बहुत उदास हो गया। मुझे भी उससे बिछुड़न का दुःख था, पर मजबूरी थी।

बड़ी ईद की छुट्टियों में मैं बड़े चाव से गाँव आया, पर यह सुनकर कि इस बार ईद पर उसकी कुर्बानी होगी, मेरा सारा चाव मिट्टी में मिल गया। मैंने घर-वालों की बहुत मिन्नतें कीं कि वे मेरे काले को छोड़ दें, और कुर्बानी के लिए कोई और दुम्बा या बकरा खरीद लें। पर मेरी किसी ने न मानी। काले को बिल्कुल पता नहीं था कि उसके साथ क्या होने जा रहा है। मैंने उसे परेशान होने से बचाए रखने के लिए बात छिपाए रखी। वह खुश हो बड़े चाव से मेरे साथ दौड़ता, छलाँगें लगाता, ऊँचे पेड़ों के तनों के साथ लटककर पत्ते खाता और मेरी टाँगों से सींग रगड़-रगड़कर प्यार प्रकटाता। पर जब उसे लिटाकर छुरी फेरने लगे, तो उसने घबराकर मुझे पुकारना शुरू कर दिया।

मैं उस हलात होते नहीं देख सकता था, इसलिए अपने कमरे में छिप गया था। पर उसकी हाय-तौबा और चीखो-पुकार मुझे सुनाई दे रही थी। शायद उसका ख्याल था कि मैं आकर उसे बचा लूंगा। इसलिए वह आखिर तक मुझे आवाजें लगाता रहा।

छुरी का मजा जिबह करने वाले से पूछिए, जो जिबह होते हैं वे क्या जानते हैं! मेरा ख्याल था कि और कुछ नहीं तो मैं कम-से-कम उसका गोश्त नहीं खाऊँगा। पर जब गोश्त पककर मेरे सामने आया, उसकी खुशबू सूंघकर मेरे मुंह में पानी आ गया। और मैंने भी भरकर बोटियाँ खाई।

इसके बाद मैंने कभी किसी बकरे या पालतू जानवर के साथ दोस्ती नहीं की। हर बकरीद पर हमारे घर बकरा या दुम्बा आता और हलाल होता। पर मैं उससे दूर-दूर रहता कि उसके साथ दोस्ती या प्यार न हो जाए, क्योंकि फिर ज्यादा दुःख होता है। अब्बा ने कई बार समझाया कि जानवर के साथ जितनी मुहब्बत हो, उतना ही ज्यादा सवाब-पुण्य मिलता है। पर मेरे में इतनी हिम्मत नहीं थी। मैं कुर्बानी के समय ईद मिलने के बहाने, किसी रिश्तेदार या दोस्त के पास चला जाता और तब लौटता, जब खाल उतर गई होती।

अब्बा का ख्याल था कि इस तरह ईमान कमजोर हो जाता है, पर मैं ईमान को कमजोर नहीं होने देता था। खाल उतारने के बाद काटने छाँटने, बोटियाँ करने, खवेशों और दरवेशों में बाँटने में घरवालों का पूरा साथ देता। मुझे बकरे पर सिर्फ उस समय तक तरस आता था जब तक वह जिन्दा होता और देखना-सुनना और बोलना महसूस करता। एक बात और भी है कि मुझे सिर से बहुत डर लगता। मैं कसाई की दुकान पर भी सिर देख लेता तो उसकी बेजान आँखों का सामना न कर सकता। ऐसा लगता कि जैसे वह मेरी ओर ही देख रहा हो। मेरी यह कोशिश भी होती कि मैं किसी बकरे का पता न चलने दूं कि मैं उसकी बोली जानता हूँ। मैं घरवालों और जानकार लोगों में भी यह बात छिपाता। पर बकरे की बोली जानने से मेरे लिए बहुत ही दुःखद और मुश्किल हालात पैदा हो गए थे। कई बार मुझे लगता, मैं आप, भीतर से, बकरा बनता जा रहा हूँ।

घरवालों ने कई बार जोर दिया कि मैं ईद की कुर्बानी खुद करूँ। मतलब यह कि मैं अपने हाथ से बकरे के गले पर छुरी चलाऊँ, क्योंकि यह सुन्नत है। मौलवी ने भी मुझे खूब समझाया और बतलाया कि यह इसलिए भी जरूरी है कि खुदा के रास्ते पर खून बहाने का जज्बा और साहस पैदा होता है और आदमी जिहाद में हिस्सा लेने का हकदार बनता है। मगर मैं यह कभी न कर सका क्योंकि जिबह होनेवाले बकरे, जिस तरह डर भय से चीखते और रोते गिड़गिड़ाते हैं, वह सिर्फ मैं ही सुन समझ सकता हूँ। और सिर्फ मुझे ही इस बात का अन्दाजा है कि किसी हमजुबान को जिबह करना, कितना मुश्किल काम है! यह किसी आम और मामूली

आदमी के बस की बात नहीं। आम आदमी किसी हम-जुबान और हम जिस्म को कत्ल तो कर सकता है, हलाल नहीं कर सकता। इसके लिए पैगम्बर का दिल और साहस चाहिए। उसे भी आँखों पर पट्टी बाधनी पडती है। मैंने कई बार सोचा, अच्छा होता कि मैं बकरों की बोली न जानता होता और मैं इतना कायर न बन जाता। भले ही इसे ईमान की कमजोरी समझा जाता था, पर मैंने अपने मन मे पक्का फसला कर लिया था कि मैं अपने हाथों से किसी जानवर को जिवह नहीं करूँगा। पर पिछले साल मैं अपने इस वादे पर कायम न रह सका, और यहीं से बुराई की शुरूआत हुई।

हुआ इस तरह कि बडी दुआओं और मन्नतों के बाद मुझे खुदा ने बेटा दिया—बहुत खूबसूरत, गोल मटोल और मेमने की तरह कोमल और प्यारा। अब्बाजान ने तुरन्त हकीके के लिए दो बकरे मँगवा लिये। शहर में रहते हुए अब बकरों के साथ कभी-कभार ही मुलाकात होती थी, और उनसे बातचीत करने से मैं खुद भी कतराता था। पर हकीके के लिए लाए गए बकरे कई दिन मेरे कमरे की खिडकी के पास, सेहन में बँधे रहे। सोचा था कि जुमेरात को हकीका करेंगे, पर आपा को आने में देर हो गई। शायद उनका कोई देवर जेठ बीमार था। दोनों बकरे रात को जुगाली करते हुए हैरान सी कर देनेवाली बातें करते रहते। न जाने उन्हें अपने अन्त का पता कैसे लग गया था।

छोटा बहुत घबराया हुआ था। वह एक रात कहने लगा, "जिवह कैसे करते है?"

"जमीन पर लिटाकर गले पर छुरी चलाते हैं। बडे ने बताया।

"तकलीफ तो बहुत होती होगी?

"हाँ मैंने एक बार देखा था। बडी देर तक जान निकलती रहती है।

"हलाल क्यों करते हैं?

"खाने के लिए—इनके मुँह में भी भेडिया के दाँत होते हैं।"

"मेरी तो अभी से डर से जान निकलती जा रही है।'

"डर तो मुझे भी लग रहा है।"

"क्या दोनों को एक साथ जिबह करेंगे?"

"नहीं, शायद एक के बाद एक"

"पहले कौन जिबह होगा?"

"तुम्हें बहुत डर लग रहा है, इसलिए पहले मैं!'

'नहीं, तुम्हें जिबह होते देखकर मैं और भी ज्यादा घबरा जाऊँगा, इसलिए पहले मैं।'

"नहीं, मैं!'

'नहीं, मैं!"

"मैं मैं मैं "

मैं बड़ी देर तक उनकी बातें सुनता रहा। फिर उठकर खिड़की बन्द कर दी। सारी रात मुझे नींद नहीं आई। अगले दिन छुट्टी थी। मैं देर से सोकर उठा और देखा, घर मे दोपहर के खाने की तैयारियां हो रही थी। प्याज लहसुन छीले जा रहे थे। मिर्च मसाला पीसा जा रहा था और टिक्का, कोफ्तो ओर गोश्त का इन्तजाम हो रहा था।

अब्बाजान शायद कसाई को बुलाने गए हुए थे। फिर घण्टी की आवाज सुनकर मैं बाहर गया। देखा, साथवाली मस्जिद से, दीनी मदरसे का तालब इल्म लडका खालों के बारे मे पता करने आया था कि उतरी कि नहीं।

"अभी तक नहीं उतरी।' मैंने उसे बताया।

उसने हैरान होकर पूछा, "अभी तक नहीं उतरी?'

"जिबह करने से पहले कैसे उतार सकते है?"

'हा यह तो सही है, मैं फिर आऊँगा।"

जब ज़िबह करने का वक्त आया, तो मैं घर मे चला जाना चाहता था। पर अब्बा ने मेरे हाथ मे छुरी थमा दी और दबाव डाला कि मैं खुद अपने हाथ से जिबह करूँ। मैंने बड़ी कोशिश की पर उन्होंने मुझे वहा से जाने न दिया।

पहले छोटे को लाए। वह थर थर कांप रहा था और डर मे मिमिया रहा था। मुझे बड़ा रहम आया। मैंने कहा, "पहले बड़े को लाओ।"

बड़े को लाए तो वह जोर जोर से चीखने लगा। फिर आखो मे आँसू लिये वह छोटे से कहने लगा, 'मुह दूसरी तरफ कर ले छोटे!'

छोटे का अपनी जगह खड़े-खड़े पेशाब निकल गया।

मुझे उसकी रान वाली बात याद आई। मैंने सोचा— पहले बड़े को हलाल किया तो छोटा घबराहट से ही मर जाएगा। मैंने कहा, 'पहले छोटे को ही लाओ।

असल में मुझसे फैसला नहीं किया जा रहा था कि पहले किसको हलाल करूँ। वो छोटे को ले आए। जब उन्होंने उसे जमीन पर लिटाया तो उसने ऊँचे-ऊँचे स्वर मिमियाना शुरू कर दिया—

"हाय मैं मारा गया हाय मैं मारा गया!'

"इसे मरण नहीं कहते,' मेरे मुह से अचानक निकला, "धीरज रख! तू खुदा की राह पर कुर्बान हो रहा है।

बकरे ने तड़पकर गर्दन उठाई और मेरी ओर इस तरह देखा, जैसे मुझे

पहचानने की कोशिश कर रहा हो। फिर उसने एक लम्बी साँस ली और छुरी के नीचे अपनी गदन ढीली छोड दी।

मैंन अल्ला-हो-अकबर पढकर छुरी चलाई और वह हलाल हो गया। पर जब खाने का मौका आया, तो मुझे गोश्त म से उसी तरह की खुशबू आई जिस तरह की अपने बेटे से आती थी। और मैंने खाने से हाथ रोक लिया। उसके बाद कोशिश करने पर भी कभी मास न खा सका। अब वे मुझ पर फतवा लगाना चाहत हैं। उन्ह शक है कि मैंने अपना अकीदा बदल लिया है। पर यह झूठ है। मैंने तो सिफ मास खाना छोडा है।

अनुवाद शांतिदेव

घोटना

—मोहन भडारी

किश्ना बढई उस दिन बहुत उदास था। बहुत उदास! उसका दिल करता था कि जी भरकर रोये। बस रोता जाए! रोता जाए!!

उस दिन छुट्टी थी।

किश्ना बढई और उसका दामाद बठे गम गलत कर रहे थे। सुबह से ही वो पी रहे थे। लेकिन शराब उनको चढ नही रही थी।

और किश्ना बढई चुपचाप उठकर बाहर को चल दिया था। उसके दामाद ने उसको टोका नही। वह जानता था कि किश्ना इस तरह रुकने वाला नही। वो सीधा ठेके जाएगा और बोतल लेकर आएगा। पहले भी तो वह इसी तरह किया करता था जब उन्हे शराब नही चढ रही होती थी। किश्ना खामोशी से उठ जाता और बोतल आ जाती। वो दोनो गई रात तक पीते रहते। और इस तरह छुट्टी गुजर जाती।

किश्ना का दामाद उसका इन्तजार करता करता चारपाई पर लेट गया। वो अभी तक शराब लेकर नही लौटा था।

और उस दिन किश्ना बहुत उदास था। वह अपनी सारी जिन्दगी म इतना उदास कभी नही हुआ था। उसको ऐसा महसूस हुआ जैसे उसके भीतर कही कोई फोडा रिस रहा हो एक शून्य-सा उत्पन्न हो गया हो। उसके दामाद के पास इतना धन था कि वह दुनिया म बनी हर सुख-आराम देने वाली चीज खरीद सकता था। लेकिन वह उसके लिए पल भर का चैन नही खरीद सका।

उसका दामाद हैरान था।

उसकी बेटी परेशान थी।

और किश्ना बढई उस दिन बहुत उदास था। बहुत उदास! उसका दिल करता था कि जी भरकर रोये। बस रोता जाए! रोता जाए!!

उसको अपना बेटा याद आया।

उसको अपनी घरवाली याद आई।

आज से पाँच बरस पहले की बात है कि उसकी घरवाली मर गई थी। उसका इकलौता बेटा तो छुटपन मे ही चल बसा था।

और उसका इस लम्बी चौडी दुनिया मे कौन था?

बस एक बेटी रह गई थी।

बस एक दामाद रह गया था।

आखिर उसका दामाद उसे शहर ले आया था—नये-नये कपडे पहनाकर। नया-नया शहर था—चहल-पहल-भरा, जहाँ बिजली के लट्टू उसकी आखो मे घुसते जाते थे, जहाँ लोग भागते-दौडते रहते थे—हाफे हाँफे, घबराए हुए, जसे कही आग लगी हो।

नये-नये कपडे, जिनका कलफ अभी नही उतरा था, उसने पहन हुए थे। उनकी खडखडाहट उसे महसूस हो रही थी—खटकती चुभती खड-खड, जैसे कोई उसके सिर पर हथौडे मार रहा हो। उसे महसूस हा रहा था जैसे उसने जो कपडे पहन रखे ह अभी उसके बदन से फिसलकर सडक पर गिर जाएँगे, और वह लोगो के सामने नंगा हो जाएगा।

वह लडखडा गया। वह सिर से लेकर पैरो तक पसीने मे नहा गया। पसीना उसकी टाँगो से धारें बनकर बहने लगा।

इतने बडे शहर मे बीता वह पहला दिन उसे कभी नही भूल सकता।

लेकिन शहर मे रहते अब उसको पाँच साल हो चले थे। इन पाँच साला मे उसने अपन दामाद का दिल जीत लिया था। सारे कारखाने का काम वह अकेला सँभालता था। अब तक उसने जितने भी सौदे किए थे उनम कभी घाटा नही पडा था।

उसके हाथा म यश था।

यह बात उसकी बेटी कहती थी।

यह बात उसका दामाद कहता था।

बात यह थी कि सौदबाजी मे वह बडो-बडो को मात कर देता था। इसीलिए उसका दामाद उसको छोडना नही चाहता था। व्यापार मे कई तरह के भेद होत हैं जा हर किसी को बताए नही जा सकते। फिर किशना तो उसका ससुर था। वह अपने दामाद का बुरा कैंम सोच सकता था? इसीलिए वह उसे हर प्रकार से खुश रखने की कोशिश करता। गल्ले से पैंसे निकालते समय उसका हाथ न पकडता। उस किमी बात से टाकता नही था। दुनिया का हर सुख, आराम, जो पैंसे से खरीदा जा सकता है, वह उसे दे सकता था। लेकिन जिन्दगी की तसल्ली, ज़िन्दगी का चैन वह उसे कहा से लाकर देता! जिन्दगी की तसल्ली, जिन्दगी का चैन, जिसका कोई मोल नही, जिसे पसा खरीद नही सकता! वह उसको देने मे असमथ था। शायद पलभर का चैन तो उसकी अपनी जिन्दगी मे भी नही था।

और वसे वह शहर का सबसे बडा कारखानेदार था। नम्बर एक अमीर था। हाँ! किशना बढई उस दिन बहुत उदास था। बीती जिन्दगी का एक-एक पल, एक-एक घटना उस याद आने लगी।

गाँव में वह घोटने बनाया करता था। गाँव के एक सिरे पर उसका घर था। घर के सामने छोटा-सा आँगन। आँगन में घना शहतूत। शहतूत की ठण्डी-ठण्डी छाँव। खद्दर की गाढ़ी बाँधे, पटपीठ और पैरों में नंगा, शहतूत की ठण्डी-ठण्डी छाँव में बैठा वह घोटने बनाता रहता। माथे से पसीना पोंछता रहता।

जो कोई कहता—'ओए किश्न ! ससुर, किसकी खातिर टुट-टुट मरता है दिन-रात ? दो घड़ी गर्मी में तो आराम कर लिया कर ! देख तो अंग पसीना-पसीना हो रहा है ?' तो वह हँसकर जवाब देता—'ओए भले आदमी, काम तो आदमी का धर्म है। महनत करने से एक तो मन को तसल्ली रहती है, दूसरे देह कुन्दन की तरह रहती है। सही महनत का तो पता ही आदमी के पसीने से लगता है। कभी सुनी नहीं वो कहानी।

फिर वह खुद ही कहानी सुनानी शुरू कर देता—

'एक बार एक देवता सुरगलोक (स्वर्गलोक) से मातलोक (मृत्युलोक) में उतर आया। यहाँ उसे बहुत गर्मी लगी। प्यास ने उसे बहुत सताया। परियों उसके लिए ओस और फूलों का रस जमा करके लाई, लेकिन प्यास उसकी फिर भी न बुझी। परियाँ फिर पानी की तलाश में निकली। घास के ऊपर से ओस उड चुकी थी। फूलों का रस समाप्त हो चुका था। आस-पास कुआँ कोई था नहीं। तलया-तालाबों का पानी सूरज ने चूस लिया था। घूमते घूमते परियों को एक पेड़ के नीचे कुछ गीले कपडे दिखाई दिए। उन्होंने वो कपडे एक बरतन में निचोड लिये। पानी से भरा वो बरतन उन्होंने देवता के सामने जा रखा। जब उसने पानी पी लिया तो उसे बड़ा स्वाद आया। उसने परियों से कहा—इस पानी ने तो मेरी जन्म-जन्म की प्यास बुझा दी है। इसमें से मुझे चरनामत (चरणामृत) जैसा स्वाद आया है। जहाँ से यह पानी लाया गया है, मुझे वहाँ ले चलो।

जब वो उस जगह पहुँचे तो कपडे वहाँ नहीं थे।

लक्कड़हारा शहर जा चुका था।

'कपड़ा में उसकी मेहनत का पसीना था !'

यह कहानी सुनकर आगन्तुक जब नजरें झुका लेता तो किश्ना उसका कंधा झंझोड़कर कहता, पुत्त (बेटा), जिस पसीने से तू नाक चढ़ाता है, देवता इसके लिए तरसते घूमते हैं।

आगंतुक सिर हिलाकर सहमति प्रकट करता।

किश्ना बढ़ई फिर घोटना बनाने लग जाता। जब वह इस काम से खाली होता तो और छोटे मोटे काम करने लग जाता। कारखाने में, लोगों के घरों में, मंजे पीढ़ियों की चूलों में झालें लगाता रहता। नई बाहियाँ-मरू डालता रहता। पंजालियों में नई अरलियाँ घड घडकर डालता रहता। खराब हो गए चक्र ठीक करता रहता। चरखों की मुनियाँ बदलता रहता। बच्चों के लिए गिल्लियाँ गढ़ता

रहता। टुल्ला मार-मार वो गिल्लिया गुम कर देते। वह और गढ देता। इस प्रकार वह व्यस्त रहता।

उसके मन को तसल्ली रहती।

जब वह आगन मे बैठा थक जाता तो उठकर गाँव मे चक्कर लगान लग जाता। वहाँ किसी की पीठी ठोक आता। चक्कियो के घिस पुड राह देता। रास्ते मे मिलने वाले मर्दों-औरतो से मसखरिया करता वह घर की ओर लौट पडता। कोई दाने देती, कोई गुड देती, कोई दूध का गिलास देती और कोई वैसे ही 'दवरा' कहकर आख मार देती।

वह स्वाद स्वाद हो उठता।

जब कभी वह शीशे मे अपना चेहरा देखता तो माथे पर चाद जैसा तिरछा दाग देखकर लहर-लहर हो उठता। जैसे उसके दिल मे कोई काँग उठ खडी हो। एकदम सारी घटना उसकी आखो के सामने आ जाती।

आगन मे बैठा वह घोटना बना रहा था। बचने के वटे मेलू ने गिल्ली-डडा खेलते इतने जोर से गिल्ली फेक मारी कि गिल्ली का तीखा सिरा किशना के माथे पर आ लगा।

वह लहूलुहान हो गया।

मेलू की मा करतारो दौडी आई। उसने एकदम अपनी मलमल की नई चुनरी से पट्टी फाडी और ठडे पानी मे भिगोकर किश्ने के माथे पर बाध दी। पानी पट्टी से किश्ने को राहत-सी मिली। वह हैरान हुआ देखता रह गया। अचानक यह सब कुछ कैसे हो गया था।

किशना को लगा जैसे करतारो अभी भी घूघट निकाले, कापते हाथो से उसके माथे पर पानी-पट्टी बाँध रही हो।

वह हर रोज आगन म बैठा घोटन बनाता रहता—फूलदार घोटन, जिन पर हाथ रखने से फिसल फिसल जाता था, जिनकी चर्चा दूर-दूर के गावो मे होती रहती थी। दूसरे गावो के लोग जब किश्ना के गाव मे से होकर गुजरते तो वो शहतूत की छाव मे घडी-पल सुस्ताते, उसके साथ बातें करते। जाते-जाते एक एक घोटना खरीदकर ले जाते। रास्ते चलते किश्ना की बातें करते रहते। उसके बनाये घोटना की तारीफो के पुल बाधते रहते। इस तरह रास्ता तय हो जाता।

गौने जाती लडकिया जब यह देखती कि उनके दहेज मे किसी न घोटना नही रखा तो वो रूठ रुठ जाती, रोटी न खाती। दहेज देखने के लिए आई औरतें ठोडियो पर हाथ रख रखकर कहती—'क्या सुआह (राख) दी है लडकी को? घोटना तो बीच मे रखा ही नही, जो दाज दा शगार (दहेज का शृगार) है।'

इसी तरह गाँव के ब्राह्मणा की लडकी रूठकर बैठ गई थी। गाँव मे बडी चचा हुई। लोग काम-काज से फारिग होकर जब मिल बठे तो इस घटना के बारे म बात

चल निकली। हर कोई एक से बढ़कर एक बात सुनाता था। लोग मजे ले रहे थे। गजन ने कान पर हाथ रख लिया। आखें बन्द कर ली और बोली गाने लगा—

ताव, ताव तावे,
बाहमणा दी धी रस गी,
जदा तुरन लगी मुकलावे।
दाज विच घोटना नही,
झोरा ओहदया हड्डा नू खावे।
देखो बापू तोर दम,
विच धरके मजे दे पावे।
निम्म दिआ घोटनया !
तेरी सिफत करी न जाव।
निम्म दिया घोटनया

(गौना जाते ब्राह्मण की बेटी रूठ गइ। दहेज म घोटना नही, यही परेशानी उसकी हड्डियो को खाए डाल रही है। बापू ने दहज म खाट के पाये रखकर उसे चलता कर दिया। नीम के घोटने ! तेरी तारीफ नही की जा सकती।)

किश्ना बढई बोली सुनकर झूम उठा। उसने उठकर लडके को थपकी दी और कमर स बाधी हुई खद्दर की साफी की अण्टी खोलकर रुपया उसको पकडा दिया।

लोग और भी खुश हो गए।

किश्ना बढइ की जिन्दगी छोटी छोटी खुशिया, छोटी छोटी नाराजगियो से गुजर रही थी। उसका जीवन पानी म तरती उस नाव की तरह था जिसे पानी म उठती छोटी छोटी लहरें डूब जाने का खतरा उत्पन्न करने के स्थान पर उसे धीमे से झुला भर जाएँ। लेकिन एक दिन किश्ना को अपनी जिन्दगी की किश्ती डावाँ-डोल होती लगी। उसकी घरवाली अचानक बीमार हो गई। उसने उसके इलाज में कोइ कसर न छोडी। वह दिन रात उसकी सवा करता रहा। लेकिन एक दिन वो किश्ना को इतनी लम्बी चौडी दुनिया म अकेला छोडकर चलती बनी। किश्ना ने इसको 'रब दा भाना (ईश्वर इच्छा) समझा और दुख अन्दर-ही अन्दर पी गया। व्यस्तता उसके जीवन म फिर आ गई। वह अपने काम मे लीन रहने लगा।

उसके जीवन की गति फिर सामान्य हो गई।

आखिर उसका दामाद उसे शहर ले आया और शहर म आए उसे अब पाँच साल हो चले थे। इन पाँच साला म उसन अपन दामाद का दिल जीत लिया। आखिर वह उसका ससुर था और अपन दामाद का बुरा कैसे सोच सकता था—

किश्ना सोचता और सोचता रह जाता।

वह गद्दी पर बैठा रहता। बाहर से आए व्यक्तियों के साथ बातचीत करता। कारखाने में काम करनेवालों के काम की निगरानी करता।

यही उसके जिम्मे काम था।

'यह भी कोई काम है? काम करते हुए लोगों को देखना! अगर यह भी काम में शामिल है तो रब्ब बख्शे मुझे ऐसे काम से। मैं हैरान हूँ कि ये लोग जो दूसरों के काम को देखना ही अपना काम समझते हैं, जीते कैसे रह जाते हैं?'

उसे सोच घेर लेती।

अब वह उदास रहने लगा।

उसकी हड्डियां टूटती रहतीं। उसका सिर चकराता रहता। उसे जँभाइयां आती रहतीं। आंखों में पानी भर भर आता।

वह झुंझला उठता।

उसके दामाद ने उसे खुश रखने की खातिर पैसा पानी की तरह बहा दिया। मगर वह उदास का उदास रहा। पैसे से खरीदा ऐश का सामान उसे लुभा न सका। वह पलभर के चैन को तरस गया।

आखिर उसका दामाद उसे डॉक्टर के पास ले गया। डाक्टर ने उसकी नब्ज देखी, जीभ देखी। जब कुछ समझ न आया तो उसने किश्ना से पूछा—

"क्या बीमारी है?"

किश्ना ने जवाब दिया, "बस जी, दिल उदास-सा रहता है। मन खुलता ही नहीं। जैसे मेरे भीतर किसी चीज़ की कमी हो।"

"समझ गया, समझ गया," डाक्टर ने कहा, "आपके शरीर में विटामिन 'बी' की कमी है। आप 'बी काम्प्लैक्स' की गोलियाँ खाइए।'

वहां तो किश्ना चुप रहा, लेकिन जब वो दोनों दुकान से बाहर निकले तो किश्ना ने हँसकर कहा, "यह तो स्साला अभी पता लगा कि दवाइयों के खाने में भी दिल लगन लगता है।"

अब उसके दामाद के पास एक ही इलाज रह गया था—शराब, जिसे पीकर आदमी उन पलों का बादशाह हो जाता है, जो बड़ों-बड़ों के गम गलत कर देती है। किश्ना भी शराब के नशे में सब दुःख-तक्लीफें भूल जाएगा। रंगीनी उसकी जिन्दगी में उतर आएगी।—उसके दामाद ने सोचा।

उस दिन छुट्टी थी।

किश्ना बढ़ई और उसका दामाद बैठे गम गलत कर रहे थे कि अचानक किश्ना उठकर बाहर चला गया। शायद वह और बोतल लाने गया था।

उसका दामाद खुश था।

किश्ना बढई अभी शराब लेकर नहीं लौटा था। अन्दर चारपाई पर लेटा उसका दामाद बडी बेसब्री से उसका इन्तज़ार कर रहा था।

उसे तलब महसूस हो रही थी।

बाहर ठक-ठक की आवाज़ हुई। किश्ना के दामाद ने करवट बदल ली। बाहर फिर ठक-ठक की आवाज़ हुई।

वह खुश ही तो हो गया। उसका ससुर शराब की बोतल लेकर आ गया था शायद, और वो दरवाजा खटका रहा था। उसने उठकर एकदम दरवाजा खोला।

वह हक्का-बक्का रह गया।

बाहर आँगन में किश्ना बढई शराब से पेट भरे बैठा था। पास उसके शराब की भरी बोतल पडी थी। एक हाथ में उसके बसूला था, दूसरे हाथ में लकडी का टुकडा।

और वो घोटना बनाने की कोशिश कर रहा था।

अनुवाद यश सरोज

कुरसी

—रघुबीर ढण्ड

हम सभी उधर देखने लगे जिधर से चाँटा, घूसा और नगी-नगी गालियों की आवाजें आ रही थीं। जब मे आवाजें स्कूल की सीमा के भीतर प्रवेश करने लगीं, तब मेरे मित्र हैडमास्टर बलबीर ने ऊँची आवाज मे ललकारा, "खबरदार जो अब हाथ लगाया तो!" लेकिन ललकार थोडे से प्रभाव के पश्चात बेकार हो गई। बलबीर ने जाके उसकी कलाई पकडकर झटक दी, "कंजर के अमली, कुछ होश कर! अगर लडका मर गया तो "

अमली मेरी कुरसी के पास खडे नीम के साथ जा लगा। बलबीर ने लडके के मुडे सिर पर हाथ फेरा। उसके गालो पर पोछे गए आँसुओ की लकीरें साफ दिखाई दे रही थीं। परन्तु वह इतना डरा हुआ नही था। वह मोटे बेडौल नैन-नक्श वाला बडा कद्दावर लडका था—अनगढ पत्थर जैसा। बलबीर ने उसे हाथ-मुह धो क्लास मे जाकर बैठने के लिए कहा। जब वह चल दिया तब मेरी नजर उसकी तगडी टागो और धूल भरे चिपटे पैरो पर पडी। मैंने सोचा कि गरीबो के बेटे कुछ जरूरत से ज्यादा ही आज्ञाकारी होते है। नही तो इसकी एक ही ठिब्बी से अमली बाप की चकरिया घूम जानी थी।

अमली अभी भी नीम के साथ हाथ टिकाए हाँफे जा रहा था। सास लेने के दौरान जो क्षण बचता उसमे लडके को कोसता जा रहा था, " मा का खसम! मैं नगे पर स्कूल नही जाऊँगा! जैसे कही मजगराइयाँवाले सरदारो का काका हो। सारा मुलख (देश) नगे पाँव घूमता फिरता है इसे ही मौत पडती है "

बलबीर ने अमली को प्यार भरी झिडकी दी, "चल बस भी कर अब! ऐसे ही चिल्लाए जा रहा है। जो चार सास आने है उनसे भी जाएगा। बैठ जा, घडी-भर आराम कर ले यह अपना दोस्त है वलैत (विलायत से) आया है कोई बातचीत सुना इसको!'

बलबीर क्लास की ओर चला गया। अमली मेरे सामने नीम से टेक लगाकर परा के बल बैठ गया।

यह घटना घटित होने से पहले मैं बडे आनन्द मे था। नीम की घनी छाव

छाँव मे रखी मेरे लिए विशेष रूप से घर मे मँगवाई गई पुश्तैनी कुरसी पर मैं बैठा था। गाँव से थोडा हटकर बने हुए स्कूल मे दो ही अध्यापक थे—मेरा दोस्त बल वीर और धर्मेंद्र। मेरे सामने कुछ सौ गजो के अंतर पर भठिंडा ब्रांच नहर चुपचाप बह रही थी। बहुत ही सफेद पानी, जैसे कुआँरी बर्फ पिघलकर कौल पूरा करने के लिए यार के टीले की ओर चली जा रही हो। फसलें काटी गई थी। खलिहान मे मनको की ढेरिया के सोने का रूप झेला नहीं था जा रहा, लेकिन कुबडी पीठो वाली औरतें सिला क्या चुन रही थी?

खैर, मैं ऐसा कुछ भी नहीं था सोच रहा। अशोका होटल की शाम का नशा अभी भी मेरे मन मस्तिष्क पर बराबर छाया हुआ था।

दिल्ली की शाम थी अप्रैल की तपी हुई शाम धूल और धुएँ के बादलो मे लिपटी हुई शाम! भीड और शोर से शाम की कनपटियाँ फट रही थी। सो मैं करीब डेलीगेट अशोका होटल मे दाखिल हुए। धूल धुआँ, भीड और शोर गेट के आगे खडे छः फुट, तुर्रेदार पगडियोवाले सिक्ख नौजवान पहरदारो से आगे नहीं था जा सकता। हम अन्दर थे। भारत की सारी कला दीवारो पर चिपकी हुई थी—चप्पा-चप्पा एयरकण्डीशण्ड, कोने-कोने रवि शकर की ठुनक रही सितार। हम सब खूबसूरत कुरसियो पर बैठ गए। इतने लम्बे-चौडे हाल मे कन-पीस गलीचा देख मैं हैरान रह गया। हाय ठीक ही करामाती रात हैं। हम खाना खाने लगे। एक कोने से दूसरे कोने तक मेजो पर इतने प्रकार के खाने थे कि बचपन से सुनते आए छत्तीस प्रकार के भोजनो का मिथ साकार हो खडा हुआ था। जितना खाया उससे दो गुना छोडा। मेरा दिल किया कि प्रबन्धको से पूछू कि यह जूठन कौन खुशकिस्मत खाएगा? लेकिन यह बात अशोका होटल के स्तर की न होने के कारण मैंने अनकही ही रहने दी। तभी तबला बजा, सितार ठुनका और घुघरू छनके। सामने नृत्य के लिए सजी धजी नर्तकी हाथ जोड प्रणाम कर रही थी। फिर वह अग्रेजी बोलने लगी। फिर नाचने लगी। सितार और तबले वाले उसके नृत्य को सगीत मे ढालने लगे। वह एक भाव नाचती और फिर व्याख्या करती—देखिए, अब मैं माथे की त्योरियो के साथ, आखो से, भृकुटियो से, नाक से, होठो से, ठोडी और गालो से रौद्र भाव नाचने लगी हूँ—अब वैराग्य अब करुणा अब प्रसन्नता और अब प्रेम

डेलीगेट झूम रहे थे। मेरे दाएँ-बाएँ आस्ट्रेलिया और जाम्बिया के डेलीगेट बैठे वाह वाह कर रहे थे तसवीरें ले रहे थे टेप कर रहे थे, और मुझे हिन्दुस्तानी होने के सबब शाबाशी दे रहे थे। मुझे जिसको अगर सामने जलवागर नर्तकी व्याख्या न करती तो यह भी एहसास नहीं हो सकता था कि ऐसी खूबसूरत जगह कोई वैराग्य और करुणा जैसे भाव भी नाचने का हौसला कर सकता है। तकरीबन एक घण्टा यही परी नाच होता रहा। फिर सुन्दर नर्तकी ने हाथ हिन्दुस्तानी अन्दाज मे

जोड 'थैंक यू' कहा। जब वह परद के पीछे चली गई तो मेरे साथ के डेलीगेटो ने कहा, "यह तुम्हारा देश है। उस नतकी से कहो कि हम उसके आटोग्राफ लेना चाहत है।" मैंने प्रबधक स कहा और उसन मुझे विश्वास दिलाया कि नतकी कपडे बदल के आएगी। वह आई, जैसे परी इन्दर के अखाडे से मत्युलोक मे उतर आई हो। वह आटोग्राफ देती गई। थक यू लेती गई। मुस्कुराती रही और आखो पर गिरते बालो को काना के पीछे ले जाती रही। उत्तरी कोरिया का डेलीगेट बोला, "मडम, आपके नाच ने तो मन्त्रमुग्ध कर दिया हम ! क्या आप गावो म जाकर भी नत्य प्रस्तुत करती हैं?"

नतकी की कलम रुक गई। उसने तराशी हुई भौंह ऊपर उठाई और सिकुडी-सी मुस्कुराहट के साथ वह बोली, "सर, नृत्य सभ्य लोगो के लिए किया जाता है।'

मुझे और डेलीगेटो का तो पता नही, अशोका होटल वाली नतकी मेरे दिल दिमाग पर छाई रही—कल दिल्ली से पजाब आते समय भी।

और आज स्कूल म नीम की छाँव में शाहाना कुरसी पर बठे हुए भी मेरा ध्यान उधर ही लगा रहा। मेरे सामने नहर का चादी-रँगा पानी किनारा पर झाग फेरता बह रहा था और मुझे ऐसे लग रहा था जसे अशोका होटल वाली नतकी पानी पर नाच रही हो और उसक क्रोधित नत्य से पानी उबल गया हो, और फिर उसने अपन घुघरू इतनी शात अदा के साथ छनकाए हो कि ख्वाजा पीर एकदम ठण्डे शीत हो गए

मुझे वह अप्सरा दूसरी औरतो के साथ सिला चुनती भी नजर आती। सिला-तिनके उसके बालो म उलझ उलझ जाते। पसीना-पसीना हुए गालो म ताबा तपने लगता। उसकी गदन पर घमोरियाँ निकल आती। रग सावला हो जाता। लम्बे काले बाल टूट झडकर बालिश्त भर की लटूरिया बन जाते और वह लाभी चमार की बचनी जैसी हो जाती। बचनी बल्कि लम्बी, सुडौल और तराशी हुइ लगती। सारा वातावरण ही मुझे विधाता का रूप प्रतीत होने लगता।

उसकी एसी हालत देखकर मुझे उस पर बडा तरस आया। मैं फौरन उसको अशोका होटल ले गया।

फिर अशोका होटल फिर वही नाच फिर सभ्य तबके की तरफ स मर-हबा !

मगर कम्बख्त अमली उसकी दाल म ककड की तरह आ किरकिराया।

मैंने अमली की तरफ बडे गौर से देखा। उसकी आँखें बडी मोटी और लाल थी। वैसे आंखो म जिन्दगी की चमक की जगह उदासी थी। उसने जो कपडे पहने थे वो बडे ही घिसे हुए थे—वसे थे साफ। उसने बडे करीने के साथ जेब म से लैम्प की डिब्बी निकाली। लेकिन मैंने उसको 'बैंसिज एण्ड हैजिज' की सिगरट दी और

लाइटर से जलवा दी दो-तीन सुट्टे मारकर उसने सिगरेट बुझाकर कान पर टाग ली और उसकी जगह लम्प की सिगरेट लगा ली और उसको छोटी उँगली मे टाग सुट्टा लगाया।

"क्या बात है मेरे वाली नही पी ?"

"वो बाऊजी, तब पिऊँगा जब तलब कम होगी। नशा तो लम्प की सिगरट के साथ ही होता है। एक बार तो साली काटती चली जाती है।"

अमली आदमी दिलचस्प था।

"नाम क्या है तुम्हारा ?"

"जी नाम तो अर्जुन है, मगर बुलाते सारे 'अर्जू अजू' करवे ह।"

"काम क्या करते हो ?'

अमली ने चुटकी मारकर एक भरपूर कश खीचा। बाला—"जी जवानी म नगोजे बजाया करता था। अब शरीर नशो ने गला दिया है। फेफडा म पहले जसी लचक ही नही साँस बीच मे ही टूट जाना है।'

मेरी दिलचस्पी बढ गई। पूछा "उन दिनो कसा बजात थे ?'

उसकी सिगरेट खत्म हो गई थी। कान पर से मेर वाली निकाल सुलगात हुए बोला, 'तब तो जी एक बार तो 'वाह-वाह' करा देता था," फिर श्राह भरकर बाला—"मगर बाऊजी, सम समे समरथ, ओही अरजन दे बान सन, ओही अरजन द हथ !" (समय समय समथ, वही अजुन के तीर थे, वही अर्जुन के हाथ)

"अब फिर गुजारा कस चलता है ?"

अमली ने आखिरी कश लगा के टुकडा फेंक मारा। बोला, "बस, जसे-तैसे दिन काटते हैं। घरवाली और लडकी मिला-सुला चुन लाती है या कख-कण्डा। आप कोई डगर पशु पाल लेता हूँ या दिहाडी दफा कर लेता हूँ। मगर अब साले भइयो का बेडा बैठ गया है। अपने आदमी को तो दिहाडी अब मिलती ही नही।'

जी किया अमली को सवहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का पाठ पढाऊँ। मैं इस याग्य भी था। अशोका होटल से नतकी के घुघरआ की छनकार सुनकर आए व्यक्ति के लिए सिद्धान्त बघारने का गुर आना कोई मुश्किल काम नही होता। फिर सोचा कि अमली को कहन से भूख लगेगी, लडका जूता मागगा और एसी हालत म अमली से सवहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद हजम नही होगा।

सोचते सोचत मैं इगलण्ड पहुँच गया। हम सब अवामी भइये बन गए और अँगरेज मजदूर 'अजुन अमली'! अ दर से तो काई अन्तर नहीं था—केवल 'साले भइये' की जगह ब्लक बास्टड हो गए थे।

"बाऊजी कही दूर चले गए लगत हो!" पता नही कितनी दर क इन्तजार के बाद अमली न मुझे बोलकर जगाया।

"नही, मैं तो तुम्हारे लडके के बारे मे सोच रहा था। पढाकर क्या बनाओगे उसे?"

अमली बोला, "बाऊजी! यह कौन सा अपने बस म है! जो उसकी किस्मत म हुआ, बन जाएगा। लेकिन अगर मेरा जोर चला तो दो काम तो नही ही करने दूगा उस। एक तो पुलिस मे भर्ती नही होने दूगा, और दूसरा उसे गाने वालो म शामिल नही होने दूगा।"

"क्या? यही ता दो पेशे है इज्जत मान वाले लोगा की सेवा वाले।"

वाक्य मेरा अभी पूरा ही हुआ था कि अमली की आंखा मे लाल डोरे उभर आए, जैसे किसी न अभिमयु का सिर धड से अलग कर दिया हो। घास-फूस चुगने वाली औरतो के ठीक पास से ही एक कहर का बगूला उठा और सब-कुछ बुहारता नहर की ओर भाग चला, लेकिन किनारो पर पहुँचकर बिखर बुखर गया।

और अमली कडवाहट थूकने लग गया—कडवाहट, जो शायद उसने मेरे लिए ही सँभालकर रखी हुई थी, "बाऊजी! आप शायद हमारी दुनिया मे नही रहत। राक्षसा म तो शायद कही-न-कही तरस का कोई टुकडा हो, मगर पुलिस म नही। हमन सुना नही, भागा है। यह मास्टर है न बलबीरा—इसके घर म से ही का लडका, हरभजन भजो भजो कहकर बुलाते थे। बडा ही सोहना (सुदर) और चौदह जमात पास। इतना नम, इतना मीठा कि कहना ही क्या! मुझे भी 'चाचा' कहकर बुलाता था। देर बाद मिलता तो मेरे घुटना को हाथ लगाता था। लोग तो खाली बाते करते है, वो करके दिखाता था। ब्याह कराया तो कोई बारात नही लेकर गया। अकेला गया और बहू का तीन कपडो मे स्कूटर पर बिठाकर ले आया। और बहू भी बडी सुशील, सुबह उठकर नाम लेने योग्य, सुचार।"

"फिर?" मैंने उम टोका। मुझे अमलिया के बारे मे मालूम था कि वो जिधर को चल दें चलते ही जाते हैं।

'फिर क्या एक रात गोलिया चली और गाव के सरदार शमशेर सिंह को किसी न मार डाला। चली तो बाऊजी गोली लेकिन सरदार काटा किरपालो के साथ गया। दूसरे दिन पुलिस की धाडो की धाडें उतर आइ। एक सिरे से सारा गाव बाध चौपाल म ला बिठाया। हलवाहा के हल छुडा दिए—भटठे से इटे निकालने के लिए जाते लोग राह से लौटा लाये गए, स्कूल के लडके घेर लाये गए, ईदू बबे वाल की हौदी तोड दी और पानी के बहाव ने फसले उजाड दी। बलबीरे मास्टर का चाटो से मुह लाल कर दिया। हा हाकार मच गया। डी०-एस० पी० बटी की गाली के बिना नही बोलता था। कहे—नकसलिया के सरदार का खून किया है, और खूनियो का अगुआ है भजो। उसे हाजिर करो, नही तो बच्चो समेत घानी पीड दूगा। खूनी जसी आँखें थी डी० एस० पी० की। भजो के बाप का रफल (राइफल) के बटो स कधा तोड दिया और डी० एस० पी० ने

खुद उसकी सफेद दाढ़ी झाड की तरह उखाड डाली। उसने बाऊजी, बहुत वास्ते डाले—भई मैंने बहू से पूछा है, भजो तो कितने दिनों से घर ही नहीं आया। बस बाऊजी, फिर क्या था—भजो की बहू को इजलास में तलब किया गया। उसने गाव की बहू होने के नाते इजलास में आने से ना-नुकर की। तैश में आया डी० एस० पी० गारद ले उसके घर जा घुसा। राक्षस ने उसकी चुनी गले में डाल ली। एसी गालियाँ और गदगी बकी कि बताते जीभ को तदुआ पड जाए। फिर बहू की कमीज का गला पकडकर लगार कर दिया और फिर जोडकर रफ्ल का बट उसकी छाती पर मारा वाहगुरु की सौंह ! बाऊजी, दूध की ततीरी (धार) डी० एस० पी० के मुँह पर जा गिरी और वो राक्षस माँ के दूध को थूकने लगा और बड़े सरदार का भाई सफेद रुमाल से उसका मुह साफ करने लगा ।'

एक चुप !

मैंने अमली के कन्धे पर हाथ रख दिया और वह चीत्कार करता मुझसे चिपट गया। हिचकियाँ लेता रहा और टूटी-टूटी बातें करता रहा—"तीन दिन यही अधी पिसती रही। तीसरे दिन भजो को पुलिस मुकाबला बनाकर मार दिया तीन बरस हो चले हैं बाऊजी, लोग आज भी थर्रा-थर्रा उठते हैं '

फिर वह मुझसे थोडा-सा हटकर बैठ गया। सिगरेट सुलगाई। फिर एक लम्बी चुप पसर गई—चुप, जो शान्ति जसी नहीं थी। अब वह रो नहीं रहा था। लेकिन उसकी आखें एसी थीं जैसे सूरज पश्चिम के बजाय उसकी आखो में भर गया हो।

मेरा दिल तो हुआ कि अमली की चीर-फाड करूँ—'तुम तो अर्जुन थे ! द्रौपदी के चीरहरण के समय तुम्हारे गाडीव धनुष ने अँगडाई क्यों न ली ?' साथ ही यह भी पूछू कि 'तुम्हारे गाँव में बस एक भजो ही बाज था ? बाकी सब चिड़ियाँ ही थे ? उनको बाज क्या न बनाया ?'

लेकिन अमली तो बिल्कुल बुझ गया था। मैंने बात का रुख ही बदल दिया—
' लेकिन तुम अपने बेटे को गाना-बजाना क्यों नहीं सिखलाना चाहते ? '

लेकिन वह 'एक्सक्यूज मी' कहे बिना ही नल की ओर चल दिया। मेरी नजर उसके पीछे-पीछे ! उसने कुल्ला किया, आखो पर छीटे मारे, पानी के दो चार ओक भर पिए, और लौट आया। जेब में से डिब्बी निकाल जरदे की एक चुटकी मुह में टिकाई, बोला, ' साला कलेजा खाली-खाली सा होने लगा था क्या रखा है गाने बजाने में बाऊजी ! मैंने सारी उम्र लगा दी, साथ ही मेरे बाप ने ! लेकिन कमाया क्या ? आह ! भूख ! नंग ! शरीर को नशे फालतू के लगा लिये। आज ही देख लो ! लड़का जूते के लिए कई दिनों से कह रहा था। मुझे क्या पता नहीं भई कि उसके पैर जलते हैं ? लेकिन लेकर कहाँ से दू ? यहाँ तो दो वक्त की रोटी की भी फिक्र है।"

उसकी आँखें फिर से लाल हो गईं और उसने खेता मे सोने की तरह चमकती कनक की ढेरियों की ओर देखते हुए कहा, "यह देख लो, कितना अन्न पड़ा है। लेकिन मैंने यह ढूंडी से लेकर खाना है। यही हाल मेरे बाप का था। आपने पाथर सारगी वाले का नाम तो सुना होगा ? मेरा बाप था वो सारे देश म मशहूर। मैं किसका पानी-हार हूँ। टिकी हुई चाँदनी रात में जब सारगी बजाता था, ढाडी वाली आन है, चाँद आसमान म चलना बन्द हो जाता था। खबर नही उसे कौन सा दद था। झाँजरो की तरह सारगी के गज के घुघरू छनकते और सारगी ऐसे बजती जैसे कोई रो रहा हो और वो खुद रोने लगता। फिर कई बार जगेडे की कोठी वाले आम के पेडो म मोर बोलने लगते। मैं पूछता, 'बापू ! बादल तो घिरा नहीं, मोर क्यो बोलते हैं ?' बापू कहता, 'मेरी सारगी पर मोहित हो जाते ह।' बेबे खीझी-खीझी रहती—'तेरे बाप का दिमाग हिल गया है !' बापू का एक गुरुभाई होता था—रायकोटिया बलती। बड़ा स्नेह था उसका मुझसे। वो बताया करता था—'पाथर जब सारगी बजाता है, तो मोर पहले तो मस्ती मे गाते हैं, फिर घुघरुओ के साथ पैर मिलाकर नाचते ह, फिर सारगी के दद के साथ विराग रोने लग जाते है। उनके आसू धरती पर गिरने से पहले ही मोरनिया अपनी चोचा मे भर लेती हैं, और और और वो गाभिन हो जाती है।' इस पिछली बात पर बाऊजी, वो थोडा सा अटक जाता था। मेरे खयाल म वो कुछ झिझक जाता था। चाचे की इस तरह की बातें सुन मैं बापू को बडे गौर से देखता तो वो मुझे कोई वली जान पडता। मैं बापू से बेहद मोह करने लगा। जब वो घर होता तो मैं टिक्की बनाकर बडे प्यार से चिलम म तबाकू रख उपले की आग धरता। नैचे म तरफाज फेरता और हुक्का ताजा करता। पाच सात कश लगा हुक्का चला भी देता। बेबे बोलती रहती, लेकिन बापू उसकी बाता की ओर ज्यादा ध्यान नही दिया करता था। वो जब भी कोई बात करता तो सारगी की ही बात करता, या हाथो को करतालो की तरह बजाता रहता। मेरे पूछने पर बताता—'ऐसे करने से हाथा की लचक नही मरती।' मैं बडे प्यार से उसकी उँगलियो के पटाके निकालता रहता। बापू के हाथ नरमे जसे नरम थे।'

अब अमली काफी ठहराव मे था। मैंने पूछा, 'तुमने सारगी क्यो नही सीखी ? तुम्हारे तो घर मे गगा थी ?"

"दो बाता की वजह से," वह बोला—"एक तो शुरू से मेरा सुभाव (स्वभाव) कुछ ऐसा था कि बात मेरे सिर पर पीछे चढती थी, पहले दिल को काट लेती थी। बडे कमजोर दिल का था मैं ! बहुत जल्दी रो पड़ता था। सारगी बीन जसी चीज है बाऊजी, सीधी दिल मे उतर जाती है। मैंने शुरू म सारगी की ही बोहनी की थी, लेकिन बात नही बनी। बापू कहता तो कुछ नही था बस उदास हो जाता था।

दूसरी बात यह हुई कि एक बार पूनों की रात बापू आंगन में सारंगी बजाने लगा। वो इतना मस्त हो गया उसकी पगड़ी का लड़ खुलकर उसके गले में गिर गया। वो रुका नहीं। बस, गरदन का झटका देकर पगड़ी दूर फेंक दी। पूरा चांद बादल के एक टुकड़े के पीछे जा छिपा। तब से लड़का ने बोली जोड़ ली—

पाधर जदों सारंगी वजाउन लगिआ,
बदली दे हेठ चंद आउन लगिया।

(पाधर जब सारंगी बजाने लगा तब चांद बदली के नीचे आने लगा)

बापू और भी मस्ती से बजाता रहा। चांद का फिर दीदार हुआ। लेकिन भाना कर्तार दा, वहीं से सांप निकलकर बापू के सामने खेलने लगा। डर के मारे मैं सुन्न हो गया। मुंह सूख गया मेरा और मैं दम-बदम पीछे जा खड़ा हुआ। बेबे ने हाल-दुहाई मचा दी और डांग निकाल लाई अन्दर से। बापू ने चीख मार के बेबे को दीवार के साथ लगा दिया। फिर सांप आप ही कहीं चला गया। मैं सारी रात कांपता रहा। एक-दो बार सोते में डरकर भी उठा। बापू ने मुझे अपने साथ लिटा लिया। सुबह उठकर कहने लगा, 'अरजू! सारंगी तेरे बस का रोग नहीं। नगोजे सीखना तुम!' मेरे मन से सांप का डर निकालने के लिए बापू छपार के मेले में तीन दिन मिट्टी निकलवाने मुझे 'गूगे' की माड़ी लेकर जाता रहा।'

"फिर सांपों का डर निकला कि नहीं?" मैंने पूछा।

"उम्र के साथ सांपों का डर तो नहीं रहा, लेकिन पुलिस और सरदारों का डर दिल में घर कर गया। किसी की बेटी बहन की शर्म नहीं। आदमी तो जैसे कीड़े मकौड़े हैं इनके लिए।"

सूरज और ऊंचा हो गया था। नीम की छांव ने करवट बदल ली थी। अमली ने मेरी कुरसी घसीटकर छांव में कर दी और आप नीम के साथ पीठ लगाकर बैठ गया।

'तुम्हारे बापू के समय तो तुम्हारा गुजारा अच्छा चलता होगा?'

"तब समय अच्छा था बाऊजी! मेलों और समागमों पर वो अखाड़े लगाते थे। अच्छी खासी भीड़ जुड़ जाती थी। गांवों में लोगों को बहुत शौक था। बापू ज्यादातर बाहर ही रहता था। गुजारा चल जाता था। लेकिन चलती का नाम गाड़ी है बाऊजी... बापू की बीमारी के दौरान बेहद तंगी काटी। मैं सारंगी भी बेचने चला गया..."

"सारंगी? किसको?" मुझे बड़ा धक्का लगा।

'डाक्टर के पास... जब बापू का सांस खराब होता था, तब वो लम्बी-सी एक सफेद सिगरेट पिया करता था। मैं डाक्टर के पांव पड़ गया। लेकिन वो सूअर की हड्डी था पूरा। ठोकर मारकर उसने सारंगी की कौली तोड़ दी। कहने लगा

—'सारंगी लेकर आए हो, मैं मीरासी हूँ ?' मैं उल्टे पाँव सारंगी लेकर मुड़ा तो मंडी से निकलते ही मोटू चमार मिल गया। वो सारा दिन घास खोदकर आखने मंडी बेचने जाता था। मेरी बात सुनकर उसने कमाये हुए बारह के बारह आने मुझे पकड़ा दिए स्वर्ग मे वास हो उसका ! लेकिन बाऊजी, बापू को अधरंग हो गया। बड़ी तकलीफ भोगकर मरा बापू। जिस हाथ से वो धरती-आकाश गुँजा देता था, वो हाथ मक्खी भी मुहू से नहीं उड़ा सकता था बड़ी तकलीफ भोगकर मरा बापू ''

अमली चीख मारकर रो पड़ा। फिर अंगोछे के साथ आँखें पोंछता नल की ओर चला गया।

मेरी नज़रें उसके पीछे-पीछे रहीं। ऐसा लगा, जैसे अर्जुन अमली नहीं, पाखरे का आधा हिस्सा चला जा रहा हो। दूर खेतों में कनक की ढेरियों का तावा दहक रहा था। सिला चुनने वालियाँ ऐसे भटक रही थीं जैसे मरुस्थल में पानी की तलाश में काली लाशें तिलमिला रही हों। तपते सूरज के हाथ से फुलझड़ियों जैसे तारे टूट टूट उन लाशों को बिना छुए ऐसे छितरा रहे थे जैसे घूमते हुए भी घूम न रहे हों, जैसे रोशनी में भी रोशनी न हो। हवा का एक बगूला उठा, घूमा, तड़पा और दौड़ा लेकिन कुछ भी बरबाद किए बिना, नहर के किनारे को छुए बिना कत्ल हो गया। कोई लाहा नहीं खड़का, कोई कत्ल नहीं हुआ। माँ की छातियों में से दूध का फुहारा छूटा और डी० एस० पी० के मुहू पर छिड़काव कर गया। सरदार का मुहू खराब होने का बड़ा दुख हुआ। उसने सफेद रूमाल से मुहू पोंछ डी० एस० पी० का मुहू पलीद होने से बचा लिया। किसने उठाया होगा वो रूमाल ? कोई हवा का बगूला उसे उड़ा ले जाएगा और किसी झाड़ी में फँसा देगा। फिर कोई साँप उसमें से दूध की खुशबू चाट लेगा और नशे की हालत में पाखर की सारंगी के सामने नाचने लग जाएगा। पाखर की सारंगी बजती रहेगी—बजती रहेगी। पूर्णिमा का चाँद बदली के नीचे जा छुपेगा। बिना बादल घिरे ही जगेड़े की कोठी वाले आमों में से मोर बोलेंगे—नाचेंगे, रोयेंगे, जिनके आँसू मोरनियाँ चाट जाएँगी पाखर कैसे यह सब कुछ बिना बोले ही बता जाता था जिसको अशोका होटल वाली नर्तकी व्याख्या के साथ ही बता सकती थी ? क्या पाखर की सारंगी से एक सिगरेट भी नहीं था खरीदा जा सका और उधर नर्तकी के ऑटोग्राफ लेनेवालों की बारी नहीं थी आ रही ? क्या क्या ? हे खुदा ! मंजिलों को सर करनेवाले काफिले किधर चले गए ?

अर्जुन के लौट आने से मेरी सोच और गुस्सा मर गया था।

उसके चेहरे पर आँसुओं की धारें नहीं थीं। लेकिन आँखें अभी भी लाल थीं।

उदासी की शिद्दत वातावरण की शिद्दत को मात करती जा रही थी। मैं इसके

लिए तैयार नहीं था। दद तो हम इंग्लैंड म ही बहुतरा झेल लेते हैं—चुपचाप। दद की कहानी सुनने की फुरसत किस है? यानी के मशीनी राज म आदमी भी मशीन होकर रह गया है। लाहा तो दद सुनता नही। बस शरीर बर्दाश्त करता है और बदाश्त करते-करते दम, शुगर ब्लडप्रेशर और जोडा के दद म एक दिन हार-टूटकर मर-चुक जाता है। बस एक हाय का नारा उठता है—बेचारा! दो गज़ जमीन भी न मिली कूए यार म! कूए-यार मे तो हम प्लाट खरीदने आते हैं—या वो पैसे जमा कराने जो पाँच-सात साल म दुगुने हो जाते हैं—या मा-बाप की मौत पर मोह और रस्मो के जकडे हुए—या विलायत की नेमता की डीगें मारकर अपनी बेटियों चाज करने आते हैं

मैंने अमली को सौ का नोट पकडाया।

"इसका क्या लाना है, बाऊजी?"

"कुछ नही, अपने लडके को जूता ले देना। कोई और साबुन-सोडा ले लेना, अगर बच गए तो।'

'मेहरबानी। महाराज बहुत दे लेकिन क्या खेचल (तरददुद) करनी थी।' उसने नोट तह करके जेब मे डाल लिया।

वह कुछ आराम से बैठ गया। सिगरेट लगाई। चेहरे पर चमक आई। आँखो म से लाली काफूर होने लगी।

"तुमने फिर सारगी तो सीखी नही। और कौन-सा साज़ सीखा?'

अमली मूड मे आ गया—'बापू ने कहा, 'अर्जुना, नगोजे बजा। दिल की बातें नगोजा की ज़बानी सुना। सरस्वती देवी से सगीत विद्या का वरदान माग, और बेटे, कोटले वाले शफी के पैरा मे पगडी रुपया रख द जाकर। उन दिनो तीन आदमी और साज सारे पजाब मे मशहूर थे—पाखर की सारगी, शफी के नगोजे, नगीने का तूबा! बापू खुद गया मुझे गुरुजी के पास लेकर। उस्ताद न बापू से सिफ दो बातें पूछी—'पाखरा, लडके को शौक भी है न?

—'हा, बहुत।

—'और लडका महनत से डरकर मा को तो नही रोने लगेगा?'

—नही शफी!

—'अच्छा तो अब तब मिलेंगे जब अजुन के नगोजा से गम राख मे आग की लपटें उठने लगेंगी।

" बस बाऊजी मैंने उस्ताद की बडी सेवा की। वो बडे तडके चार वाली डाकगाडी के साथ उठा करता था और मैं भी साथ ही' कुल्ला करके जोडी को धूप देते थे पहले। चाय पीकर दो घण्टे करते थे तीन घण्टे भी। अगर खाडव नहीं था ल र तप था।'

"कितना समय लगा पूरा माहिर होने मे ?"

"तीन साल मे उस्ताद ने मुझे थपकी दे दी। वैसे तो बाऊजी, किसी साज के लिए उम्र भी थोडी है। इस दौरान बापू मर गया था सारगी वेचने की बात जब मैंने उस्ताद को बताई तो वा उदास भी हुआ और खफा भी। कहन लगा—'पाग्रर तभी जल्दी मर गया।'

"खर, बापू चला गया। मरने से पहले उसका बोल बद हो गया था। उसने बस बडी मुश्किल से मेर कधे पर हाथ रखा और फिर उसी हाथ की उँगलियाँ हाठो के साथ लगा दी। मैं इसे बापू की आखिरी इच्छा समझ और भी मेहनत करने लगा। फिर एक दिन मुझे लगा जैसे मेरे फेफडे हैं ही नही, उनकी जगह नगोजे ही है। मैंने उस्ताद को बताया तो उसन मुझे गले मे लगा लिया। बोला—'तूने शारदा माता सिद्ध कर ली है। इस बार फर्लंड के मेले मे नगीने के साथ मैं नही, तू जोडी बजाएगा।'

"फर्लंड के मेले म बेहद भीड जुटी। पहले तो थोडा-सा डर गया, लेकिन फिर मन को कडा करके जोडी बजाने लगा। नगीना मेरे आग था। उसके आगे मुख्य गान और अय करनेवाला उसका मामा था माहोराने वाला शौकी। सबसे पीछे मैं था। हमने गडा धर लिया। मैंन शौकी स कह दिया था कि पूरन भगत पहले शुरू न करे—मुझे कही रुलाई न आ जाए। शौकी मान गया। उसन पहले दुल्ला भट्टी शुरू किया। बाऊजी, जब मुल्लर ने ताने देन शुरू किए तो मैं नशे मे हो गया। जब शौकी न दोना हाथो स झोली पसार कहा—'वे लख मरदाँ नू मामने, दुल्लिया खर खुदा तो मग' (मर्दों को लाख झमले ह दुल्ले, खुदा से खर माग), मैंने घुटना के बल बैठते हुए हाठा मे लगे नगोजे आसमान की तरफ उठा दिए और शफी उस्ताद बोला—'ओ जवाब नही अजुना, तुझे पदा करनेवाली का !'

"बाऊजी, मैं वजद म आ गया। दुल्ले की घोडी मेरे सामने हिनहिनाने लगी। बस, साँदल बार मे मेरे नगोजे गूज रहे थे।"

"फिर शौकी ने पूरन भगत शुरू किया। मैं चढता ही जा रहा था। शौकी ने हवा म उडते हाथ छाती पर टिकाकर कहा—

—ओदो जान ली बच्चे नू आ गया
जदो दुधियाँ च पै जू शीर !

(तब बच्चे को आया जान लेना जब छातिया मे दूध भर आए !)

"मुझे लगा जैसे मेरे नगोजो मे से दूध की धारें फूट वही हो। लोग रोने लग।

"शौकी हुक्के का कश खीचने के लिए एक तरफ हो गया। नगीने के तूबे ने उडते पक्षी रोककर खडे कर लिय। मैंने नगाजे तूबे के तारा के साथ सुर कर दिए। शौकी मामा बोला—'वाह ! आहा नगीने बटे अजना, जवाब नही तरा !'

"और शौंकी ने एकदम सारा दद उलट दिया—

—दूरा आओंदा वेखिया पीर दुलदुल दा असवार

आहने भज के वागाँ फड़ लीआँ, नाले रोंदी ज़ारो-ज़ार !

(दूर से पीर दुलदुल के सवार को आता देख उसने दौड़कर लगाम पकड़ ली, साथ ही ज़ार-ज़ार रोने लगी।)

"मैंने अपनी रुलाई बड़ी मुश्किल से रोकी। वो रंग बँधा कि कुछ न पूछिए ! ऐसा लगा, बूढ़ी माँ न नहीं, मेरे नगाड़ा ने दुलदुल की रासें थाम ली थीं। शौंकी ने अखाड़े को खत्म कर दिया। मुझे अपनी छाती से लगाकर बोला—'बेटा, तूने पाखर को लाफानी बना दिया।' शफी उस्ताद के पैरों में गिर गया मैं। सिर उठाया तो क्या देखता हूँ, उस्ताद रो रहा था "

अमली चुप हो गया। मुझे इस बारे में कुछ होश ही नहीं था कि अखाड़े का तो खात्मा भी हो चुका है। मैं तो फर्लेंड में मेले का एक दर्शक और श्रोता था। कोई स्टेज नहीं, कोई साजों का शोर नहीं एयरकंडीशंड हॉल नहीं, कोई टिकट नहीं, कोई प्रबंधक नहीं। वन-पीस कारपेट की जगह मिट्टी धूल भावों की व्याख्या नहीं शौंकी के बोल हवा में गूंज रहे थे, नगीने का तूंबा ठुनक रहा था, अर्जुन के नगाड़ा ने आकाश में उड़ते पक्षियों की डारें रोक दी थीं।

मैं कल्पना की दुनिया से लौट आया था। भूख और जरूरत अभावों का तोड़ा अर्जुन सिंह नीम के साथ टेक लगाए मेरे पास बैठा था।

फिर तो तुम्हारा गुज़ारा अच्छा चलने लग गया होगा ?"

'बस, कुछ देर, बाऊजी ! फिर लौट स्पीकर (लाउडस्पीकर) चल पड़े। आदमियों औरतों की पार्टियाँ चल पड़ीं—कान खानेवाले लुच्चे गीत नाचने वालियों की तरह नाचती औरतें। मुझे तो शर्म ही बहुत आती थी। मगर लोगों का तो आपको पता ही है। सारी खलकत उधर ही मुड़ गई।

अमली उदास हो गया।

"शफी उस्ताद कहाँ है अब ?'

"भूखा मरता पाकिस्तान चला गया था। वहाँ किसी मसीत (मस्जिद) में दिन काट रहा है।

नगीना और शौंकी ?"

"नगीना बाऊजी, भट्ठे पर ईंटें निकालता है। और शौंका गधी पर सब्जियाँ लाद गाँव-गाँव बेचता है।

बलबीर और धर्मेन्द्र छुट्टी करके पास आ गए थे। उनके साथ अमली का लड़का भी था। उसी को मेरेवाली कुरसी उठाकर बलबीर के घर ले जानी थी। जब लड़का कुरसी उठाने लगा तो अमली ने भी हाथ लगवाया। उसे साँस चढ़ गया। थोड़ा साँस ठीक करके बोला—'पता नहीं किस चीज की बनी हुई है।

लोहे जसी मजबूत है साली ! बाऊ को शायद पता नही होगा कि यह कुरसी इस बलबीर सिओ (सिंह) के रसालदार बावे को उसके अंग्रेज अफसर ने दी थी। जब रिसालदार पिलसन (पेंशन) कराके गाव आया तो इजलास मे इसी कुरसी पर बैठा करता था और मेरे बुजुग इसे उठाकर लाया करते थे। बलबीरे के बापू के समय मैं ही इसे झाड-पोछकर बिछाया करता था। आदमी चले गए बाऊजी, मगर कुरसी इतनी सिक्केबन्द है कि मजाल है इसकी कोई चूल भी हिली हो ! बस, जरूरत पडने पर नई बेंत स सीट बदला लेते ह '

अब कुरसी अमली के लडके के सिर पर थी, जो उपला जसे नगे पैरा से आग जसी धूल रौंदता हमारे आगे आगे चला जा रहा था।

अनुवाद यश सरोज

"और शौकी ने एकदम सारा दर्द उलट दिया—

—दूरों आओंदा वेखिया पीर दुलदुल दा असवार

ओहने भज के वागाँ फड़ लीआँ, नाले रोंदी ज़ारा-ज़ार !

(दूर से पीर दुलदुल के सवार का आना देख उसने भौड़कर लगाम पकड़ ली, साथ ही ज़ार-ज़ार रोने लगी।)

"मैंने अपनी रुलाई बड़ी मुश्किल से रोकी। वो रंग बँधा कि कुछ न पूछिए ! ऐसा लगा, बूढ़ी माँ न नहीं, मेरे नगोज़ा ने दुलदुल की रासें थाम ली थीं। शौकी ने अखाड़े को भसम कर दिया। मुझे अपनी छाती से लगाकर बोला—'बेटा, तूने पाखर का लाफानी बना दिया।' शफी उस्ताद के पैरों में गिर गया मैं। सिर उठाया तो क्या देखता हूँ, उस्ताद रो रहा था"

अमली चुप हो गया। मुझे इस बारे में कुछ होश ही नहीं था कि अखाड़े का तो खात्मा भी हो चुका है। मैं तो फर्नैंड के मेले का एक दर्शक और श्रोता था। कोई स्टेज नहीं, कोई साज़ों का बोझ नहीं, एयरकंडीशंड हॉल नहीं, कोई टिकट नहीं, कोई प्रबंधक नहीं। वन-पीस कारपेट की जगह मिट्टी धूल भावों की व्याख्या नहीं शौकी के बोल हवा में गूंज रहे थे, नगीने का तूंबा ठुनक रहा था, अर्जुन के नगोज़ा ने आकाश में उड़ते पक्षियों की डारें रोक दी थीं।

मैं कल्पना की दुनिया से लौट आया था। भूख और ज़रूरत-अभावों का तोता अर्जुन सिंह नीम के साथ टेक लगाए मेरे पास बैठा था।

"फिर तो तुम्हारा गुज़ारा अच्छा चलने लग गया होगा ?"

"बस कुछ देर, बाऊजी ! फिर लौड स्पीकर (लाउडस्पीकर) चल पड़े। आदमियों औरतों की पार्टियाँ चल पड़ीं—कान खानेवाले लुच्चे गीत नाचने वालियों की तरह नाचती औरतें। मुझे तो शर्म ही बहुत आती थी। मगर लोगों का तो आपका पता ही है। सारी खलकत उधर ही मुड़ गई।"

अमली उदास हो गया।

"शफी उस्ताद कहाँ है अब ?"

"भूखा मरता पाकिस्तान चला गया था। वहां किसी मसीत (मस्जिद) में दिन काट रहा है।"

"नगीना और शौकी ?

"नगीना बाऊजी, भट्ठे पर इटें निकालता है। और शौकी गधी पर सब्जियाँ लाद गाँव-गाँव बेचता है।'

बलबीर और धर्मेंद्र छुट्टी करके पास आ गए थे। उनके साथ अमली का लड़का भी था। उसी को मेरेवाली कुरसी उठाकर बलबीर के घर ले जानी थी। जब लड़का कुरसी उठाने लगा तो अमली ने भी हाथ लगवाया। उसे सांस चढ़ गया। थोड़ा सांस ठीक करके बोला—'पता नहीं किस चीज़ की बनी हुई है।

लोहे जैसी मजबूत है साली ! बाऊ को शायद पता नहीं होगा कि यह कुरसी इस बलबीर सिंओ (सिंह) के रसालदार बाबे को उसके अंग्रेज अफसर ने दी थी। जब रिसालदार पिलसन (पेंशन) कराके गाँव आया तो इजलास में इसी कुरसी पर बैठा करता था और मेरे बुजुर्ग इसे उठाकर लाया करते थे। बलबीरे के बापू के समय में ही इसे झाड़ पोंछकर बिछाया करता था। आदमी चले गए बाऊजी, मगर कुरसी इतनी सिक्केबन्द है कि मजाल है इसकी कोई चूल भी हिली हो ! बस, जरूरत पड़ने पर नई बेंत से सीट बदला लेते हैं'

अब कुरसी अमली के लड़के के सिर पर थी, जो उपला जैसे नंगे पैरों से आग जैसी धूल रौंदता हमारे आगे आगे चला जा रहा था।

अनुवाद यश सराज

अपना शहर

—राजेन्द्र कौर

जब शीला सुबह रसोई में चाय बना रही थी, तभी सन्नी और तन्नू जग गए थे। तन्नू ने जगते ही मम्मी के बारे में पूछा था। जब उसे रसोई में से मम्मी की आवाज आई तो वह प्रसन्न हो गई थी।

"सन्नी, मम्मी आज मेरे पास सोई थी।" तन्नू बोली।

"नहीं मेरे पास।" सन्नी ने गुस्से में कहा।

"मम्मी! आप किसके पास सोए थे?" तन्नू ने मम्मी को आवाज देकर पूछा।

"तुम दोनों के बीच में।" शीला बोली। जब भी अपने घर आती है तो तन्नू और सन्नी का इस बात को लेकर झगड़ा होता है। बच्चों को क्या पता कि वह मुकेश की बाहों में सोई होती है। मन ही मन प्रसन्न होती है कि बच्चों को उसकी कितनी आवश्यकता है! शायद यह अहसास दूरी के कारण बढ़ गया है।

"मम्मी ने जो कहानी रात को सुनाई थी, कितनी अच्छी थी!" सन्नी बोला।

"हाँ।"

"मम्मी बहुत अच्छी हैं।"

"हाँ।"

तन्नू आज सन्नी की प्रत्येक बात में हाँ में हाँ मिला रही है। यह बहुत कम होता है। अक्सर ही दोनों एक-दूसरे का विरोध करते हैं। परन्तु अब बातों का विषय मम्मी है और मम्मी दोनों के लिए है।

शीला चाय बनाकर लाई तो मुकेश ने उसे अपने पास रजाई में बैठने को कहा।

"मैं उधर बच्चों के पास बैठती हूँ।" शीला बोली।

"अब तो बस हसरत ही रहती है मन में, कब तुम आओ और हम मिलकर बैठें, चाय पीएँ, गपशप करें।" मुकेश बोला।

शीला मन-ही मन खुश हुई—अच्छा है दूरी ने मन में हसरतें तो पैदा कीं!

"उस केवल इकट्ठा बैठने को ही तरसते हो?" वह बोली।

"कुछ न पूछो। जो समय दफ्तर में कट जाए, कट जाए। घर आकर तो मन जरा नहीं लगता। घर के हर कोने में तेरी अनुपस्थिति झनकती है, परन्तु बच्चों

क कारण घर तो आना ही पड़ता है।'

"बस-बस ! अब और कुछ न कहो। ऐसी बातो से मेरा मन उदास हो जाता है। शनिवार जब मैं यहा आ रही होती हूँ तो यू लगता है जैसे मैं पराए शहर मे आ रही हूँ, और सोमवार को जब यहा से वापस जाती हूँ तो लगता है कि मैं पराए शहर जा रही हूँ। अब तो मैं यह भी भेद नही कर पाती कि मेरा अपना शहर कौन-सा है। जहा मैं सप्ताह के छ दिन बिताती हूँ या ?" शीला की आवाज बुझ जाती है।

"पगली, तेरा शहर तो यही है जहा हम ह, हमारे बच्चे है, मैं हूँ।" मुकेश इस बात पर ज़ोर देकर कहता है, "फिर तेरा तो जल्दी ही ट्रासफर हो जाएगा।"

"कब ? ट्रासफर की उम्मीद मे उस शहर म, उस शहर के लोगो मे बिल्कुल घुल मिल नही पाती। मुझे लगता है, न मैं यहाँ की हूँ न वहाँ की।' शीला भावुक हो जाती है।

"कई बार मैं डर जाता हूँ कि यदि अभी ट्रासफर न हुआ तो तुम कही वही की होकर न रह जाओ ! हम तुम्हारे लिये अजनबी ही न बन जाएँ !" मुकेश की आवाज़ म व्यग्य होता ह या भय, वह समझ नही पाती।

वह हँस पडती है, "अरे, यही तो मरा सब-कुछ है। यही शहर मेरा अपना है। आप तो यू ही डरते ह। मैं तो मज़ाक कर रही थी।"

विषय बदलने के लिए मुकेश पूछता है, "मा जी गए मंदिर ?"

"हा ! मेरा तो बिस्तर से उठने को अभी मन ही नही कर रहा था। मैंन सोचा, दो दिन के लिए आपकी मेहमान हूँ, आप ही उठकर चाय पिलाएँगे, पर मैं जानती हूँ कि आप बुरा मान जाएग। आप कहग कि दो दिन के लिए आई हूँ तो पति की सेवा करना इसका धम है।"

मुकेश अपनी झेंप मिटान के लिए हँस पडा था।

शीला जब ब्याहकर इस घर मे आई थी, तो उसे सुबह उठकर चाय बनाना बुरा लगता था। कई बार इसी बात को लेकर उसकी मुकेश से झडप हो जाती थी। मुकेश का यही उत्तर हाता था कि यह काम पत्नी का है। उसे तो दफ्तर जाना हाता है। ढेरो काम करना होता है।

परन्तु अब जब कभी शीला यहा आती है तो उसे सुबह की चाय बनाना बुरा नही लगता। अब तो उसे मुकेश पर दया हो आती है। मुकेश की मां तो सुबह उठते ही मंदिर चली जाती हैं। पीछे मे तन्नू और सन्नी को सम्भालना, दूध देना स्कूल के लिए तैयार करना, सब-कुछ मुकेश का काम है।

'मुझे क्या मालूम था कि बीवी से नौकरी करवाकर बच्चा की परवरिश का सारा बोझ मुझ पर आ पडेगा !' मुकेश कई बार कह चुका था।

'आज का क्या प्रोग्राम है ?" मुकेश ने पूछा।

"घर को ज़रा ठीक-ठाक करूँगी, बच्चो के कुछ कपडा की मरम्मत करनी है, आपकी कमीजो मे बटन टाकने ह "

"ओहो ! ये काम तो होते ही रहग, आज कही घूमन चलें।"

बच्चे घूमने के नाम पर ही खिल उठे थे।

शीला मा जी के आने से पहले ही रसोई का कुछ काम कर लेना चाहती थी, अन्यथा उसे माँ जी की नाराजगी का डर था।

मुकेश ने भी शीला के साथ कुछ मदद करनी आरम्भ कर दी थी।

शीला रसोई मे खडी नाश्ता तैयार कर रही थी तो मुकेश उसके पीछ आकर खडा हो गया था। उसने शीला का बाहा म भर लिया था। शीला मुकेश के स्पश से झनझना उठी थी।

शीला सोच रही थी—जब मैं सप्ताह बाद घर लौटती हूँ तो मुकेश मुझम कितना प्यार जतलाता है ! हर काम म मुझे कितना सहयोग देता है ! बच्चो के होठा पर भी मम्मी के नाम क सिवाय कोई नाम नही होता।

मा जी तो बस बच्चो की शिकायतें ही करती रहती हैं या फिर अपन घुटनो के दद का बखान सुनाती रहती ह।

शनिवार जब वह यहा पहुँचती है, तो बच्चे चाहते है कि उनकी मा अपना एक एक पल उनके साथ बिताए, कहानियाँ सुनाए दोना एक-दूसर की शिकायतें करत है। वह सब सुनती है। उनकी पढाई की ओर भी थोडा ध्यान दती है।

माँ जी चाहती है कि शीला सारा समय घर के काम म ही बिताए और वह आराम कर लें। वह शीला को बार-बार सुनाती ह कि सारा हफ्ता बच्चा को सम्भालकर वह थक गई हैं।

मुकेश चाहता है कि वह सारा समय उसकी बातें सुनती रह। उसस ढेर-सारी बातें करे, उसके पास बठी रहे। वे दोना एक-दूसरे को निहारें, कुछ क्षण गुपचुप बठे रह, परन्तु होता यह है कि वह पूरा ध्यान किसी की ओर भी नही दे पाती। वह कई टुकडो म बँट जाती है।

सोमवार जब वह वापस जाती है तो बच्चे अभी नीद म ही होत हैं। उनको छोडकर जाते मन म हूक-सी उठती है। माँ जी क घुटना के दद पर भी उस दया आती है। मुकेश के स्निग्ध हाथा का स्पश छोडन को भी उसका मन नही करता।

'यही शहर मेरा अपना है, यहाँ सभी मरे अपन हैं।' वह सोचती है।

मुकेश शीला को बस पर चढान क लिए साथ जाता है।

"मरे ट्रासफर का क्या होगा ?" शीला आँखा म प्रश्न चिह्न लटकाए मुकेश की ओर देखती है।

"जोर तो खूब लगा रहा हूँ। मुकेश कहता है।

"बच्चे बेचारे बहुत दुखी हैं।" वह करुण स्वर में बोलती है।

"दफ्तर से सीधा घर पहुँचता हूँ। दोनों को पढ़ाता हूँ। परन्तु तुम्हारे जितनी सहनशीलता मुझमें नहीं है। सन्नी जब कुछ गलत पढ़ता है तो मैं उसे थप्पड़ निकाल मारता हूँ। वह बहुत रोता है। मम्मी-मम्मी की रट लगा देता है। उसे चुप कराना बड़ा कठिन होता है। तुम्हारे पास तो जादू है, शीला! तुम, न जाने कैसे बच्चों को काबू कर लेती हो! खाना खाते समय भी बहुत जिद करते हैं। माँ जी को शिकायत है कि वह राज मन्दिर नहीं जा सकती।" मुकेश पता नहीं किन बातों का स्पष्टीकरण करता रहता है।

"माँ जी स्वयं ही तो नौकरी करवाना चाहती थीं। स्वयं ही तो हर समय ताने देती थीं कि पढ़ी लिखी होकर बहू कुछ भी कमाकर नहीं लाती। आप स्वयं भी तो चाहते थे कि मैं नौकरी करूँ। अब यदि नौकरी छोड़ दूँ तो आपके भाई की पढ़ाई का खर्च कौन भेजेगा? मेरी कठिनाइयों के बारे में तो कोई सोचता नहीं।" रुआसी-सी होकर वह चुप कर जाती।

शीला को तीन साल की कोशिश के बाद यह नौकरी मिली थी, उस समय उसे यह तो पता नहीं था कि नौकरी किसी दूसरे शहर में जा लगेगी। मुकेश ने कहा था, अभी वहाँ चली जाओ, जल्दी ही सिफारिश लड़ाकर तब्दीली का प्रयत्न करता रहूँगा।

सोमवार सुबह जब वे घर से चलते हैं तो सड़क के चारों ओर धुँधलका फैला होता है। सर्दी में ठिठुरते दोनों एक-दूसरे के साथ सटकर चलते हैं।

शीला बस में बैठती है तो मुकेश खिड़की के पास खड़ा रहता है। दोनों एक-दूसरे की आँखों में बन्द रहते हैं। बस धीरे-धीरे सरकने लगती है। वे एक-दूसरे से आँखें नहीं हटा पाते।

बस सड़क पर दौड़ने लगती है। शीला को लगता है कि अभी मुकेश की आँखें उसके साथ भाग रही हैं। वह आँखें मींचे सीट की पीठ के साथ सिर टिका लेती है। उसके कानों में बस के हॉर्न या सवारियों की बातें नहीं पड़तीं। बस तन्नू और सन्नी के मिले जुले स्वर होते हैं—

"मम्मी, आप हमें छोड़कर क्या चली जाती हैं?"

माँ जी की आवाज़ सुनाई देती है—"मुझे क्या पता था कि तुम्हारी नौकरी इतनी दूर जाकर लगेगी। छोड़ो नौकरी! पहले भी तो तेरी नौकरी के बिना खर्च चल ही रहा था किसी तरह। अब इस बुढ़ापे में मुझसे इतना काम नहीं होता।"

मुकेश की बातें याद आती हैं—"तेरी नौकरी से मेरे दोस्त छूट गए। अब मैं कहीं जा नहीं पाता। दफ्तर से सीधा घर।"

फिर शीला को अपना एकाकीपन याद आता है। कई प्रकार के ऊटपटांग विचार उसके दिमाग म चक्कर काटते हैं।

कई बार वह सोचती है—यूँ ही ठीक है। जब मैं इस शहर म थी तो आए दिन मुकेश के साथ झडप हो जाती थी। अब वह उत्सुकता से मेरा इतजार करता है। माँ जी की खीझ म बच जाती हूँ। इसी शहर मे ट्रासफर हो गया तो नौकरी के अतिरिक्त घर की, बच्चो की, पूरी जिम्मेदारी मुझ पर आ जाएगी।

परन्तु जब तनू और सनी के चेहरे याद आते हैं तो वह पुन शनिवार की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगती है।

"एस कब तक चलेगा?" दु खी स्वर मे वह कई बार मुकेश से पूछ चुकी है।

"जल्दी ही सब ठीक हो जाएगा।"

"यदि ट्रासफर न हुआ तो?" शीला काँपती आवाज म पूछती है।

"तो नौकरी छोड दना।" शीला को लगता कि मुकेश की आवाज कहीं दूर से आ रही है।

"नौकरी छोड दी ता ?" परन्तु यह वाक्य वह कभी पूरा नही कर पाती। वह जानती है कि इसके बाद प्रश्न चिह्नो का अ त नही। इसलिए वह अपने-आपको समझाती है—नौकरी छोडने की क्या आवश्यकता है? वह शहर भी तो मेरा अपना ही है जहा मैं जा रही हूँ।

सफेद रात का जख्म

—रामसरूप अणखी

उसने धूनी की लकडी को चिमटे स कुरेद दिया। दो-तीन छोटी-छोटी चिंगारियाँ लाल-पीली-सी चमक देकर राख पर गिर पडी। सेंक के पास बैठा होने के बावजूद शीत की कँपकँपी उसे छ गई। मौत की सी खामोशी उसके रोएँ-रोएँ को डस रही थी। तडके-सवेरे ही लम्बरदार की बडी बहू आएगी तो वह उसे क्या जवाब देगा ?

मगलदास की दाढी मे अभी तक एक भी सफेद बाल नही था। उसके चेहरे पर अभी तक एक भी लकीर नही उभरी थी। उसकी आखा म पूरी चमक थी। उसके शरीर की गोलाइया सख्त और मजबूत थी। लम्बरदार की बडी बहू उस पर ज्यादा ही भूल आई थी। वैसे तो लम्बरदार का बेटा खासा हृष्ट-पुष्ट था, लेकिन कुदरत का खेल, वह अपनी पत्नी को कोई बच्चा नही दे पाया था। उस गाव की लडकियाँ, बूढियाँ और बहुएँ सुबह के वक्त मगलदास के टीले पर सीस नवाने आती। उनके साथ लम्बरदार की बडी बहू भी पन्द्रह दिनो तक आती रही। आज सुबह भी वह दूसरो की आख बचाकर मगलदास को कोई गुप्त सकेत कर गई थी। फिर सबके साथ वापस जाते हुए वह क्षणभर के लिए मुडी थी और बहुत तडके आने के लिए कह गई थी। पाव छूते समय वह मगलदास के पाव का अँगूठा भी दबा गई थी। वह तो सुन बना सा बैठा रह गया था। एक शब्द तक उसके मुह से नही फूट सका था। और अब आधी रात तक जागता और धूनी के पास बठा वह इस चिन्ता म मग्न था कि अगर वह आ गई तो धरती के किस कोने म वह गर्क हो सकेगा ?

जग्गा सुल्फे की आखिरी चिलम पीकर कब का घर जा चुका था। गाधू नाई टीले के सभी छोटे मोटे काम निवटाकर धूनी से दूर, कच्ची इटो की कपास छटी से बनी अपनी झुग्गी मे टाट पर लाल गूदड लपट सो रहा था। तालाब के शान्त गहरे पानी मे से एक मुर्गाबी निकली थी और पख फडफडाकर टीले का एक चक्कर लगाया था। उसके बाद वह फिर पानी मे गुम हो गई थी। आसमान म पूरा चांद बर्फ की तश्तरी की तरह तैर रहा था। टीले-पास के गेहूँ के खेता पर दूधिया सफद चाँदनी उतर रही थी। जैसे एक सूरज डूबा हो, दूसरा चढ गया हो। सफेद रात की खामोशी ने मगलदास को और बेचैन कर दिया था। चाँदनी की तीखी सुइयाँ

उसके अंग-अंग को बींध रही थी।

मंगलदास का जन्म जाटों के घर में हुआ था। छोटा-सा मंगल जानवर चराता था। तब उनके पड़ोस में अपनी मौसी के पास आई उसकी हम-उम्र लड़की भी एक दिन खेत में आई थी। रहट पर पानी पीते हुए वह मंगल के मुंह पर पानी के छींटे फेंक गई थी और पागलों की तरह हँसी थी। फिर तो जब कभी भी वे मिलते, तो चोर-हँसी हँसते रहते। कभी-कभार कोई बात भी कर लेते। एक महीना रह-कर वह अपने गांव लौट गई थी। दो साल बाद आई तो जैसे वह पूरी गाय बन चुकी थी। ऊँचा कद, भरे भरे अंग-पांव, चलती तो धरती धसकने लगती। किसी काम से वह उनके घर आई। अँधेरा घिर रहा था। वह लौटकर जा रही थी कि मंगल ने उसे दरवाजे में ही रोक लिया और कुछ भी आगा-पीछा सोचे-देखे बगैर उसे बांहों में घेर लिया। उसके शरीर में कोई मीठा-मीठा सेंक था। बेसुरती के आलम में मंगल ने उसे चूम लिया तो उसे यों लगा जैसे उसने पहले तोड़ की शराब का कोई गुनगुना-सा घूंट भर लिया हो।

इस बार तो वह चार-पाँच दिन ही रही थी। लेकिन इन चार-पाँच दिनों में ही मंगल ने कोई अजीब संसार देख लिया था। उन्होंने पानी के चुल्लू भर-कर कसम खाई कि वे ब्याह करेंगे तो सिर्फ एक-दूसरे से ही, वरना कभी भी नहीं।

और फिर चार पांच महीनों के बाद ही मंगल के कानों में सीतो के ब्याह से सम्बन्धित बातें पड़ने लगीं। एक दिन दोपहर को जोत छोड़कर वह घर आया तो एक बुढ़िया से उसकी मां यही बातें कर रही थी।

सीतो ने अपनी मां से कहा था और मां अपनी बहन के पास आई थी।

मौसी ने शरीकेबाजी का जिक्र किया था और बहन को ठण्डी गर्म सौ बातें कह डाली थीं।

और फिर बारह महीने गुजर गए तो सीतो का रिश्ता किसी और जगह पर कर दिया गया। मंगल ने सुना तो मन मसोसकर रह गया। ब्याह भी हो गया। सीतो का गौना भी हो गया। और फिर वह इस गाँव में कभी नहीं आई।

एक दिन सारे गांव को पता चला कि मंगल खेती का काम छोड़कर घर से निकल गया है। दो महीनों तक तो उसका कोई समाचार ही नहीं मिला। और फिर खबर आई कि वह तो साधु हो गया है। गांव से पचास मील दूर वहाँ के डेरे के बारे में पूछकर उसका बाप उसे लेने गया। दो अन्य आदमी उसके साथ गए। लेकिन वह तो कुछ बोला ही नहीं था। मिट्टी की तरह सुन्न बना रहा था। न हँसता था न रोता था। उन्हें लगा जैसे वह जन्म से ही कोई साधु हो। डेरे के महन्त ने उन्हें समझाया कि भाई, यह तो वैरागी हो गया है। इस संसार से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। बाप रो धोकर वापस लौट गया।

उस डेरे के महन्त ने एक और गाँव में भी अपनी गद्दी स्थापित कर रखी थी। योग्यता देखकर उस स्थान पर मगलदास को भेज दिया। उस गाँव में पहुँचते ही मगलदास की महिमा बन गई। उस जैसा त्यागी साधु तो उस गाँव में कोई आया ही नहीं था। वह तो बडा करनीवाला था। उसके बोल पूरे होते थे। औरतो की तरफ वह झाँकता भी नहीं था। माया का उसे कोई मोह नहीं था। वह तो आठो पहर भजन-बन्दगी में मग्न रहता। उसके टीले पर बूढ़े आते, जवान, अधेड, सभी आते। लडकियाँ, बुढ़ियाँ और बहुएँ भी आने लगी।

चार साल से वह उस गाँव म रह रहा था। टीला गाव के बाहर था। मगलदास को लगता जैसे यह ससार तो नाशवान है। यहाँ की कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। परस्पर के सभी रिश्ते-नाते झूठे हैं। परमात्मा का नाम ही सच्चा है। लेकिन कभी-कभी उसे महसूस होता कि यह ससार तो भोग्य वस्तु है, मानय पदार्थ है। साधु होकर मनुष्य बहुत बडा पाप करता है, जीवन मे धोखा। ऐसे पलो मे उसे औरत की जरूरत महसूस होती। कभी-कभी तो बडी शिद्दत से वह सोचता, अगर एक सीनो नही मिली तो जिन्दगी को धक्का तो नही देना चाहिए! किसी एक को लेकर मरने की क्या जरूरत है? वह नही और सही! उसका जी चाहता कि साधुगीरी छोडकर वह ब्याह कर ले, और मनुष्या-जैसी सहज ज़िन्दगी व्यतीत करे।

एक बार तो उसकी यह मनोदशा कई दिन उसका पीछा करती रही। और फिर इस फैसले पर पहुँचा कि स्त्री भोग एक मायक कर्म है। इन्ही दिनो उस गाँव की एक भर जवान लेकिन छुट्ड लडकी से उसका शारीरिक सम्बन्ध हो गया। लडकी खुद ही किसी अधड की तरह आकर मगलदास से टकरा गई थी। जाने किस वजह से उसके खाविंद ने उसे मायके मे छोड रखा था। कामाग्नि से अधी हुई वह किसी मर्द की तलाश म थी। सो, मगलदास से उसका मेल हो गया था। और मगलदास की आध्यात्मिकता दुनियावी विचारो मे तब्दील होकर रह गई। दिखाई देने वाला ससार एक हकीकत बन गया। आखें तभी खुली जब वह लडकी गर्भवती हो गई।

मगलदास को घबराहट हुई। गाव म उसका कितना मान-सम्मान है! वह तो देवतास्वरूप साधु माना जाता है। चौथे महीने ही तिनको के नीचे दबी आग भडक उठी। पता नहीं क्या, वह अपना गर्भ गिरवाने को भी तैयार नहीं थी। साफ कहती थी कि वह मगलदास के पास जाया करती थी। जो भी सुनता, दाँतो मे अँगुली दबा लेता। इस बात पर विश्वास ही न होता। सभी कहते—लडकी झूठ बोलती है! जाने किसका पाप खरीद बैठी है! साधु को तो बिना बात बदनाम कर रही है।

उन्ही दिनो मगलदास ने बेहद घबराहट और हताशा के प्रभाव-तहत, एक रात

उस्तरे से अपने गुप्तांग को काट डाला। फिटकरी वाले पानी में पट्टियाँ भिगो भिगोकर बाँधता रहा। पेशाब करना होता तो पट्टी खोल लेता, वरना सारा दिन सारी रात पट्टियाँ बदलता रहता। और फिर धूनी की गम-गम राख ने पाँच-सात दिनों में ही उसके ज़ख्म को भर दिया।

पन्द्रह-बीस दिनों तक गाँव में चख चख चलती रही और फिर एक दिन दस आदमी उस लड़की को साथ लेकर टीले पर आए—'बोलो! क्या यह तुम्हारी करतूत नहीं है?' उन्होंने मंगलदास से कहा।

मंगलदास ने कोई जवाब नहीं दिया! सिर्फ लंगोटी खोलकर खड़ा हो गया।

वे सब जाने क्या सोचकर आए थे! सब के सब चुपचाप घरों को लौट गए।

मंगलदास गाँव के भीतर तो पहले भी कभी नहीं जाता था। अब तो खैर क्या जाता! उसके श्रद्धालु ही टीले पर आते, सीस नवाते, भुट्टन चढ़ाते और कड़ाया चढ़ाकर लौट जाते। लेकिन जो भी कोई आता, उसके अन्दर की ओर देखता रह जाता। टीले के पास से गुजरते वक्त लोग उसके साथ घटी इस घटना की चर्चा करते। उसकी कोई बात कभी मंगलदास के कानों में भी पड़ जाती। अब उस पर चर्चा मार रही थी।

उस लड़की को उसके माँ-बाप ने कहीं और ब्याह दिया था। तीन महीना बाद उसने घर-भर सारा किट्टा लड़का जन दिया। जहाँ वह बैठाई गई थी, वह आदमी उम्र में उससे पर था और अकेला था। वह तो इस बात से खुश था कि उसके घर में औरत आ गई है। लड़का भले ही किसी के बीज का हो, माना तो उसी का जाएगा!

आवा तो अब उसे कोई कहता ही नही था, सभी 'मगलदास का टीला' कहते।
इस गाँव मे वह पिछले सात साल से रह रहा था। उसने अपने मन का समझा
लिया था। अपने पास आने वाले लोगो को वह गृहस्थ आश्रम मे रहकर परमात्मा
होने की शिक्षाएं देता। बुरे कार्यों से उन्हें रोकता। शराब-अफीम के
ाता। दवा-बूटी भी देता।

औरत की तरफ आँख भरकर झाँकता भी नही। शरारत उसकी
नही आती। उसकी जिन्दगी तो एक जनखे की जिन्दगी थी। लेकिन
किसी को भी नही था। यह गाँव उस गाँव से सौ मील
से भी साठ-सत्तर मील दूर। उधर का तो कोई
था।

बहू का दिल मगलदास पर कैसे आ गया था।
से ?

थी। चाँद टीले से थोडी दूर खडे ऊँचे नीम
घू नाई अपनी झुग्गी मे पडा धीरे धीरे खाँस
को एक बार फिर झकझोर दिया। इस बार
आग सो गई है। मगलदास खडा हो गया।
वरना वह जब कभी भी धरती मे खडा
न पुकारता था। अब तो उसने अँगडाई
किनारे के साथ-साथ कोई परछाई टीले
पर उसने साफ देखा, यह लम्बरदार की
होगा। गरम चादर उसने लपेट रखी

गई। पल भर मे वह जाने क्या सोच
फिर नही झाँका। एकाएक वह भागा
पछले साल ही तालाब की मिट्टी को
छलाँग लगाई थी, वहाँ तो हाथी
हँस दबी-सी चीख निकल गई। अपने
वह उन्ही पैरो वापस घर लौट
झुग्गी मे लेटा वह धीरे धीरे खाँस जा

ब के ठिठुरे हुए पानी मे फूलकर कुप्पा

उस्तरे से अपने गुप्तांग को काट डाला। फिटकरी वाले पानी में पट्टियां भिगो भिगोकर बाधता रहा। पेशाव करना होता तो पट्टी खोल लेता, वरना सारा दिन, सारी रात पट्टिया बदलता रहता। और फिर धूनी की गम-गम राख ने पांच-सात दिनों में ही उसके जख्म को भर दिया।

पन्द्रह-बीस दिनों तक गांव में चख चख चलती रही और फिर एक दिन दस आदमी उस लडकी को साथ लेकर टीले पर आए—'बोलो! क्या यह तुम्हारी करतूत नहीं है ?' उन्होंने मगलदास से कहा।

मगलदास ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ लगोटी खोलकर खडा हो गया।

वे सब जाने क्या सोचकर आए थे! सब के सब चुपचाप घरों को लौट गए।

मगलदास गांव के भीतर तो पहले भी कभी नहीं जाता था। अब तो खैर क्या जाता! उसके श्रद्धालु ही टीले पर आते, सीस नवाते, घुटने दबाते और चढावा चढाकर लौट जाते। लेकिन जो भी कोई आता, उसके चेहरे की ओर देखता रह जाता। टीले के पास से गुजरने वाले लोग उसके साथ घटी इस घटना की चर्चा करते। उनकी कोई बात कभी मगलदास के कानों में भी पड जाती। अब उसे यह चर्चा मार रही थी।

उस लडकी को उसके मां-बाप ने कहीं और बठा दिया था। तीन महीना बाद उसने बर्फ-सा गोरा-चिट्टा लडका जन दिया। जहां वह बठाई गई थी वह आदमी उम्र के उतार पर था और अकेला था। वह तो इस बात से खुश था कि उसके घर में औरत आ गई है। लडका भले ही किसी के बीज का हो माना तो उसी का जाएगा।

अब मगलदास इस बात को लेकर सोचता रहता कि यह अनहोनी क्या कर दी? हां वह देता तो जटाओं को सिर से उतारकर फेंक देता और उसे ब्याहकर गांव ले जाता। बाप भी खुश, मां भी खुश। उसने तो अपनी जिन्दगी ही बरबाद कर ली। इससे तो मौत बेहतर थी। वह सोचता रहता, भीतर-ही-भीतर घुलता रहता। अपनी अक्ल को लानत भेजता। किसी भी श्रद्धालु से आंख न मिलाता। कभी भूल से किसी की ओर झांक भी लेता तो उसे लगता जैसे देखनेवाला उस पर तरस से भरी तेजाबी पिचकारियां मार रहा हो। बहुत निराश, उदास, बेदिल होकर उसने यह गांव छोड दिया।

अब उसने इस गांव के पश्चिम की ओर, बडे तालाब के दक्खिनी कोने में पुराने वक्ता के एक आवे को साफ करवाकर अपनी कुटिया बनवा रखी थी।

आया तो अब उसे कोई कहता ही नहीं था, सभी 'मगलदास का टीला' कहते।

इस गाँव में वह पिछले सात साल से रह रहा था। उसने अपने मन को समझा लिया था। अपने पास आने वाले लोगों को वह गृहस्थ आश्रम म रहकर परमात्मा के पास होने की शिक्षाएँ देता। बुरे कार्यों से उन्हे रोकता। शराब-अफीम के अवगुण बताता। दवा-बूटी भी देता।

वह किसी औरत की तरफ आँख भरकर झाँकता भी नही। शरारत उसकी आँखो मे कभी नही आती। उसकी जिन्दगी तो एक जनखे की जिन्दगी थी। लेकिन इस बात का पता गाँव मे किसी को भी नही था। यह गाँव उस गाँव से सौ मील दूर था, मगलदास की जन्मभूमि से भी साठ-सत्तर मील दूर। उधर का तो कोई आदमी कभी इधर आया ही नही था।

पता नही, लम्बरदार की बडी बहू का दिल मगलदास पर कैसे आ गया था!

वह उसे क्या बताता अपने मुह से?

रात आधी से ज्यादा जा चुकी थी। चाद टीले से थोडी दूर खडे ऊँचे नीम की पीठ पीछे जा खडा हुआ था। गोधू नाई अपनी झुग्गी मे पडा धीरे-धीरे खास रहा था। मगलदास ने धूनी की आग को एक बार फिर झकझोर दिया। इस बार कोई चिंगारी नही भडकी। लगता था आग सो गई है। मगलदास खडा हो गया। उसके मुह से अलख निरजन नही निकला, वरना वह जब कभी भी धरती मे खडा होता था तो अँगडाई लेकर अलख निरजन पुकारता था। अब तो उसने अँगडाई भी नही ली थी। उसने देखा तालाब के किनारे के साथ-साथ काई परछाइ टीले की ओर बढती आ रही थी। पास आने पर उसने साफ देखा, यह लम्बरदार की बहू ही थी। हाथ म लोटा था। दूध स भरा होगा! गरम चादर उसने लपट रखी थी।

एक कँपकँपी मगलदास के शरीर को छू गई। पल भर मे वह जाने क्या सोच गया। उसने लम्बरदार की बहू की तरफ फिर नही झांका। एकाएक वह भागा और उसने तालाब म छलांग लगा दी। पिछले साल ही तालाब की मिट्टी को खोदकर नया पानी डाला गया था। जहाँ उसने छलांग लगाई थी, वहाँ तो हाथी भी डूब सकता था। लम्बरदार की बहू के मुह म दबी-सी चीख निकल गई। अपने कल्पित भविष्य पर एक गहरी खरोंच लगवाकर वह उन्ही पैरों वापस घर लौट गई। गोधू नाइ को कुछ पता नही चला। झुग्गी मे लेटा वह धीरे धीरे खासे जा रहा था।

दिन चढा तो मगलदास की लोथ तालाब के ठिठुरे हुए पानी म फूलकर कुप्पा बनी तैर रही थी।

अपना अपना हिस्सा

—वरियाम सिंह संधू

भैंस को बाहर लाकर खोले में घुमा और छटाला मिलाते हुए घुद्दू ने भैंस की नाक में से उड़ती सांस को देखा और दूध निकालने के लिए बाल्टी लाने की आवाज़ दी। फिर भैंस के ऊपर डाल रखी गोबर से सनी फटी दरी को ठीक किया और सर्दी में कांपते हाथ-पाँवों को धूप में करने की कोशिश करता धुंध में से दूर निकलते सूरज को देखने लगा। पर धुंध तो सूरज को गले पकड़कर बैठी थी, जैसे कोई तगड़ा पहलवान कमज़ोर पहलवान की गर्दन पर घुटना दिए बैठा हो। घुद्दू का हाथ वैसे ही अपनी गर्दन पर चला गया। कई वर्ष पहले पहलवानी करते उसने अपने उस्ताद जिंदा पाथनीवाला और अन्य पहलवानों के घुटनों की मार ज़ोर करते और जोड़ करते झेली थी। वैसे भी उसकी विशेषता गिराने से अधिक खुद गिरने में रही थी। इसीलिए तो उनके गाँव के बाबा 'मल' ने उससे मज़ाक में कहा था—'ओ धर्मे! कितना बड़ा तेरा शरीर है। अगर हर रोज़ गिरने का काम ही करना था तो इससे अच्छा था कि तेरे शरीर को काटकर दो आदमी बन जाते—एक हल चलाया करता और एक चारा लाता। रब्ब ससुरे को भी एक टके की अक्ल नहीं है।' और सारे भाइयों में से धर्मा 'घुद्दू' बनकर ही रह गया था। अब वह न पहलवान था और न ही गर्दन पर किसी घुटने का डर। पर फिर भी उसे लगा जैसे गर्दन दर्द कर रही हो। उसकी गर्दन पर यह किसका घुटना था?

भैंस का दूध निकालने के लिए भाँडा और बाल्टी लिये बहन बचनी, जो माँ के मरने पर जिस दिन से ससुराल से आई थी, यहीं पर थी, घुद्दू को बाल्टी पकड़ाकर चारे पर आटा डालने लगी।

घुद्दू भैंस के शरीर पर थपकी देकर नीचे बैठ गया।

—"हैं भाई, देखो ना... दोनों बड़े भाई आने ही वाले हैं... बड़ा भाई रात से करमसिंह के पास अड्डे पर आ गया होगा... देखो ना... तुम जो हिसाब किताब बनता है... उनसे निपट लो... देखो ना... माँ का इकट्ठ भी करना होगा... उसके फूल भी हरद्वार लेकर जाना है।... बड़ों ने कहा है—देखो माँ-बेटी का... देखो ना..."

घुद्दू को बड़ी खीझ आई।

—"यह आ गई बड़ी अम्मा, मुझे अक्ल देनेवाली!

वह अपने से छोटी बचनो के बारे म सोचता हुआ जहरीली थूक अन्दर निगल गया, 'कल की भूतनी !'

बचना बोलती जा रही थी—"देखो ना मुझे पता है तुम्हारा हाथ तग है पर य काम भी अक्सर करने होते ह। मैंने तो बडा को भी कहा था आपका चलता है आपका हाथ खुले ता कोई बात नही देखो ना वे आगे से कहते, हम खाने के लिए दान ही लाते ह। जमीन भी यह मुफ्त म देखो ना सभी तुम्हारे भाई जैसे कैसे बन जाएँ ? सारे देश म बहनें अपना हिस्सा लेती जा रही है पर उसने कभी एक बार भी नही कहा "

घुन्दू जैस गले मे लकडी लिये बैठा हो, एकदम चीख पडा, "तो तुम भी ल जाओ और वो भी ले जाएँ जमीन ससुरी न बडा मुझे कोई बादशाह बना दिया।

ऊँची और चीखती आवाज सुनकर और जोर से थन दबाने पर भैंस हिल गई। घुदू पीछे को गिर पडा। बचाते बचाते थोडा सा दूध बिखर ही गया। उसन उठकर फावडा उठा लिया और भैंस पर काड काड बरस पडा।

—"देखो ना सीधे का उल्टा आता है " बुदबुदाती बचनो 'भ भू करती बाल्टी पकडकर चली गई।

—"इस बेजबान ने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?" अन्दर से आकर घुदू की पत्नी चीख पडी 'दूसरो का गुस्सा बेचारे पशुआ पर क्यो निकालते हो ?"

भस डरकर नाद की एक ओर कान उठाकर डरी आँखा से क्षमा-याचना की मुद्रा मे खडी काँप रही थी।

दूर से मोटरसाइकल की आवाज सुनाई दी। घुदू पशुआ की नाँदो मे खस ही हाथ मारने लगा। कुत्ता के भौकने के साथ साथ आवाज नजदीक आती गई और थोडी देर बाद मोटरसाइकल उनके दरवाजे के सामने आ खडी हुई। रत्नी ने सिर पर कपडा लत हुए ड्योढी का दरवाजा खोला—उसके दोनो जेठ स्वर्नसिंह और कर्मसिंह थे। उन्हाने मोटरसाइकल ड्योढी म से निकालकर कच्चे आगन म खडी कर दी। बडे स्वर्नसिंह ने अपनी आँखा पर से ऐनक उतारी, रूमाल से उस साफ किया और फिर दस्तान पहने हाथा से ओवरकोट पर से सीलन की परत पोछता ड्योढी म पडे अपने बाप बिशनसिंह के बिस्तर की तरफ बढा। छोटे कर्म-सिंह ने गम चादर को सँवारा और तिल्ले वाली जूती के नीचे लगा गोबर झाडने के लिए पैर को चबूतरे पर रगडते हुए बचनो की तरफ मुह किया—

—"घुदू कहा है ?"

बचनो ने बाँह निकालकर पशुओ की ओर की, जहा पर मोटरसाइकल की खडाक सी आवाज से खूटा उखाडकर भाग बछडे को घुदू पकड रहा था।

—"ओ आ भई पहलवान, थोडा मशवरा कर लें। 'भा जी'स भी रोज राज

छुट्टी लेकर नही आया जाता मुझे भी सौ काम रहते हैं और बूढ़ी के फूल अगर तुमने जाना है तुम सही, और अगर मैंने जाना है तो भी ठीक गंगा में डाल आएँ ■

"आता हूँ," घुददू ने बेपरवाही से जवाब दिया और उखड़े हुए खूटे से बँधे बछड़े का रस्सा खोलते हुए अपने लड़के से कहा—"ओ काकू, चारपाई निकाल कर अपने बापू के पास ड्योढ़ी में रख दे।"

इससे पहले कि काकू चारपाई लेकर आता, बूढ़े बिशनसिंह ने कहा—"काकू, कुर्सी ले आ।" और वह सीधा होकर एक तरफ़ को खिसककर बैठ गया और उतनी देर के लिए स्वर्नसिंह के बैठने की जगह खाली कर दी। पर स्वर्नसिंह पगड़ी ठीक करते हुए चारपाई के नजदीक खड़ा अपनी दाढ़ी को सहलाने लगा।

स्वर्नसिंह तीनो भाइयो म सबसे बड़ा और पढ़ा लिखा था। अपनी हिम्मत से पढ़कर वह ओवरसियर लग गया था और अच्छी कमाई करता था। वह शहर मे ही कोठी बनाकर रह रहा था। एकमात्र बेटी की उसने अच्छे घर में शादी कर दी थी। दोनो लड़के भी अच्छी नौकरियो पर लगे हुए थे। अच्छे और बड़े लोगो के साथ उसका सम्पर्क था, लेना देना था, मेल जोल था। उसका अपना ही एक विशेष दायरा बन चुका था। गाव मे उसका आना जाना कम ही था। जो दो ढाई एकड़ जमीन उसके हिस्से म आती थी, उसम घुददू ही खेती करता था और वह बकौल उसके—"खाने के लिए साल के दाने ही लेता था।" अपने रिश्तेदारो और मित्र दोस्तो मे वह यही कहा करता कि उसने जमीन घुददू को मुफ्त मे दी हुई है।

काकू कुर्सी ले आया। लोहे की यह एकमात्र कुर्सी कई वर्षों से उनके घर म थी।

—"पुत्तर, कुर्सी पर कपड़ा फेर लो जरा।" बूढ़े बिशनसिंह ने अपनी उड़े रंग वाली खादी की रजाई को ठीक किया और अपने केशों की जटूरी करके कांपते हाथों से मैली पगड़ी को सिर पर लपेटने लगा। बिशनसिंह जब भी स्वर्नसिंह के सामने होता था, उसकी अवस्था ऐसे हो जाती जैसे कोई जाट तहसीलदार के सामने खड़ा हो। वह उसे किसी दूसरी मिट्टी का बना लगता, जो बहुत साफ बढ़िया और चिकनी हो, जिसकी शायद गुड़िया और खिलौने बनते हो। स्वर्न के रहने सहने और उसकी टीपटाप के सामने वह अपने आपको खुरदरा सा महसूस करता, इसलिए शहर जाकर वह कभी भी स्वर्न के घर के कोमल-से माहौल मे ज्यादा समय नही टिक पाया था। उसे लगता जैसे उसके पाँव उस घर मे ठीक तरह से नही उठ रहे हो। उसकी बहू और पोते-पोतियाँ उसे जैसे घूर घूरकर देखते हो। उसे लगता जैसे मिट्टी के घरौंदो में खेलते खरगोश को कोई संगमरमर की गुफा मे छोड़ आया हो।

काचू ने कुर्सी साफ कर दी। बिशनसिंह स्वन को एकवचन या बहुवचन म सम्बोधित करने की दुविधा म ही था कि स्वन कुर्सी पर बैठ गया। ऐसे समय पर बिशनसिंह कई बार अपने-आप म बहुत कच्चा-सा होता। वह खुद ही हुकारा भरता—'यह कहाँ से वैसराय है ? मेरा लडका ही तो है ! मैं क्यो ?'

कर्मसिह खुद ही चारपाई उठाकर ड्योढी म ले आया। वह घुदढू से दो साल बडा था। पढाई मे लापरवाह और शरारत मे नम्बर एक। वह सती झीवरी के इधन म अपना बस्ता छुपाकर साथिया के साथ गेंद-बल्ला खेलने निकल जाता और छुट्टी के समय बस्ता उठाकर घर आ जाता। छोटा होने के कारण घुदढू उसके साथ ही रहता। इकट्ठे ही व स्कूल गए और इकट्ठे ही पढाई बीच म ही छोडकर वे घर मे बाप की सहायता करने लगे।

जवानी म पर रखते ही कर्मा तो पाडी बनकर तस्करी का माल ढोने लगा और घुदढू जिस्म का ताजा और हाड पाव का खुला होने से पहलवानी करने लगा। कर्मा का पाडी होना तो सार्थक रहा। धीरे धीरे उसने ब्लैक के माल म हिस्सा पत्ती रखना शुरू कर दिया। आज और—कल और और कर्मा भी साथ वाले कस्बे के चौक म अपना मकान बनवाकर ठाठ से रह रहा था। डेयरी और मुर्गीखाना खोल रखा था। उसके घर मे पूरी लहर-बहर थी।

और पहलवानी करते-करते धर्मासिह घुदढू का घुदढू ही रह गया था। बाप वाले हल का हत्था उसके हाथ म था। बाबा अल' ने उसके दो आदमी का जान की, एक के हल चलाने और दूसरे के चारा लाने की बात की थी। पर घुदढू सचमुच ही खेती के काम म दुगुने जोर के साथ लगा रहा था। वह अपनी तरफ से तेज दौडने का बहुत यत्न करता, पर सपने म डरकर भागने वाले की तरह। उसका हर उठा कदम आगे टिकने का नाम ही नही लेता था, जैसे कोई गैबी शक्ति उसकी कमर पकडकर पीछे को खीचे जा रही हो।

बछडे का खूटा गाडते घुदढू खूट को ठोकर मार रहा था, तो उसे लग रहा था जसे यह चाट उसके अपने सिर मे लग रही हो और वह हर चोट के साथ ही धरती म धँसता जा रहा हो। मन-ही मन वह दोनो भाइयो के साथ की जानेवाली बात के बार मे सोच रहा था। दोनो भाइयो के बारे मे सोचकर वह झुझला उठा और तीसरी बहन बचना ? उफ ! ये कैसे रिश्ते थे ?

बडे पर उसे खीझ आती कि वह अग-साक के सामने घुदढू को यतीम सा बनाकर पश करता था। दाने ते जाकर भी जमीन के बारे म ऐसे कहता था जैसे घुदढू को दान कर दी हो। जमीन घुदढू से छोडी नही जाती थी या छोडने पर उसका गुजारा नही होता था। पर इस तरह मुफ्त के अहसान के नीचे उससे दबा भी नही जाता था। और कर्मसिह तो बराबर का हिस्सा भी बाँटकर ले जाता था, पर साथ यह भी कहा करता था कि घुन्दू के हाथा म बरकत नही, उम हिस्से

म कुछ नहीं मिलता। अभी कल माँ के फूल चुनते वह बहनोई से कह रहा था—'भाइया, इस बार मेरी सलाह है गाँववाली दो एकड़ खुद ही ट्रैक्टर चलाकर भरा के लिए चारा बीज दूँ। इससे बचता-बचाता तो आगे कुछ नहीं।'

—'बुरी बात नहीं बुरी बात नहीं अच्छा रहेगा। बचनो के घर-वाला बोला था।

घुददू को पता था कि वे उसे सुनाकर बातें कर रहे हैं। वह अन्दर-ही-अन्दर दुखी हुआ बैठा था। बोला कुछ नहीं। ज़मीन तो पहले ही थोड़ी थी, कहीं यह दो एकड़ भी हल के नीचे से निकल नहीं जाए, उसे यही फिक्र थी।

खुद तो वह बातें करने में झिझकता था। लेन-देन बीच में आदमी बहन बहनोई थे या बाप जिन्हें वह अपना दुख बता सकता था, उनकी सहायता माँग सकता था। बहनोई तो उसके सामने कर्मसिंह को ज़मीन छुड़ा लेने के लिए सहारा दे रहा था, और बहन बचनो उसकी और क्या मदद कर सकती थी? उसे तो पहले ही एतराज़ रहता था कि बड़े भाई भाभी तो उसके साथ हमेशा अच्छा बरतते थे। उसका दुख-सुख बाँटने आते थे। मुश्किल में काम भी आते थे। साल छमाही में सूट भी दे देते थे। पर घुददू था कि मुश्किल के समय मदद तो क्या करनी—उनसे मिलने तो क्या जाना, अगर साल छमाही कभी उसका लड़का आ जाता तो कहती—

—हाए! इतना निर्मोही? लड़का होते पर वही चार चिथड़े दिए थे बस—मेरी ज़बान सड़ जाए अगर कहीं लड़के को दो टाकियाँ बनाकर दी हों या एक रुपया ही कभी हाथ पर रखा हो। देखो ना हम इसके पैसा कपड़ा पर तो बैठे हुए नहीं पर फिर भी बहन भाई का कोई रिश्ता भी तो होता है देखो ना और वह आँखों पर चुनरी फेरने लगती।

घुददू बचनो पर अन्दर-ही-अन्दर जला भुना पड़ा था। उस दिन माँ का संस्कार करने से पहले स्नान कराते समय माँ के कानों की सोने की बालियाँ उतार कर उसने बीच वाली भाभी को पकड़ा दी थीं।

एक पल उसे माँ पर भी खीझ आई। पर फिर माँ का लकीरों भरा चेहरा और गहरी चमकती आँखें याद आने पर वह माँ के प्यार में भीग गया। एक माँ ही थी, जिसने उसे बहुत प्यार किया था। हमेशा उसके हक में डटकर बोली थी। जो बात, जिस भाषा में जितने ज़ोर से कहना चाहता, उसकी माँ वह बात उससे भी ज़ोरदार अन्दाज़ में कहा करती। वही थी जो घुददू के बारे में कहा करती—'यह तो मेरा लोलढ़ बेटा है, भोला भाला, शिव जैसा तुम तो सब काटे हो।

घुददू को अफसोस था कि वह मरती हुई माँ के पास नहीं था। तमाम उम्र माँ उसके पास रही पर मरते समय उसके पास से चली गई। दो महीने हुए उसे अचानक हवा लग गई और अंग मारा गया। स्वर्नसिंह माँ का पता करने आया तो

वह माँ के मना करने पर भी उसे अपने साथ शहर ले गया, ताकि उसे बड़े अस्पताल में दाखिल करवाकर इलाज करवा सके।

लगभग डेढ़ महीना इलाज चलता रहा। पर बूढ़ा और कमजोर शरीर बीमारी की मार नहीं झेल पाया।

और रह गया था बाकी बूढ़ा बिशन सिंह, जो उसकी मुश्किलों को समझता था। उसकी तंगी, जिसकी अपनी तंगी थी। उसने खुद जो सारी उम्र किसान की जिन्दगी भोगी थी, पर वह बेचारा इतना दब्बू जाट था, या ऐसे कह लें कि उसके बड़े पुत्रों के पैसे का दबाव उसपर कुछ ऐसा बैठा था कि वह उनसे खुलकर कोई बात कह ही नहीं पाता था।

—"आ आ माँ के शिव जी! वहां पर खूंटे को ही ठक-ठक किए जा रहा है, हमें दूसरे भी कई काम करने हैं।" कर्मसिंह ने घुदड़ू को आवाज दी।

घुदड़ू मिट्टी-सने हाथ कमर की चादर के साथ पोंछता उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे चलता ड्योढ़ी में आकर उनके पास खड़ा हो गया।

"बैठ जाओ!" कर्मसिंह ने घुदड़ू को चारपाई पर बैठ जाने का इशारा किया। बचनो भी अपनी चुनरी ठीक करती हुई बाप के पास आ बैठी।

"बुजुर्ग! भाई साहेब कल रात मेरे पास आ गए थे। हम आपसे मशवरा लेने आए हैं।"

—"करो मशवरा, जो करना है, बोलो!" कहते हुए बिशनसिंह ने धीरे-धीरे दाढ़ी को खुजलाया।

—"देखो, सुलह से मिल जुलकर हम आपस में जो बात करेंगे, उसका कोई मुकाबला नहीं।" कर्मसिंह एक पल रुका और सभी के चेहरों की तरफ ताकने लगा। फिर खँखारकर बोला—"बात एक तो यह है कि माँ का 'इकट्ठ' करना है धूम धड़ाके से, सभी अंग-साक आएँगे। बूढ़ी कर्मोंवाली, नाते पोतोंवाली होकर, उम्र भोगकर गई है, उसे बड़ा करना है, हूँ, क्या सलाह है?"

—"बेटे! मेरी सलाह क्या होगी, पर हम जैसे छोटे लोगों का क्या बड़ा करना हुआ!" यह बिशनसिंह की टूटती आवाज थी।

—"मैंने भी कर्मों से कहा है कि यह फजूलखर्ची है, यह मानता नहीं!"

—"ओ भाई साहेब! बिरादरी कहेगी—चंगे भले पुत्र कमाते हैं, पैसेवाले हैं, क्या मौत पड़ गई? तुम पढ़े लिखों के लिए होगी फजूल-खर्ची और तुम्हें क्या, तुम्हें तो शहर में रहना है। यहां नाक ताने तो हम देंगे।"

कर्मसिंह अभी बोल ही रहा था कि बचनो उसकी बात काटकर कहने लगी—भाई साहेब, आप भी कैसी बातें करते हैं? बचनो स्वर्नसिंह पर तीखी होकर बरस पड़ी—'भाई कर्मसिंह ठीक कहता है, उधर मेरे ससुरालवाले तो तैयारियां भी करे बैठे होंगे, मुझे तो देवरानी और जठानियों ने ताने दे देकर मार छोड़ना है।'

घुदद् को पता था, बिशनसिंह द्वारा बात उसी के साथ हो रही है। उसका दिल करता था बचनो को एक थप्पड़ दे मारे। रतनसिंह ठीक ही कह रहा था कि यह फज़ूल-खर्ची है। घुद्दू को अपना घर दीख रहा था।

— देखो भई, मैं पीछे हटकर तो बैठूंगा नहीं। जितना खर्च मेरे हिस्से में आता है बता दो, पर मेरा " रतनसिंह बोला।

घुद्दू को आशा थी कि रतनसिंह इसके विरोध में डटेगा, पर उसके सहारे की रस्सी जल्दी ही उसके हाथ में छूट गई और वह सोच और फिक्र के कुएँ में एकदम जा गिरा। वह जल रहा था और उसके अन्दर-ही-अन्दर धुआं इकट्ठा हो रहा था।

"पांच-सात हज़ार तो आसानी में लग जाएगा, और भाई साहब कहते हैं कि सत्ताईस सौ रुपया माँ की बीमारी पर इन्होंने खर्च किया। हम तीनों पर नौ-नौ सौ आता है।" कर्मसिंह सारे खर्च का ब्यौरा बता रहा था।

मां की बीमारी का खर्च बांटे जाने की बातें सुनकर घुदद् को धक्का लगा। वह अपने होंठ काटने लगा। उसे सूझ नहीं रहा था कि क्या कहे और क्या न कहे?

—"मां की बीमारी पर खर्च किया, फिर क्या है? इस बेचारे ने सारी उम्र उसे रोटी भी तो खिलाई है।" बिशनसिंह ने हिम्मत करके बात कह ही दी।

—"लो देखो ना बापू यह बात ठीक नहीं! अगर इसने रोटी खिलाई तो सारी उम्र काम भी तो वह इसी का करती रही है। इसके बच्चे संभाले गद-मद धोया।" बचनो हाथ बाहर निकालकर पंजा हिला हिलाकर बातें कर रही थी, 'देखो ना, मां बाप के हिस्से की जायदाद भी तो फिर यही खाता रहा '

— तुम तुम चुप हो जाओ! बड़ी आई वकीलनी!" घुद्दू झट बोल उठा। उसके नथुने फड़क रहे थे। इतनी सर्दी में भी उसका माथा तप रहा था।

— लो मैं नहीं चुप होती देखो ना, इसे तो मैं ज़हर लगती हूँ निरी। देखो ना लो मैं नहीं बैठती " बचनो हाथ हिलाती गुस्से में उबलती उठ खड़ी हुई।

तनाव का माहौल देखकर कर्मसिंह ने बात टालनी चाही कि बचनो मुंह मोड़ कर फिर बोल उठी—

—"देखा ना मेरा हिस्सा भी है बस तो ज़मीन में तुम बहुत आए वकीलनी तो वकीलनी ही सही!"

—"चलो छोड़ो बाकी बातें फिर कर लेंगे शान्त हो जाओ!" और इस बार कर्मसिंह सीधा घुद्दू को सम्बोधित हुआ—"भाई साहब के पास तो टाइम नहीं बुढ़ी के फूल, बताओ तुम गंगा लेकर जाओगे या मैं जाऊं फिर?"

दो मिनट घुद्दू चुप करके बैठा रहा। उसके अन्दर अनेक विचार एक-दूसरे को काटते हुए दौड़ रहे थे। पल भर के लिए बाहरवाली धुंध जैसे उसके अन्दर फैल

गई थी। वह सुन्न-सा गुम-सुम बैठा रहा। और फिर जैसे उसका अन्दर जल उठा हो। वह एकदम उठकर खड़ा हो गया।

"देखो जी आपसे कोई छुपी हुई बात तो है नहीं। हम तो खुद ही मरे हुए हुए हैं—हम से नहीं अभी यह गंगा-वंगा जाया जाएगा।" वह पल भर के लिए रुका। गले में रुका थूक उसने अन्दर लिया और फिर सिर को झटका देकर बोला —"अगर ज्यादा ध्यान है तो बूढ़ी के फूल तुम गंगा में डाल आओ और यह बूढ़ा बैठा है तुम्हारे सामने जीता जागता ' उसने बिशनसिंह की तरफ इशारा किया—"इसको मैं अकेला ही गंगा में डाल आऊँगा।"

तीनों बाप-बेटे सकते में उसके मुँह की तरफ देख रहे थे। पर वह रुका नहीं— "सच्ची बात है अभी हमारी पहुँच नहीं। और अगर यह सौदा मंजूर नहीं तो सरदार जी, उस खूँटी पर मेरे तीसरे हिस्से के फूल लाकर टाँग दो जब मेरी में पहुँच पड़ेगी, मैं डाल आऊँगा।"

और वह उनके देखते देखते मुँह भींचकर अन्दर चला गया।

अनुवाद रामसरूप अणखी

दो औरतें

—अमृता प्रीतम

उसे अब नीलम कोई नहीं कहता था, सब शाह की कंजरी कहते थे।

नीलम को लाहौर हीरा मंडी के एक चौबारे में जवानी चढ़ी थी और वहाँ ही एक रियासती सरदार के हाथों पूरे पाँच हजार में उसकी नथ उतरी थी, और वहाँ ही उसके हुस्न ने आग जलाकर सारा शहर झुलसा दिया था। पर फिर एक दिन वह हीरा मंडी का सस्ता चौबारा छोड़कर शहर के सबसे बड़े होटल फ्लैटी में आ गई थी।

वही शहर था, पर सारे शहर को जैसे रातोंरात उसका नाम भूल गया हो सबके मुँह से सुनाई देता था—शाह की कंजरी।

गजब का गाती थी। कोई गानेवाली उसकी तरह मिरजे की 'सद' नहीं लगा सकती थी, इसलिए लोग चाहे उसका नाम भूल गए थे पर उसकी आवाज नहीं भूल सके थे। शहर में जिसके घर भी तवेवाला बाजा था वह उसके भरे हुए तवे जरूर खरीदता था। पर सब घरों में तवे की फरमाइश के वक्त, हर कोई यही कहता था, 'आज शाह की कंजरीवाला तवा जरूर सुनना है।

लुकी छुपी बात नहीं थी। शाह के घरवालों को भी पता था। सिर्फ पता ही नहीं था, उनके लिए बात भी पुरानी हो गई थी। शाह का बड़ा लड़का जो अब ब्याहने लायक था, जब गोद में था तो सेठानी ने जहर खाकर मरने की धमकी दी थी। पर शाह ने उसके गले में मोतियों का हार डालकर कहा था—'शाहनीए! वह तेरे घर की बरकत है। मेरी आँख जौहरी की आँख है। तूने सुना नहीं कि नीलम ऐसी चीज होता है, जो लाखों को खाक कर देता है और खाक के लाख बनाता है। जिसे उलटा पड़ जाए, उसको लाख से खाक बना देता है पर जिसे सीधा पड़ जाए, उसे खाक से लाख बना देता है। वह भी नीलम है, हमारी राशि से मिल गया है। जिस दिन से साथ बना है, मैं मिट्टी को हाथ डालूँ तो सोना हो जाती है।'

'पर वही एक दिन घर उजाड़ देगी, लाखों को खाक कर देगी।' शाहनी ने छाती की साल सहकर उसी तरह से दलील दी थी, जिस तरह से शाह ने बात चलाई थी।

'मैं तो बल्कि डरता हूँ कि इन कंजरियों का क्या भरोसा! कल किसी और ने सब्ज बाग दिखाए और जो यह हाथों से निकल गई तो लाख से खाक बन जाना

है।' शाह ने फिर अपनी दलील दी थी।

और शाहनी के पास और दलील नहीं रह गई थी, सिर्फ वक्त के पास रह गई थी और वक्त चुप था, कई बरसों से चुप था। शाह सचमुच जितने रुपये नीलम पर बहाता, उससे कई गुना ज्यादा पता नहीं कहां कहां से बहकर उसके घर आ जाते थे। पहले उसकी छोटी सी दुकान शहर के छोटे से बाजार में होती थी, पर अब सबसे बड़े बाजार में लोहे के जंगलेवाली, सबसे बड़ी दुकान उसकी थी। घर की जगह पूरा मुहल्ला ही उसका था, जिसमें बड़े खाते पीते किराएदार थे और जिसमें तहखानेवाले घर को शाहनी एक दिन के लिए भी अकेला नहीं छोड़ती थी।

बहुत बरस हुए शाहनी ने एक दिन मोहरोंवाले ट्रंक का ताला लगाते हुए, शाह से कहा था—'उसे चाहे होटल में रखो और चाहे उसके लिए ताजमहल बनवा दो, पर बाहर की बला बाहर ही रखो। उसे मेरे घर ना लाना! मैं उसके माथे नहीं लगूंगी।'

और सचमुच शाहनी ने अभी तक उसका मुंह नहीं देखा था। जब उसने यह बात कही थी, उसका बड़ा लड़का स्कूल में पढ़ता था, और अब वह ब्याहने लायक हो गया था। पर शाहनी ने न उसके गानेवाले तवे घर में आने दिए और न घर में किसी को उसका नाम लेने दिया था।

वैसे उसके बेटों ने दुकान दुकान पर उसके गाने सुन रखे थे और जने जने से सुन रखा था—शाह की कंजरी।

बड़े लड़के का ब्याह था। घर पर चार महीने से दर्जी बैठे हुए थे। कोई सूट पर सलमा काढ़ रहा था, कोई तिल्ला, कोई किनारी और कोई दुपट्टे पर सितारे जड़ रहा था। शाहनी के हाथ भरे हुए थे। रुपयों की थैली निकालती, खोलती, फिर और थैली भरने के लिए तहखाने में चली जाती।

शाह के यार दोस्तों ने शाह की दोस्ती का वास्ता डाला कि लड़के के ब्याह पर कंजरी जरूर गवानी है। वैसे बात उन्होंने बड़े तरीके से कही थी ताकि शाह कहीं बल न खा जाए—'वैसे तो शाहजी, बहुतेरी गाने-नाचनेवाली हैं, जिस मर्जी हो बुलाओ। पर यहां 'मलकये तरन्नुम' जरूर आए, चाहे मिरजे की एक ही सद लगा जाए।'

फ्लैटी होटल आम होटलों जैसा नहीं था। वहां ज्यादातर अंग्रेज लोग ही आते और ठहरते थे। उसके अकेले-अकेले कमरे भी थे, पर बड़े-बड़े तीन कमरों के सेट भी। ऐसे ही एक सेट में नीलम रहती थी। और शाह ने सोचा, दोस्तों-यारों का दिल खुश करने के लिए वह एक दिन नीलम के यहां एक रात की महफिल रख लेगा।

दो औरतें

—अमृता प्रीतम

उसे अब नीलम कोई नही कहता था, सब शाह की कजरी कहते थे।

नीलम को लाहौर हीरा मडी के एक चौबारे म जवानी चढी थी और वहा ही एक रियासती सरदार के हाथो पूरे पाच हजार म उसकी नथ उतरी थी, और वहा ही उसके हुस्न ने आग जलाकर सारा शहर धुलमा दिया था। पर फिर एक दिन वह हीरा मडी का सस्ता चौबारा छोडकर शहर के सबसे बडे होटल फ्लैटी म आ गई थी।

वही शहर था, पर सारे शहर का जस रातोरात उसका नाम भूल गया हा सबके मुह से सुनाई देता था—शाह की कजरी।

गजब का गाती थी। कोई गानवाली उसकी तरह मिरज की 'सद' नही लगा सकती थी, इसलिए लोग चाहे उसका नाम भूल गए थे पर उसकी आवाज नही भूल सके थे। शहर मे जिसके घर भी तवेवाला बाजा था, वह उसके भर हुए तव जरूर खरीदता था। पर सब घरो मे तवे की फरमाइश के वक्त, हर कोइ यही कहता था, 'आज शाह की कजरीवाला तवा जरूर सुनना है।'

लुकी छुपी बात नही थी। शाह के घरवाला को भी पता था। सिफ पता ही नही था, उनके लिए बात भी पुरानी हो गई थी। शाह का बण लडका जो अब व्याहने लायक था, जब गोद म था तो सेठानी ने जहर खाकर मरने की धमकी दी थी। पर शाह ने उसके गले मे मोतियो का हार डालकर कहा था—'शाहनीय! वह तेरे घर की बरकत है। मेरी आख जौहरी की आँख है। तूने सुना नही कि नीलम ऐसी चीज होता है, जा लाखो को खाक कर देता है और खाक के लाख बनाता है। जिमे उलटा पड जाए, उसको लाख से खाक बना देता है पर जिमे सीधा पड जाए, उमे खाक से लाख बना देता है। वह भी नीलम है हमारी राशि से मिल गया है। जिस दिन मे साथ बना है मैं मिट्टी को हाथ डालू तो साना हो जाती है '

'पर वही एक दिन घर उजाड देगी, लाखा को खाक कर देगी।' शाहनी ने छाती की साल सहकर उसी तरह से दलील दी थी जिस तरह स शाह न बात चलाई थी।

मैं तो बल्कि डरता हूँ कि इन कजरिया का क्या भरासा! कल किसी और न सब्ज बाग दिखाए और जो यह हाथा से निकल गइ तो लाख से खाक बन जाना

है।' शाह ने फिर अपनी दलील दी थी।

और शाहनी के पास और दलील नहीं रह गई थी, सिर्फ वक्त के पास रह गई थी और वक्त चुप था, कई बरसों से चुप था। शाह सचमुच जितने रुपये नीलम पर बहाता, उससे कई गुना ज्यादा पता नहीं कहाँ कहाँ से बहकर उसके घर आ जाते थे। पहले उसकी छोटी सी दुकान शहर के छोटे-से बाजार में होती थी, पर अब सबसे बड़े बाजार में लोहे के जंगलेवाली, सबसे बड़ी दुकान उसकी थी। घर की जगह पूरा मुहल्ला ही उसका था, जिसमें बड़े खाते-पीते किराएदार थे और जिसमें तहखानेवाले घर को शाहनी एक दिन के लिए भी अकेला नहीं छोड़ती थी।

बहुत बरस हुए शाहनी ने एक दिन मोहरोंवाले ट्रंक को ताला लगाते हुए, शाह से कहा था—'उसे चाहे होटल में रखो और चाहे उसके लिए ताजमहल बनवा दो, पर बाहर की बला बाहर ही रखो। उसे मेरे घर ना लाना! मैं उसके माथे नहीं लगूंगी।'

और सचमुच शाहनी ने अभी तक उसका मुंह नहीं देखा था। जब उसने यह बात कही थी, उसका बड़ा लड़का स्कूल में पढ़ता था, और अब वह ब्याहने लायक हो गया था। पर शाहनी ने न उसके गानेवाले तवे घर में आने दिए और न घर में किसी को उसका नाम लेने दिया था।

बस उसके बेटे ने दुकान-दुकान पर उसके गाने सुन रखे थे और जन जन से सुन रखा था—शाह की कंजरी।

बड़े लड़के का ब्याह था। घर पर चार महीने से दर्जी बैठे हुए थे। कोई सूटों पर सलमा काढ़ रहा था, कोई तिल्ला, कोई किनारी और कोई दुपट्टे पर सितारे जड़ रहा था। शाहनी के हाथ भरे हुए थे। रुपयों की थैली निकालती, खोलती, फिर और थैली भरने के लिए तहखाने में चली जाती।

शाह के चार दोस्तों ने शाह की दोस्ती का वास्ता डाला कि लड़के के ब्याह पर कंजरी जरूर गवानी है। वैसे बात उन्होंने बड़े तरीके से कही थी ताकि शाह कहीं बल न खा जाए—'वैसे तो शाहजी, बहुतेरी गाने-नाचनेवाली हैं, जिसे मर्जी हो बुलाओ। पर यहाँ 'मलक्ये तरन्नुम' जरूर आए, चाहे मिरज़े की एक ही 'सद' लगा जाए।'

फ्लैटी होटल आम होटलों जैसा नहीं था। वहाँ ज्यादातर अंग्रेज लोग ही आते और ठहरते थे। उसमें अकेले-अकेले कमरे भी थे, पर बड़े-बड़े तीन कमरों के सेट भी। ऐसे ही एक सेट में नीलम रहती थी। और शाह ने सोचा, दोस्तों-यारों का दिल खुश करने के लिए वह एक दिन नीलम के यहाँ एक रात की महफिल रख लेगा।

— यह तो चौबारे पर जाने वाली बात हुई !' एक ने उज्र किया तो सारदार पडे —'नही शाहजी, वह तो सिर्फ तुम्हारा ही हक बनता है। पहले कभी इतने बरस हमने कुछ कहा है ? उस जगह का भी नाम नही लिया। वह जगह तुम्हारी अमानत है। हम तो भतीजे के ब्याह की खुशी मनानी है। उस खानदानी घराने की तरह अपने घर बुलाओ, हमारी भाभी के घर !"

बात शाह के मन भा गई, इसलिए कि वह दोस्तो-यारो को नीलम की राह दिखाना नही चाहता था (चाहे उसके कानो मे भनक पडती रहती थी कि उसकी गैरहाजिरी मे कोई-कोई अमीरजादा नीलम के पास आने लगा था)। दूसरे इसलिए भी कि वह चाहता था, नीलम एक बार उसके घर आकर उसके घर का तडक भडक देख जाए। पर वह शाहनी से डरता था, दोस्तो को हामी न भर सका।

दोस्तो यारो म स दो न राह निकाली और शाहनी के पास जाकर कहने लगे — भाभी, तुम लडके की शादी के गीत नही गवाओगी ? हम तो सारी खुशियाँ मनाएँगे। शाह ने सलाह की है कि एक रात यारो की महफिल नीलम की तरफ हो जाए। बात तो ठीक है पर हजारो उजड जाएँगे। आखिर घर तो तुम्हारा है ! पहले क्या उस कजरी को थोडा खिलाया है ? तुम सयानी बनो उस गाने-बजाने के लिए एक दिन यही बुला लो। लडके के ब्याह की खुशी भी हो जाएगी और रुपया उजडने से बच जाएगा।

शाहनी पहले तो भरी-भराई बोली—'मैं उस कजरी के माथे नही लगना चाहती !' पर जब दूसरो ने बडे धीरज से कहा—'यहाँ तो भाभी तुम्हारा राज है, वह बाँदी बनकर आएगी तुम्हारे हुक्म मे बँधी हुई, तुम्हारे बेटे की खुशी मनाने के लिए। हठी तो उसकी है, तुम्हारी काहे की ? जैसे कमीन-कुमीन आए डोम मिरासी, वैसी वह !'

बात शाहनी के मन भा गई। वैसे भी कभी सोते बैठते उसे खयाल आता था —एक बार देखूँ तो सही कैसी है !

उसने उसे कभी देखा नही था पर कल्पना जरूर की थी—चाहे डरकर, सहमकर, चाहे एक नफरत से। और शहर म से गुजरते हुए, अगर किसी कजरी को ताग म बैठी देखती तो न सोचते हुए ही सोच जाती, क्या पता वही हो ?

—चलो एक बार मैं भी देख लूँ ! वह मन म घुल-सी गई—जो उसका मेरा बिगाडना था, बिगाड लिया अब और उसे क्या कर लेना है ! एक बार चँदरी को देख तो लूँ !

शाहनी ने हामी भर दी, पर एक शर्त रखी—'यहाँ न शराब उडेगी, न कबाब। भले घरो म जिस तरह गीत गाए जाते हैं उसी तरह गीत करवाऊँगी। तुम मद-मानस भी बैठ जाना। वह आए और सीधी तरह गाकर चली जाए। मैं वही चार

बताशे उसकी झोली म भी डाल दूगी, जो और लडकिया-बडकिया को दूगी जो बन्ने, सेहरे गाएँगी।'

'यही तो भाभी, हम कहत है।' शाह क दोस्तो न फूक दी—'तुम्हारी समझदारी स ही तो घर बना है, नही तो क्या खबर क्या हो गुजरना था।'

वह आइ। शाहनी न खुद अपनी बग्घी भेजी थी। घर मेहमानो स भरा हुआ था। बडे कमरे मे सफेद चादरें बिछाकर, बीच मे ढोलक रखी हुई थी। घर की औरतो ने बन्ने, सेहर गान शुरू कर रख थे।

बग्घी दरवाज पर आ रुको, तो कुछ उतावली औरतें दौडकर खिडकी की एक तरफ चली गइ और कुछ सीढियो की तरफ

'अरी, बदशगुनी क्या करती हो? सेहरा बीच म ही छोड दिया?' शाहनी न डाँट-सी दी। पर उसकी आवाज उस खुद ही धीमी-सी लगी जस उसक दिल पर एक धमक-सी हुइ हो

वह सीढियाँ चढकर दरवाजे तक आ गई थी। शाहनी ने अपनी गुलाबी साडी का पल्ला सवारा, जस सामन देखन के लिए वह साडी के शगुनवाले रग का सरा ले रही हो

सामन—उसन हरे रग का बाँकडी वाला गरारा पहना हुआ था, गल म लाल रग की कमीज थी, और सिर से पैर तक ढलकी हुई हरे रेशम की चुनरी। एक झिलमिल-सी हुई। शाहनी को सिफ एक पल यही लगा जैस हरा रग सारे दरवाज मे फल गया था।

फिर हरे काँच की चूडिया की छन छन हुइ, तो शाहनी दखा—एक गोरा-गोरा हाथ, एक झुके हुए माथे को छूकर आदाब बजा रहा ह, और साथ ही एक झनकती हुई सी आवाज—बहुत-बहुत मुबारिक शाहनी! बहुत-बहुत मुबारिक!

वह बडी नाजुक-सी, पुतली-सी थी। हाथ लगत ही दोहरी होनी थी। शाहनी न उस गाव-तकिए के सहार हाथ के इशारे से बैठने को कहा, तो शाहनी को लगा कि उसकी मासल बाँह बडी ही बेडौल लग रही थी।

कमरे के एक कोने म शाह भी था। दोस्त भी थे, कुछ रिश्तदार मर्द भी। उस नाजनीन न उस कोन की तरफ देखकर भी एक बार सलाम किया, और फिर परे गाव-तकिए के सहारे ठुमककर बठ गई। बैठने वक्त काँच की चूडियाँ फिर छनकी थी। शाहनी ने एक बार फिर उसकी बाहो को देखा, हरे काँच की चूडिया को और फिर स्वाभाविक ही अपनी बाँह म पडे हुए सोन क चूडे को दखने लगी

कमरे में एक चकाचौंध-सी छा गई थी। हर एक की आखें जैसे एक ही तरफ उलट गई थी। शाहनी की अपनी आंखें भी, पर उसे अपनी आंखों को छोड़कर सबकी आखो पर गुस्सा-सा आ गया

वह फिर एक बार कहना चाहती थी—अरी बदशगुनी क्या करती हो? सेहरे गाओ ना! पर उसकी आवाज गले में घुटती-सी गई थी। शायद औरो की आवाज भी गले में घुट गई थी। कमरे में एक खामोशी छा गई थी। वह अधबीच रखी हुई ढोलक की तरफ देखने लगी, और उसका जी किया कि वह बड़ी जोर से ढोलक बजाए

खामोशी उसने ही तोड़ी जिसके लिए खामोशी छाई थी। कहने लगी—'मैं ला सबसे पहले घोड़ी गाऊँगी। लड़के का सगुन करूँगी, क्या शाहनी? और शाहनी की तरफ ताकती हँसती हुई घोड़ी गाने लगी—निक्की निक्की बूंदी निक्किया मीह वे वरे, तेरी मा वे सुहागन तेरा सगन करे

शाहनी को अचानक तसल्ली-सी हुई—शायद इसलिए कि गीत के बीच की माँ वही था और उसका मर्द भी सिर्फ उसका मर्द था—तभी तो मा सुहागन थी

शाहनी हँसते मुंह से उसके बिल्कुल सामने बैठ गई—जो उस वक्त उसके बेटे के सगुन कर रही थी

घोड़ी खत्म हुई तो कमरे की बोल चाल फिर से लौट आई। फिर कुछ स्वाभाविक सा हो गया। औरतों की तरफ से फरमाइश की गई—ढोलकी रोड़ेवाला गीत!

मर्दों की तरफ से फरमाइश हुई—मिरजे दियां सद्दां!

गानेवाली ने मर्दों की फरमाइश सुनी अनसुनी कर दी, और ढोलकी को अपनी तरफ खींचकर उसने ढोलकी से अपना घुटना जोड़ लिया। शाहनी कुछ रौ में आ गई शायद इसलिए कि गानेवाली मर्दों की फरमाइश पूरी करने के बजाय औरतों की फरमाइश पूरी करने लगी थी।

मेहमान औरतों में से शायद कुछ एक को पता नहीं था। वे एक-दूसरे से कुछ पूछ रही थी और कई उनके कानों के पास कह रही थी—यही है, शाह की कंजरी

कहनेवालियों ने शायद बहुत धीरे-से कहा था—खुसर-पुसर-सा पर शाहनी के कान में आवाज पड़ रही थी, कानों से टकरा रही थी—शाह की कंजरी शाह की कंजरी और शाहनी के मुंह का रंग फीका पड़ गया।

इतने में ढोलक की आवाज ऊँची हो गई और साथ ही गानेवाली आवाज —सूहे वे चीरे वालिया मैं कहनी हां और शाहनी का कलेजा थम-सा गया—यह

सूहे चीरेवाला मेरा ही बेटा है, सुख से आज घोडी पर चढ़नेवाला मेरा बेटा

फरमाइश का अन्त नही था। एक गीत खत्म होता, दूसरा गीत शुरू हो जाता। गानवाली कभी औरतो की तरफ की फरमाइश पूरी करती, कभी मर्दों की। बीच-बीच म कह देती—'कोई और भी गाओ ना ! मुझे सास दिला दो।' पर किसकी हिम्मत थी, उसके सामने होने की ! उसकी टल्ली-सी आवाज, हूक-सी आवाज वह भी शायद कहने को कह रही थी, वैसे एक के पीछे झट दूसरा गीत छेड देती थी।

गीतो की बात और थी, पर जब उसने मिरज की हेक लगाई—उठ नी साहिबा सुत्तीए ! उठ के द दीदार तो हवा का कलेजा हिल गया। कमरे मे बैठे हुए मद बुत बन गए थे।

शाहनी को फिर घबराहट-सी हुई। उसने बडे गौर से शाह के मुह की तरफ दखा। शाह भी और बुतो सरीखा बुत बना हुआ था। पर शाहनी को लगा, वह पत्थर का हो गया था

शाहनी के कलेजे मे हौल-सा हुआ, और उसे लगा अगर यह घडी छिन गई तो वह आप भी हमेशा के लिए मिट्टी का बुत बन जाएगी वह करे, कुछ करे कुछ भी कर, पर मिट्टी का बुत ना बने

काफी शाम हो गई, महफिल खत्म होने की थी

शाहनी का कहना था, आज वह उसी तरह बताशे बाटेगी, जिस तरह लाग उस दिन बाटते है, जिस दिन गीत बैठाए जाते है। पर जब गाना खत्म हुआ तो कमरे मे चाय और कई तरह की मिठाइयाँ आ गइ

और शाहनी ने मुटठी मे लपेटा हुआ सौ का नोट निकालकर, अपने बेटे के सिर पर से वारा, और फिर उस पकडा दिया, जिसे लोग शाह की कजरी कहते थे।

'रहने द शाहनी ! आगे भी तेरा ही खाती हूँ।' उसने जवाब दिया और हँस पडी। उसकी हँसी उसके रूप की तरह झिलमिल कर रही थी।

शाहनी के मुह का रग हल्का पड गया। उसे लगा जसे शाह की कजरी ने आज भरी सभा मे शाह से अपना सम्बन्ध जोडकर उसकी हत्तक कर दी थी। पर शाहनी ने अपना-आपा थाम लिया। तय सा किया कि आज उससे हार नही खानी थी और वह जोर से हँस पडी। नोट पकडाती हुई कहने लगी—'शाह से तूने नित लेना है पर मेरे हाथ मे तून फिर कब लेना है ? चल आज ले ले !'

और शाह की कजरी, मौ के नोट को पकडती हुई, एक ही बार मे हीनी-सी हो गई

कमर म शाहनी की साडी का शगुन वाला गुलाबी रग फल गया

अनुवाद शाता

मेरा कमरा, तेरा कमरा

—दलीप कौर टिवाना

दफ्तर मे मेरा कमरा और तेरा कमरा साथ साथ हैं। फिर भी न यह कमरा उस तरफ जा सकता है और न ही वह कमरा इस तरफ आ सकता है। दोनो की अपनी-अपनी सीमा है। दोनो के बीच एक दीवार है। दीवार बहुत पतली-सी है। भूल से भी जो उधर तेरा हाथ लगता है तो आवाज मेरे कमरे मे पहुँच जाती है। एक दिन शायद कोई इस दीवार मे तेरी तरफ से कील ठोक रहा था, मेरे कमरे की सारी दीवारे धमक रही थी। मै उठकर बाहर गई कि देखू, लेकिन तेरे कमरे के दरवाजे पर भारी परदा लटका हुआ था। मैं लौट आई। आजकल लोग आमतौर पर दरवाजा खिडकियो पर भारी परदे लटकाए रखते है, ताकि बाहर से किसी को कुछ दिखाई न दे। फिर मुझे खयाल आया परदा तो मेरे कमरे के दरवाजे के आगे भी है।

कभी कभी जब किसी बात पर तू चपरासी के साथ ऊँचा बोलता है, मैं काम करती-करती कलम रखकर बैठ जाती हूँ। मेरा दिल करता है तुझसे पूछू, क्या बात हो गई? लेकिन फिर ख्याल आता है, तुझे शायद यह अच्छा न लगे कि जब तू चपरासी के साथ ऊँचा बोल रहा था तो मैं सुन रही थी। तुझे तो इस बात का ख्याल भी नही रहता कि तू गहरा सास भी भरे तो साथ के कमरे मे सुनाई दे जाता है।

एक दिन मेरे कमरे मे चलता चलता पखा बन्द हो गया। शायद बिजली चली गई थी। कुछ मिनट मैं इन्तजार करती रही। फिर गरमी से घबराकर मै कमरे से बाहर बरामदे मे आ गई जो दोना कमरो के आगे साझा है। मुझे पता था, तेरे कमरे का पखा भी बन्द हो गया होगा। फिर भी मैंने थोडा-सा तेरे कमरे के अन्दर झाककर पूछा 'आपका पखा चलता है?" मेरा भाव था कि अगर नही चलता तो तू भी साझे बरामदे मे आ जाए। जब अन्दर उमस हो तो पल दो-पल के लिए बाहर आ जाने मे कोई डर नही होता।

"नही, पखा तो नही चलता लेकिन मैंने पिछली खिडकी खोल ली है' तूने कहा। लेकिन मुझे जैसे पिछली खिडकी का ख्याल ही नही आया था, इसीलिए मैं कमरे से बाहर आ गई थी।

एक दिन काम करते हुए मेरे हाथ से कलम गिर गया। निब टेढी हो गई।

उस दिन मुझे खयाल आया था तेरे कमरे में से कोई कलम मँगवा लूँ। लेकिन फिर इस भय से कि कहीं तू यह न कहलवा भेजे कि मेरे पास फालतू कलम नहीं, मैं यह हौसला न कर सकी। बहुत बार ऐसा ही होता है कि हम खुद ही सवाल करते हैं और खुद ही उसका जवाब दे लेते हैं।

कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि अगर कभी दोनों कमरों के बीच की यह दीवार टूट जाए। लेकिन इससे तेरा कमरा साबुत नहीं रह जाएगा, मेरा कमरा भी साबुत नहीं रह जाएगा। फिर तो ऐसा ही प्रतीत हुआ करेगा जैसे खुला, बड़ा-सा एक ही कमरा हो। लेकिन ऐसा करना शायद ठीक न हो। बनानेवाले ने कुछ सोचकर ही ये अलग-अलग कमरे बनाए होंगे।

कभी-कभी मुझे ऐसा महसूस होता है जैसे मैं इस पक्की सीमेंट की दीवार में से देख सकती हूँ। तब ही तो मुझे पता लग जाता है कि आज तू काम नहीं कर रहा। कभी छत की ओर देखने लग जाता है तो कभी हाथ की लकीरों को। कभी फाइलें खोल लेता है, कभी बन्द कर देता है। कभी बूट उतार लेता है और कभी पहन लेता है।

कभी-कभी तू बहुत खुश होता है। तब मेज पर पड़े पेपरवेट का घुमान लग जाता है। धीरे धीरे सीटी मारता है। इस दीवार पर हाथ लगाकर कुरसी पर बैठा, धरती पर से पैर उठा लेता है। उस समय मैं इधर जरा भी खटका नहीं होने देती, कहीं तू चौंक न पड़े।

कभी-कभी आने या जाने के समय तू मुझे कमरे के बाहर मिल जाता है। "सुनाओ क्या हाल है?" तू पूछता है।

"ठीक है," मैं थोड़ा-सा मुस्कराकर कहती हूँ। और तू अपने कमरे में चला जाता है और मैं अपने कमरे में। न वह कमरा इधर आ सकता है, न यह कमरा उधर जा सकता है। दोनों की अपनी अपनी सीमा है। दोनों के बीच एक दीवार है।

बीच में बेशक दीवार है, फिर भी जिस दिन तू दफ्तर न आए अपने कमरे में न बैठा हो, मुझे कुछ अजीब-अजीब-सा लगता है। उस दिन मैं कई बार घड़ी देखती हूँ। कई बार पानी पीती हूँ। लोगों को टेलीफोन करती रहती हूँ। जमा हुआ पिछला काम भी खत्म कर देती हूँ। "आज साहब नहीं आए?" इधर से गुजरते हुए तेरे चपरासी से पूछती हूँ। फिर वह आप ही बतला देता है कि साहब बाहर गए हुए हैं, कि साहब के रिश्तेदार आए हुए हैं कि साहब की तबीयत ठीक नहीं, कि साहब ने कितने दिन की छुट्टी ली है।

इन दिनों में मुझे बड़ी ऊलजलूल-सी बातें सूझती रहती हैं कि आज से सौ साल पहले इस कमरे में कौन बैठता होगा? साथ वाले कमरे में भी कोई बैठता होगा। आज से सौ साल बाद इस कमरे में कौन बैठा होगा? साथ वाले कमरे में

कौन बैठा होगा ? लोग मर क्या जाते ह ? फिर खयाल आता है लाग पैदा ही क्या होते हैं ? और फिर इन बातो से घबराकर मैं दफ्तर म काम करनेवाले और लोगो मे मिलने के लिए चलती-फिरती रहती हूँ।

"आए नही इतने दिन ?" पता होन के बावजूद मैं तुझस पूछती हूँ।

"बीमार था," तू कहता है।

"अब तो ठीक हो ?"

"हा ठीक हूँ, मेहरबानी," कहकर तू अपने कमरे म चला जाता है और मैं अपने कमरे मे चली जाती हू। तू अपना काम करने लग जाता है, मैं अपना।

एक बार मैं कई दिन छुट्टी पर रही।

"बीबीजी आ नही रही ?" तूने मेरे चपरासी से पूछा।

जी वह बीमार है," उसने बताया।

"अच्छा अच्छा " कह, तू अपने कमरे मे चला गया।

घर डाक देन आए चपरासी ने मुझे यह बताया। अगले दिन जब बुखार थोडा कम था मै दफ्तर आ गई। तुझे शायद पता नही था। उस दिन तूने दो-तीन बार चपरासी को डाटा। कई बार कागज फाडे, जस गलत लिखा गया हो। एक दो मिलने आए लागो को भी कहला भेजा कि किसी और दिन आएँ।

किसी काम स तू कमरे स बाहर गया। मैं भी किसी काम से बाहर निकली।

'आई नही कई दिन ?" तूने जानते हुए भी पूछा।

'बीमार थी।

"अब तो ठीक हो ?

"हा ठीक हूँ, मेहरबानी," कह मैं अपने कमरे म चली गई और तू अपने कमरे म चला गया। न यह कमरा उधर जा सकता है न वह कमरा इधर आ सकता है। दोनो की अपनी-अपनी सीमा है। दोनो के बीच एक दीवार है। एक कमरा तेरा है। एक कमरा मेरा है। फिर भी मैं सोचती हूँ कि इतना भी क्या कम है कि दोनो कमरे साथ साथ ह ! बीच म केवल एक दीवार ही तो है !

अनुवाद यश सरोज

भाभी मैना

—गुरबख्श सिंह

शहर की गली के आमने-सामने दो घरों के बीच मुश्किल से तीन-साढ़े तीन गज का फासला होगा। पहली मंजिल की दो खिडकियाँ भी आमने-सामने ही खुलती थी। एक खिडकी में से सामने दीवार से लटका बडा-सा शीशा दिखाई देता था। इस कमरे में बाकी चीजें भी बहुत कम थी। एक चारपाई, एक पीढा, एक आले में दो-चार किताबें, कघी, तेल और दीवार पर एक दो तस्वीरें, टाकरी में दो-चार कपडे।

एक छोटा सा कमरा था। इसमे सिवाय एक औरत के कोई दूसरी मूरत कम ही दिखाई देती थी। वह कभी कसीदा निकालती, कभी किताब पढती कभी सर झुकाए बैठी रहती, और कभी शीशे के सामने खडी होकर बहुत देर तक बालों में कघी किया करती थी। वह दिन में कई बार कघी किया करती थी, और घरवालों का खयाल था कि वह कघी के पीछे दीवानी थी।

उसके बाल लम्बे भी बहुत थे। जब वह पीछे घूमकर बालों की लम्बाई देखती तो उसे अपने बाल टखनों को छूते हुए दिखाई देते थे। अगर किसी ने रोशनियाँ देखी होती तो उनकी चमक का भी उसे जरूर पता होता, लेकिन इसमे कोई शक नही कि उसे अपने बालों पर बडा नाज था।

वह जवान थी, खूबसूरत और लम्बी। सामने वाली खिडकी में से उसकी आखों का रंग नही दिखाई दे सकता था, लेकिन उसकी छवि बडी मीठी और उदासी-भरी थी।

वह कितनी कितनी देर तक अपनी खिडकी की चौखट पर बैठी आँसू बहाती रहती थी, लेकिन कभी भी खिडकी में से बाहर सर निकालकर किसी की तरफ नही देखती थी। लेकिन गली की औरतों को इसकी बैठक का एहसास जरूर होता था, और अगर कोई उधर से गुजरती तो उसे आवाज दे लेती थी।

वह बडे मीठे लहजे में, थोडा झुककर जवाब देती थी।

जब वह कमरे मे नही होती थी तो खिडकी बन्द हो जाती थी, लेकिन जाडों में तीसरे पहर, गर्मियों में करीब बारह बजे उसकी खिडकी जरूर खुलती थी, और खिडकी के सामने पीठ पीछे करके वह बैठी रहती थी, और कभी-कभी गली में भी झाँक लिया करती थी।

एक लड़का, जो देखने मे बच्चा सा ही मालूम होता था, बस्ता थाम गली के मोड़ स आता दिखाई देता। यह काम छोडकर जगले के छेदो मे से उसकी तरफ ताकती रहती थी। वह लडका भी कभी कभी ऊपर देखता था और फिर अपने घर म जा घुसता था। लडके के सीढियाँ चढने की खट-खट स्त्री के कानो मे सुनाई देती थी। वह कभी उस लडके के घर नही गई थी, लेकिन उसे उस लडके के घर के जीने की सीढियो की गिनती याद थी। हर सीढी पर पडते कदमो की आवाज को सुनकर उसने कई बार अपने सीने को कसकर दबाया था।

दूसरे के घर मे कोई दरवाजा खुलता तो वह देखे बगर ही जान लेती कि सामने वाली बैठक मे कोइ आया है।

बस्ता एक तरफ रखकर वह लडका थोडी दर के लिए अपनी खिडकी खोल कर सामने वाली खिडकी की तरफ देखता था। स्त्री उधर नही देखती थी, लेकिन उसे पता रहता था कि उसकी तरफ वे आँखें लगी हुई है जिनका रास्ता वह रोज दखती रहती है, और अगर किसी दिन उसे स्कूल से लौटने म देर हो जाती थी तो वह आने-जाने वाले लडको स पूछना चाहती थी—काका क्या नही आया? लकिन उसने कभी पूछताछ नही की थी।

काका बैठक का दरवाजा बन्द करके ऊपर चला जाता था।

इसी तरह बहुत-सा वक्त बीत गया। काका अब तेरह बरस का होने लगा था। सामने वाली खिडकी म उसे अब अपनी दिलचस्पी म ज्यादा स्वाद आने लगा था। एक दिन उसने अपनी मा से पूछा

"हमारे घर सभी आते हैं। लेकिन सामने वाले घर स कभी कोइ क्या नही आया?'

"काका, हमारी गली म यह अकेला जनियो का घर है। ये लोग मास से बहुत परहेज करत है—इसलिए सिक्खो के साथ ये लोग बिलकुल नही बरतते।'

"लेकिन मा, हम लोग तो मास नही खाते?'

"ये समझते हैं कि सारे सिक्ख मास खाते है।

'तो क्या ये लोग घर से भी बाहर नही निकलते?

"निकलते हैं लेकिन यह दुखी-सा घर है। मौत न इस घर को उजाड दिया है। एक ही बेटा बच गया था, उसकी शादी की, लकिन दो ही सालो म वह भी मर गया। मरने के बाद एक बच्चा हुआ, वह भी साल तक न जिन्दा रह सका। अब तीनो विधवा औरतें रोने धोने के लिए बच गई हैं।'

"वह बच्चा किसका था?

"मैना का, जिसे तुमने कई बार खिडकी म बैठे देखा होगा।

"माँ, वह हर वक्त खिडकी म क्या बैठी रहती है?"

"वे लोग जवान विधवा बहुआ की बडी रखवाली करते हैं—और घर मे ज्यादा काम है नही।"

"रखवाली किसलिए करते हैं?"

"यू ही—किसी के साथ घर की कोई बात कर बैठेंगी—खुश जो नही रहती।"

"माँ, हमारे घर जितनी औरतें आती ह आप कहती है, किसी को मैं चाची कहूँ, किसी को मौसी, बुआ कहूँ अगर कभी यह मिले तो मैं उसे क्या कहकर बुलाऊँ?"

"किसे? मैना का?"

"हाँ जी, जो खिडकी मे बठी रहती है।'

"यह तुम्हारी भाभी है—इसका घरवाला, गली के नाते तेरा भाई लगता था। बडा अच्छा लडका था।"

"यह मैना भला किस किस्म का नाम हुआ?"

"तुम्ह अच्छा नही लगा?"

"नही, बडा अच्छा लगा है लेकिन इससे पहले मैंने कभी इस किस्म का नाम नही सुना मना वही होती है न जो मामाजी के घर पिंजरे मे बैठी बहुत प्यारी बातें करती है? तोता इतना अच्छा नही बोलता।"

"हा—वही।'

"माँ! मुझे एक मना ले दोगी?"

"काका, अपने मामा से ही कहना।'

कुछ दिनो बाद काके की बैठक मे एक पिंजरा टँगा था। जब वह छत पर जाता तो इस पिंजरे को भी साथ ले जाता।

काके ने अपनी मना को सिखाया "मना भाभी खिडकी मे बैठी है।' खिडकी वाली मना ने कभी काके के साथ बात नही की थी, लेकिन उसे मैना के ये शब्द बहुत अच्छे लगते थे "मैना भाभी खिडकी मे बैठी है।"

जाडे की रातो मे मना भाभी अपने कमरे मे सोती थी। इम्तहान नजदीक होने की वजह से काका भी कुछ दिनो से बैठक मे सोने लगा था। भाभी मैना को कई बार सो रहे काके की आवाज सुनाई देती थी। वह चारपाई से उठकर बहुत देर तक इस आवाज को सुनती रहती थी।

उसकी उम्र अब पच्चीस बरस की होने लगी थी। काका अभी पूरे तेरह बरस का भी नही हुआ था। वह मन ही मन कहती थी, 'काश! कभी मुझे इस बच्चे के

साथ खेलने की आज़ादी हो ! जब यह स्कूल से लौट रहा हो, उस वक्त मैं खिड़की म म सर निकालकर उसे देख सकूं, इसके साथ बातें कर सकूं ! अगर यह बीमार पड़े तो मैं इसके घर जाकर इसकी चारपाई पर बैठ सकूं ! बीमारी की हालत मे भला किसी खराबी का क्या डर हो सकता है ?'

फिर वह खुद ही सोचती---'मुझे भला कौन इतनी आजादी देगा ? मैं तो इसी कमरे म रहती-रहती बूढ़ी हो जाऊँगी। मेरे बाल मेरी सास के बालों की तरह भुरभुरा जाएँगे काके की शादी हो जाएगी वह खिड़की फिर इस तरह खुली नही रहेगी फिर मैं किस इन्तजार म इस अँधेरी जिन्दगी के लम्बे दिन और लम्बी रातें काटा करूँगी ?'

यह सोचते-सोचते उसका दिल डूबने लगा। वह बिस्तर म उठकर खिड़की मे गई। चादनी रात थी। खुली खिड़की म से थोड़ी थोड़ी चाँदनी काके के चेहरे पर पड़ रही थी। काका गहरी नीद मे सोया था। वह ऊँची-ऊँची साँस ले रहा था। मैना के मन म एक ख्याल सा उठा। उसे लगा दो घरों के बीच का फ़ासला बहुत कम है। कितना अच्छा हो अगर दोनों खिड़कियों के बीच चारपाई डालकर पुल बाध सकूं ? काश, मैं काके के पास पहुँच जाऊँ। मैं उसे जगाऊँगी नही---दूर से ही उसका मुंह चूमकर अपने कमरे म आ जाऊँगी।

लेकिन वह फ़ासला इतना कम नही था।

उसके दिल म जितना चाव था, उतनी हिम्मत नही थी। वह आकर चारपाई पर लेट गई। कुछ देर बाद काके की बैठक म से आवाज आई--- भाभी मैना '
वह चौंककर उठी। लेकिन यह तो पिंजरे की मैना की आवाज थी---काका उसी तरह सोया पड़ा था।

उसी वक्त मैना की सास पाखाने जाने के लिए उठी थी। उसे मैना के कमरे म से कोई खटर-पटर सुनाई दी थी और उसे लगा था कि उसके कानों म आवाज आई थी 'भाभी मैना !'' उसने मैना को आवाज दी। मैना भीतर से झट बोल उठी। सास का शक पक्का हो गया।

"तू सोई नही थी मैना ? आधी रात तो बीत चुकी है।'

'यू ही नीद खुल गई थी।'

सास कमरे म आ गई। इस सामने वाली खिड़की म कोई सोया हुआ दिखाई दिया---किसी आदमी का चेहरा।

"तू किसके साथ बातें कर रही थी ?"

'मैने भला किससे साथ बातें करनी थी।"

सास ने फिर सामने वाली खिड़की की तरफ देखा।

'वह तो सरदारों का काका है---गहरी नीद म सो रहा है," मैना ने कहा।

सास चली गई। लेकिन चाहे काका बिलकुल बच्चा था और अपनी उम्र म

भी ज्यादा भोला था लेकिन आखिर था तो मर्द-बच्चा भला विधवाओं का क्या काम कि बच्चों की तरफ भी इस तरह देख जाएँ!

मैना स्कूल से लौटते हुए काके को देखती है। काका भी आते ही पहले बैठक में जाता है और खिड़की खुली रखता है पिछले साल की बनिस्बत वह इस साल काफी बड़ा भी मालूम होता है।

ये बातें ऐसी नहीं थी जिन्हें एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दिया जाए। यही छोटी छोटी बदलियाँ कई बार काली घटाएँ बन जाती हैं।

आज जब काका स्कूल से लौटा तो मना की खिड़की बन्द थी। यह खिड़की अब रात के वक्त भी बन्द रहने लगी।

यह खिड़की काके की जिन्दगी का भी एक हिस्सा बनती जा रही थी। अब उसका खेलों में इतना जी नहीं लगता। माँ से पूछने का कोई फायदा नहीं था, क्योंकि उस घर से माँ का कोई वास्ता नहीं पड़ता था। कभी-कभी शादी-ब्याह के मौके पर मिठाई देने दिलाने के लिए ही कोई उन दहलीजों को पार करता था।

आज अँधेरी रात थी। मना की खिड़की में से खटर-पटर सुनाई दी, जैसे कोई चाबियाँ बदल बदलकर ताले में लगा रहा हो।

फिर धीरे से खिड़की खुली। मना ने उठकर दरवाजे से कान लगाए, कहीं कोई जाग तो नहीं रहा? फिर गली में देखा फिर काके की सांस की आवाज सुनी। काका सो रहा था। उस अँधेरे में किसी को कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, लेकिन मैना की प्यार भरी निगाहें काके के अंग-अंग को टोह रही थीं।

अगले ही क्षण उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे वह काके की चारपाई पर बैठी थी, उसके नर्म बालों में उँगलियाँ फेर रही थी—और उसे जगा रही थी। मना के कानों में उसकी अपनी आवाज सुनाई दी—"काका! काका!"

वह अभी सो रहा था। मना कह रही थी, "काका, तेरी भाभी मैना—घड़ी-भर के लिए जाग पड़ो। पल-भर के लिए जाग पड़ो। एक शब्द एक बात सिर्फ एक बात फिर बस।

काका हड़बड़ाकर उठ बैठा।

मना को बड़ी शर्म आई। उसे अब पता चला कि वह अपने मन में नहीं, बल्कि अपने मुँह से बोल रही थी और काका जाग उठा था—अगर कोई और भी जाग उठा हो तो?

काका अपनी खिड़की में आ बैठा। वह भी महसूस कर रहा था कि खिड़की के अँधेरे में मैना भाभी बैठी थी। उसके दिल में कई बार आया था कि वह मना भाभी के गले में बाहें डाल दे। वह इस बात से बड़ा उदास रहता था कि खिड़की

वया व द रहन लगी थी।

मैंना भाभी मना भाभी !

'हा काका मरा सु दर काका लेकिन ज़रा आहिस्ता जैसे मैं धीमी आवाज़ म बोलती हूँ ! हा मर प्यार '

"आप इतने दिन कहाँ चली गई थी ?"

"मरा कमरा हवालात बना दिया गया है। इस खिडकी में ताला लगा दिया गया है।'

"सो क्या ?"

"उस दिन तुम्हारी मना ने मुझे आवाज़ दी थी—मैं उठ गई थी मैंन समझा तुम मेरी शामत आई थी, मरी सास भी उसी वक्त उठ बैठी। उसन सोचा—मैं तुम्हार साथ बातें कर रही थी।"

'तो क्या हुआ ?'

"काका, बहुत-कुछ हो गया फाटका का ताले लग गए, इसलिए अब मैं यहा से चली जाऊँगी। इस घर म मेरी यह आखिरी रात है। मैं तुम्ह मिलकर जाना चाहती थी तुम किसी का बताओग तो नही ?"

"मैं नही बताऊँगा मना भाभी ! लेकिन आप क्यो जा रही हैं ? मत जाइए ! मैं बडा होऊँगा मेरी शादी होगी, मैं अपनी बीवी को आपके पास भेजा करूँगा वह आपका बुलाएगी, आप उसे मिलन जाइएगा—फिर कोई कुछ नही कहेगा। आप मत जाइए !"

"लेकिन काका, तुम अभी बहुत छोटे हो। तुम्हारी शादी दूर है इस कैद खान म इतन बरस कैसे काटे जाएँगे ?'

"आप कहाँ जाएँगी ? मैं वहा आपसे मिलन आऊँगा।"

"नही काका, जहाँ मैं जा रही हूँ वहाँ कोई मद-जात मेर से बात नही कर सकेगा।

'आप वहा मत जाइए !

"मेरे लिए और कोई रास्ता बाकी नही रहा मैंने पूजनी बनने का फसला किया ह।'

"पूजनी क्या होती है ?"

जनिया की वे साधु औरतें, जिनके सर मुडे रहत है, मुह पर पट्टियाँ बँधी होती हैं और पर नग हात हैं।

'ना मना भाभी ! आप कभी वैसी मत बनिएगा ! मुझे उनसे बहुत डर लगता है। उनकी आँखा पर बँधी पट्टियाँ कुछ और ही तरह की लगती हैं।"

"काका, मरे सामन कोई और रास्ता नही रहा ' और मैंना भाभी ने एक गेंद-सी बनाकर उसकी खिडकी मे से उसकी बठक म फेंकी, "मेरी यह निशानी

रखना—सुबह ढूंढ लेना, इस वक्त खटर-पटर सुनकर कोई जाग न पड़े।"

और मैना भाभी की खिड़की बन्द हो गई। काके ने ताले में चाबी घुमाने की आवाज़ सुनी। बाकी रात उसे नींद न आ सकी।

अगले दिन जब वह स्कूल से लौटा तो उसकी माँ ने उसे बताया कि मैना बड़ी दुखी थी, रोज़ उसकी सास उससे लड़ती थी और ताने देती थी। मैना तंग आकर घर से निकल गई है और पीछे एक खत लिखकर छोड़ गई है कि वह पूजनी बनने जा रही है।

'लेकिन माँ, वह यहाँ रहकर क्या पूजनी नहीं बन सकती?'

"नहीं, जिसे पूजनी बनना हो वह अपना शहर छोड़कर किसी दूसरे शहर के मन्दिर में जाकर रहने लगती है। वे लोग उसकी जाँच-पड़ताल करते हैं। अगर उसकी नीयत पर यकीन हो जाए तो उसकी पूरी हिफाज़त करते हैं, अच्छा खिलाते हैं, अच्छा पहनाते हैं और कुछ दिनों के लिए उसे जो चाहे सो करने देते हैं। फिर उसका सर मुंडकर उसे पूजनी बना देते हैं। उसके बाद न वह अच्छा खा सकती है, न अच्छा पहन सकती है, न ही मर्दों से बातचीत कर सकती है।"

"मैना भाभी कहाँ गई होगी?"

"मालूम हो जाएगा।"

"अगर वह किसी नज़दीक के शहर में गई हो तो मुझे जाकर दिखा लाओगी?'

'उस गाँव में जनिया का बहुत बड़ा मन्दिर है, जहाँ तुम्हारी मौसी रहती है अगर मैना वहाँ गई तो दो दिन के लिए वहाँ हो आना, तुम्हारी मौसी तुम्हें दिखा देगी। जब कभी कोई पूजनी बनती है तो सारे शहर में बड़ी रौनक होती है।"

काके ने मौसी को लिख दिया कि वे इस बात का पता लगाएँ।

दो हफ्ते में ही सबको पता चल गया। सारी गली में मैना की बातें होती थीं—बड़ी अच्छी औरत थी, किसी ने उसका माथा तक नहीं देखा था। कितने खूबसूरत बाल थे! बालों की देखभाल भी कितनी करती थी! उसे रुंड मुंड कर दिया जाएगा। पोटुओं से एक-एक करके सारे बाल उखेड़ लिये जाएंगे—बेचारी!

काका मौसी के पास पहुँच गया। उसकी मौसी आज मैना को देखकर आई थी—उसने बड़े सुन्दर कपड़े पहन रखे थे—गहने भी। ये गहने लोगों ने उसे उधार दिए थे। वे लोग गाना-बजाना भी करवा रहे थे। जब मौसी को पता लगा कि मैना काके की गली में ही रहती थी, तो उसकी दिलचस्पी और ज़्यादा बढ़ गई। वह हर रस्म पर जाती रही। उसने काके को बताया कि मैना को बड़ा रूप चढ़ा हुआ था। कल उसे डोली में बैठाकर शहर में घुमाया जाएगा, लोग उस पर फूल बरसाएँगे, गुलाब-जल छिड़केंगे।

काका अपनी भाभी को देखने के लिए बड़ा बेताब था। उसने मैना को हमेशा एक ही पोशाक में देखा था, वह उन कपड़ों में भी बड़ी अच्छी लगती थी। गहने

उस पर कैसे फबते होंगे ? काके ने उसे कभी हँसते हुए नहीं देखा था। मौसी जिक्र कर रही थी कि मैना की मुस्कराहट बड़ी मनमोहक थी।

मैना का दिया रूमाल, उसकी निशानी काके की भीतरी जेब में थी। उसने यह बात किसी को नहीं बताई थी, लेकिन वह उस रूमाल को रोज देखता था। काके ने हिन्दी के अक्षर सीख लिए थे, क्योंकि मैना ने रूमाल पर हिन्दी में कढ़ाई की थी, "बहुत प्यार काके को—उसकी भाभी की ओर से।"

अगले दिन दोपहर के बाद उसकी मौसी ने बताया कि मैना की डोली निकलेगी, जिसे सारे बाजारों में घुमाया जाएगा। जो चाहे देख सकता है।

अगले दिन काके ने मौसी के बाग में से बहुत से फूल तोड़कर रूमाल में बांध लिये थे। जब डोली चौक के नजदीक से गुजरी तो वह जान-बूझकर घर के लोगों से अलग हो गया। वह सिर्फ डोली देखकर नहीं लौटना चाहता था, बल्कि सारा रास्ता उस डोली के साथ रहना चाहता था।

वर्दी पहने लोग बाजे बजा रहे थे। जैना लोग रुपये-पैसा की वर्षा कर रहे थे। डोली में उसकी भाभी गहनों से लदी बैठी थी। चाहे उसका चेहरा कुछ और तरह का दिखाई दे रहा था, लेकिन उसके चेहरे में पहले वाली झलक भी काफी थी। इस हँसती हुई सूरत के मुकाबले में काके को उसकी पहले की उदास आँखें ज्यादा प्यारी लगती थीं। लोग कहते थे कि इस पूजनी को कहां का रूप चढ़ा है। लेकिन इस आडम्बर में काके को मैना भाभी के वे प्यारे नक्श पूरी तरह से दिखाई नहीं दे रहे थे।

वह जब भी सोचता कि वह उसकी तरफ देख रही है, वह उस पर फूल फेंकता था, वह हाथ जोड़ देती थी, लेकिन वे हाथ काके के लिए नहीं थे। काका सोच रहा था—इतनी भीड़ में भला वह छोटा सा काका मैना भाभी को कैसे दिखाई दे सकता था ?

एक मोड़ से मुड़ते वक्त अचानक डोली उसके बहुत नजदीक आ गई। फूल बरसने लगे। मैना ने हाथ जोड़ दिए। उसी वक्त काका फूल बरसाने वाला था। मैना ने उसे पहचान लिया—उसकी अधमुंदी आँखें खुलकर चौड़ी हो गई। उसने ध्यान से देखा। फिर हिम्मत करके डोली रोकने के लिए कहा—

"यह काका हमारी गली का है मुझ पर फूल फेंकना चाहता है उसके हाथ डोली तक नहीं पहुँच सकते उसे एक मिनट के लिए मेरे पास ला दो।"

यह एक अजब बात थी, लेकिन पूजनी बनने वाले की बात टाली नहीं जाती।

"ला काका, तेरे ये फूल मैं ले लूं। तू बड़ी दूर से आया है मेरी गली का काका।"

काका बहुत खुश हुआ कि मैना भाभी ने उसे देख लिया, और पास बुलाकर हाथों की अंजुली बनाकर फूल ले लिए।

'रुमाल भी नहीं लौटाया।' बावे ने सोचा—'भाभी निशानी रखेगी।'

जलूस पासरे पर पहुँच गया। लोग विदा हो गए, मैना और उसके साथ कुछ औरतें पासरे पर चढ़ गईं। सीढ़ी पर पैर रखने से पहले मैना ने देखा, बावा सामने की एक दूकान के तख्ते पर खड़ा था।

ऊपर बड़े पुजारी के सामने मैना को बैठा दिया गया।

बड़े पुजारी ने पूछा, "क्या तुमने अपना मन पक्का कर लिया है?"

"जी महाराज, कर लिया है।"

"तुम्हें सारे कपड़े-गहने उतार देने होंगे, और फिर जिन्दगी में तुम इन्हें अंगीकार नहीं कर सकोगी।"

"जी महाराज, मुझे इनकी कोई चाह नहीं।"

"तुम वही कुछ खा-पी सकोगी जो हमारी श्रेणी के नियमानुसार होगा।"

"जी महाराज, मुझे अच्छे भोजन की कोई जरूरत नहीं।"

"मर्दों का छूना तो दूर रहा, उनका खयाल भी उस धर्म में विघ्न डालेगा जिसे इस वक्त तुम चुन रही हो।"

मैना ने लंबी साँस ली। उसे महसूस हुआ कि उसकी जेब में रखा बाके का रूमाल खुलता जा रहा है। रूमाल के छोर नन्ही बाहें बनकर उसकी कमर के गिर्द लिपट गए हैं। कुछ सँभलकर उसने जवाब दिया

"हाँ महाराज, यह भी कबूल है।"

"अब तुम उस कमरे में जाकर इन कपड़ों को उतारकर, जो कपड़े तुम्हें दिए जाएँगे उन्हें पहन लो। इसके बाद तुम्हें अपने बाल कटवाने होंगे और उसके बाद तुम्हें तुम्हारी पूजनी माता बताएगी कि किस तरह पोटुओं से हर बाल नोचा जा सकता है।"

बालों के काटने, उखाड़ने का जिक्र सुनकर वह अपनी आह न रोक सकी और बड़ा हौसला करके बोली

"पूज्य पिताजी, क्या आप मुझे बाल रखने की आज्ञा नहीं दे सकते?"

"यह कैसे हो सकता है?" मुख्य पुजारी बहुत हैरान होकर बोला।

"मैं जानती हूँ—मेरी यह माँग अनोखी है।" मैना को एकदम अपने भीतर से कोई ताकत-सी महसूस हो रही थी, "लेकिन अगर आप मान लें—मैं कभी आपसे शिकायत नहीं करूँगी। मेरे भीतर मालूम नहीं कौन-सी गाँठ रुकी हुई है। मैं आपकी ऐसी सेवक बनूँगी कि सारी कौम अचंभा करेगी। मेरे बाल न काटे जाएँ।"

"लेकिन यह बात कदापि नहीं हो सकती। तुम्हें पता नहीं था?"

"मुझे पता था। मैं बाल कटवा लूँगी। लेकिन काटने का वक्त अभी नहीं आया है। मुझे लग रहा है कि मेरे ये बाल जिन्दा हैं। ये मेरे प्राणों में से उगे हैं। जब मैं इनमें कंघी करती थी तो ये एक झटके से ही मेरी टाँगों को छू लेते थे। इनमें

थाइ जिन्दा स्पश था कई बरसो से मैंने सिवाय इन बालो के किसी से बात तक नही की। (माथा टक्कर) हे परम पूज्य ! एक बार अनहोनी भी करके देख लीजिए—आपको अपने फैसले पर कभी पश्चाताप नही होगा।'

मुख्य पुजारी का दिल पसीज तो गया, लेकिन पूजनी स्त्री के सर पर बाल देखकर लोग क्या कहेंगे ?

'नही बीबी ! तुम्हारी यह बात नही मानी जाएगी।"

'तो फिर, हे पूज्य मुझे पाच मिनट का मौका दीजिए कि मैं एकान्त मे अपने मन को समझा लूं' मैना ने मन मजबूत करके कहा।

'हा, जाओ सामने चबूतरे पर बैठकर सोच लो।"

मैना उठी और धीमे लेकिन मजबूत कदमो से सामने वाले चबूतरे पर जा बैठी। इस चबूतरे के छज्जो के नीचे बाजार था। कुछ देर बाद मैना उठ बैठी।

"यह कोई अनोखी औरत है ! मैंने कई औरतो की यह रस्म अदा की है लेकिन इस औरत की हर बात सोच मे डाल देती है। अगर यह पूजनी बन गई तो बडी शोहरत हासिल करेगी।'

'लेकिन वह चबूतरे पर क्यो खडी हो गई है ?" दूसरे आदमी ने घबराकर कहा।

बडे पुजारी ने भी देखा, मैना चबूतरे पर खडी हो गई थी। उसने अपने जूडे मे उगलिया फेरी, जूडा खुल गया, बाल कमर मे नीचे तक गिरने लगे—मद्धम हवा के झोको मे बालो की रेशमी जुल्फें सरसरा रही थी।

'कितने लम्बे "

"आह ! ' सब जने उठकर सीढियो की तरफ दौडे। छज्जे पर कोई औरत नही खडी थी।

सब लोग नीचे पहुँचे। बाजार मे हाहाकार मचा हुआ था। एक लडका क्षत-विक्षत मैना के सिरहाने बैठा था। उसने बिखरे हुए बालो को माथे से हटाकर माग सीधी कर दी। काले बालो मे जगह-जगह सिंदूर की तरह लहू चमक रहा था। लडके की आँखो से जार-जार आँसू बह रहे थे और वह नीचे पडी औरत की आँखो मे देख रहा था—वे आँखें खुली थी।

पहले काके ने इन आखो का रंग कभी नही देखा था। वे उस काली रात जैसी सियाह थी जिस रात आखिरी बार उसने काके को जगाया था। लेकिन उस रात की गहराइयो मे कोई सूरज छिपा था—तभी तो उस रात वह अँधेरे मे भी देख सकती थी। वे आँखें इस वक्त भी उतनी ही काली और उतनी ही रौशन थी—वे खुली हुई थी।

लेकिन उनमे इस वक्त कोई सूरज नही था।

□□□